साहित्य अमृत

मार्गशीर्ष-पौष, संवत्-२०७९ ❖ दिसंबर २०२२ मासिक

वर्ष-२८ ❖ अंक-५ ❖ पृष्ठ ८४ | यू.जी.सी.-केयर लिस्ट में उल्लिखित | ISSN 2455-1171

संस्थापक संपादक

पं. विद्यानिवास मिश्र

निवर्तमान संपादक

डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी

श्री त्रिलोकी नाथ चतुर्वेदी

संस्थापक संपादक (प्रबंध)

श्री श्यामसुंदर

प्रबंध संपादक

पीयूष कुमार

संपादक

लक्ष्मी शंकर वाजपेयी

संयुक्त संपादक

डॉ. हेमंत कुकरेती

उप संपादक

उर्वशी अग्रवाल 'उर्वी'

कार्यालय

४/१९, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-०२

फोन : ०११-२३२८९७७७

०८४४८६१२२६९

इ-मेल : sahityaamrit@gmail.com

शुल्क

एक अंक—₹ ३०

वार्षिक (व्यक्तियों के लिए)—₹ ३००

वार्षिक (संस्थाओं/पुस्तकालयों के लिए)—₹ ४००

विदेश में

एक अंक—चार यू.एस. डॉलर (US$4)

वार्षिक—पैंतालीस यू.एस. डॉलर (US$45)

साहित्य अमृत के बैंक खाते का विवरण

बैंक ऑफ इंडिया

खाता सं. : **600120110001052**

IFSC : **BKID0006001**

प्रकाशक, मुद्रक तथा स्वत्वाधिकारी पीयूष कुमार द्वारा ४/१९, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-२ से प्रकाशित एवं न्यू प्रिंट इंडिया प्रा.लि., ८/४-बी, साहिबाबाद इंडस्ट्रियल एरिया, साइट-IV, गाजियाबाद-२०१०१० द्वारा मुद्रित।

✍ **संपादकीय**

मानव रचित सभ्यता में मानव… ४

✍ **प्रतिस्मृति**

गरीब-हृदय/ *विश्वंभरनाथ शर्मा 'कौशिक'* ६

✍ **कहानी**

अब लौं नसानी…/ *ऋता शुक्ल* १०

झाड़ी की आवाज/ *नंदकिशोर कौशिक* २०

पुत्रवती/ *मंजु मधुकर* ३४

बापजी की दुकान/ *विजय कुमार* ४२

इनकलाब/ *रत्ना श्रीवास्तव* ४६

प्रेम-गीत/ *सुधा शुक्ला* ५०

याद उन्हें भी कर लो…/ *रश्मि गौड़* ६६

✍ **लघुकथा**

कोख का बँटवारा/ *अंकुर सिंह* ९

लुभाते चेहरे/ *सत्य शुचि* २२

नाखूनों की रिहर्सल/ *सत्य शुचि* ४९

किस्मत के धनी/ *सत्य शुचि* ५५

बेटी का घर/ *अश्वनी कुमार जायसवाल* ६७

लकी मैन/ *सत्य शुचि* ६९

✍ **आलेख**

सेहत से जुड़े कुछ नए सुभाषित/ *श्रीधर द्विवेदी* १६

निराला और महात्मा गांधी/ *राहिला रईस* २४

कर्तव्यपरायण उत्कलमणि गोपबंधु/ *चक्रधर त्रिपाठी* ३८

साहित्य-सेवन/ *ब्रजकिशोर बक्शी* ६८

✍ **कविता**

पच्चीस ताँका कविताएँ/ *रामनिवास मानव* १५

गीतावली/ *रमा रानी सिंह* १९

लगता है गुजरी है बहार/ *सूर्य प्रकाश मिश्र* २३

कविताएँ/ *माला श्रीवास्तव* २७

गजलें/ *उर्वशी अग्रवाल 'उर्वी'* २८

कविताएँ/ *राजश्री सिंह* ३३

अँजुरी भर गीत/ *चेतन आनंद* ४१

कविताएँ/ *प्रमिला दीक्षित* ४५

कविताएँ/ *राकेश पांडेय* ४७

अपना युद्ध/ *मंजु गुप्ता* ५३

गजलें/ *तेज नारायण शर्मा 'बेचैन'* ५९

चीखें/ *बी.एल. आच्छा* ६४

भीगा है मन/ *सुषमा सहरावत* ६५

दोहे/ *सत्यशील राम त्रिपाठी* ७३

✍ **राम झरोखे बैठ के**

नए साल की खिड़की/ *गोपाल चतुर्वेदी* ३०

✍ **व्यंग्य**

बाढ़ में…एक संवाद-कथा/ *हरीश नवल* ४८

एक कामकाजी लेखक की डायरी/ *सुधा कुमारी* ५६

✍ **पुस्तक-अंश**

अरुणिमा/ *रीता कौशल* ५४

✍ **संस्मरण**

हरसिंगार के फूलों से मेरा रिश्ता/ *ऊषा निगम* ६०

✍ **साहित्य का भारतीय परिपार्श्व**

अनदेखा भाव/ *बंदिता दाश* ६२

✍ **साहित्य का विश्व परिपार्श्व**

क्रिस्मस का त्योहार/ *अंतोन चेखव* ७०

✍ **यात्रा-वृत्तांत**

सांस्कृतिक-प्रौद्योगिकता और एकता की मूर्ति/ *राजेश जैन* ७४

✍ **बाल-संसार**

सब्जी चोर/ *बद्री प्रसाद वर्मा 'अनजान'* ७६

पापा, जब तुम दिल्ली जाना/ *अर्चना बाजपेई* ७८

✍ पाठकों की प्रतिक्रियाएँ ७९

✍ वर्ग-पहेली ८०

✍ साहित्यिक गतिविधियाँ ८१

साहित्य अमृत में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार एवं दृष्टिकोण संबंधित लेखक के हैं। संपादक अथवा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

संपादकीय

मानव रचित सभ्यता में मानव...

इसमें तनिक भी अतिशयोक्ति नहीं होगी, यदि हम कहें कि १० दिसंबर का दिन पूरे विश्व के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण है। १० दिसंबर अर्थात् मानवाधिकार दिवस। १९४८ में इसी दिन संयुक्त राष्ट्र ने पूरे विश्व के मनुष्यों के लिए सार्वभौमिक मानव अधिकारों को स्वीकार किया था। हर मनुष्य के मूलभूत अधिकार—जीवन जीने का अधिकार, स्वतंत्रता का अधिकार, अभिव्यक्ति का अधिकार, हर प्रकार के भेदभाव, प्रताड़ना, दासता से मुक्ति का अधिकार आदि। वर्ष २०२२ मानव अधिकारों के लिए विशेष महत्त्व का हो जाता है, क्योंकि इस वर्ष ७५वाँ मानव अधिकार दिवस मनाया जाएगा तथा ७५वीं वर्षगाँठ यानी अमृत महोत्सव का शुभारंभ होगा। यह अत्यंत सुखद भी है तथा गर्व करने योग्य भी कि हमारे राष्ट्र निर्माताओं ने भारतीय संविधान में मानव अधिकारों को प्रमुख स्थान दिया है। विश्वमंच पर भी भारत मानव के अधिकारों के लिए आवाज उठाता रहा है। यह दिवस दुनियाभर के देशों को यह विचार करने का भी अवसर देता है कि वे अपने देश में मानव अधिकारों के हनन पर गंभीर विमर्श करें तथा ऐसे सार्थक उपाय करें कि हर प्रकार के शोषण, दमन, अन्याय, प्रताड़ना से मनुष्य को मुक्ति दिलाई जा सके। साथ ही ऐसे उपाय अथवा योजनाएँ बनाई जाएँ कि अकाल मृत्यु मरनेवालों की प्राणरक्षा की जा सके।

इस संदर्भ में जब हम अपने देश में सबसे महत्त्वपूर्ण मानव अधिकार 'जीने के अधिकार' पर विचार करते हैं तो हमारे सामने अनेकानेक प्रश्न एवं चुनौतियाँ उपस्थित हो जाती हैं। आइए, उन पर बारी-बारी से विचार करते हैं। भारत में संभवत: हर वर्ष सर्वाधिक मौतें सड़क दुर्घटनाओं में होती हैं। लगभग डेढ़ लाख लोग दुर्घटना स्थल पर ही दम तोड़ देते हैं। जो लोग अस्पताल जाकर मरते हैं, उनका कोई स्पष्ट आँकड़ा नहीं है। इन मौतों को आसानी से कम किया जा सकता है—यदि विभिन्न प्रकार की आवश्यक योजनाएँ बनाई जाएँ। भारत की राजधानी दिल्ली में ब्लूलाइन बस के चलते पाँच सौ से अधिक लोग सिर्फ बसों में आगे निकलने की आपसी होड़ या बस में उतरने के लिए 'चैसिस' सही न होने तथा अन्य कारणों से मारे गए। स्वीडन देश ने संकल्प लिया, योजना बनाई, सही प्रकार से लागू की तथा सड़क दुर्घटनाओं को न्यूनतम स्तर पर ला दिया। भारत में कड़े कानून बनते भी हैं तो भ्रष्टाचार के कारण प्रभावी नहीं हो पाते। सिर्फ 'यातायात सप्ताह या पखवाड़ा' मनाने से ये दुर्घटनाएँ नहीं रुक पाएँगी! दुर्भाग्य से डेढ़ लाख मौतों के बावजूद यह विषय मीडिया या चैनलों के लिए विचार योग्य नहीं माना जाता। इसी प्रकार प्रतिवर्ष सवा लाख या डेढ़ लाख के आसपास लोग आत्महत्याओं के कारण मरते हैं। विशेषज्ञों के अनुसार ९५ प्रतिशत आत्महत्याओं को बचाया जा सकता है। यदि समय रहते आत्मघात सोच रहे व्यक्ति को मदद मिल जाए। ऐसे दर्जनों उदाहरण हैं, जहाँ आत्महत्या से बचाए गए लोगों ने उपलब्धि के कीर्तिमान गढ़े हैं। इसी प्रकार कितने ही छोटे-मोटे उपाय भी अनेक प्रकार की दुर्घटनाओं को बचा सकते हैं। यह कितना दु:खद है कि सैकड़ों लोग प्रतिवर्ष सिर्फ इसलिए जान गँवा बैठे कि मैनहोल में ढक्कन नहीं थे, गड्ढों को खुला छोड़ दिया गया, बिजली का तार टूट गया आदि-आदि। कुछ लोगों के लालच, भ्रष्टाचार के कारण पुल टूट जाते हैं, इमारतें गिर जाती हैं और सैकड़ों लोग मारे जाते हैं। भारत सरकार के आँकड़ों के मुताबिक हर वर्ष पाँच लाख से अधिक लोग अकाल मौत मरते हैं, जिन्हें बचाया जा सकता है। पाँच लाख के इस आँकड़े को समझने के लिए हमें यह सोचना पड़ेगा कि नौरू नामक एक देश की आबादी तेरह हजार है, सैनमरीनो की चौंतीस हजार है। ऐसे कई दर्जन देश हैं, जिनकी आबादी भी पाँच लाख से कम है। कितना भयावह है यह मौतों का आँकड़ा। किसी एक व्यक्ति का जीवन भी कितना महत्त्वपूर्ण है, इसे समझने के लिए भी दो उदाहरण साझा करूँगा। महाराष्ट्र में बच्ची होने के अपराध में उसे किसी अनाथालय के कूड़ेदान में फेंक आते हैं। एक अमरीकी दंपती उसे गोद ले लेते हैं और कुछ वर्षों बाद ऑस्ट्रेलिया में बस जाते हैं। वह बच्ची बड़ी होकर क्रिकेट खिलाड़ी बनती है और ऑस्ट्रेलिया की महिला टीम को अपने शानदार खेल से विश्व विजेता बना देती है!

इसी प्रकार ओडिशा में एक गरीब मजदूर शराब के नशे में अपनी ही झोंपड़ी में आग लगा देता है। गाँववाले झोंपड़ी में मौजूद माँ-बेटी को बचा लेते हैं। यह बच्ची एक स्वयंसेवी संस्था द्वारा अपना ली जाती है। जल जाने से बची यह बच्ची भारत के लिए अतरराष्ट्रीय स्पर्धाओं में कई स्वर्ण पदक जीतकर देश का गौरव बढ़ाती है। कहने की आवश्यकता नहीं कि हर व्यक्ति का जीवन कितना मूल्यवान है और भारत में पाँच लाख से अधिक बेगुनाह लोग सिर्फ कुव्यवस्थाओं या भ्रष्टाचार या लापरवाहियों के कारण मौत के शिकार बन जाते हैं। मौतों के अलावा लाखों लोग जीवनभर के लिए अपाहिज हो जाते हैं। यह भी उल्लेखनीय है कि दुर्घटनाओं के कारण अरबों रुपयों का धन भी नष्ट होता है। यह भी कितना विडंबनापूर्ण है कि जो दुर्घटना मात्र कुछ रुपयों की व्यवस्था से टाली जा सकती थी, उस दुघर्टना के बाद मुआवजों में करोड़ों रुपए खर्च हो जाते हैं। यह भी कम विचारणीय नहीं है कि जिस देश में मूर्तियों की पूजा होती है, पशुओं, पंछियों, पेड़ों, नदियों को पूजा जाता है, उसी देश में मनुष्यों की मृत्यु के प्रति इतनी संवेदनहीनता और उपेक्षाभाव क्यों है? पोलैंड में मात्र १० मजदूरों की मौत पर, वह भी खान दुर्घटना में, राष्ट्रीय शोक घोषित कर दिया गया था।

यह भी विचारणीय है कि वैश्विक मानव अधिकार सूचकांक में भारत का स्थान इतना नीचे क्यों है? भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र है, साथ ही एक महान् संस्कृति का उत्तराधिकारी भी, जिसने विश्व को महात्मा बुद्ध, महावीर स्वामी, गुरु नानक जैसे महापुरुष दिए। प्रेम,

अहिंसा, करुणा, सद्भावना, शांति जैसे जीवन-मूल्यों की ध्वजा फहराई। गुट निरपेक्ष आंदोलन का अगुआ बनकर विश्वयुद्ध के खतरे से बचाया। वही भारत मानव अधिकारों के संदर्भ में सबसे निचली कतार में हो तो यह निश्चय ही दु:खद है। भारत में मानव अधिकार आयोग, महिला आयोग है, बाल अधिकार आयोग है, अल्पसंख्यक आयोग है, तरह-तरह की व्यवस्थाएँ हैं, कानून हैं, अदालते हैं, फिर भी कमी कहाँ रह जाती है, गंभीरता से विवेचन की आवश्यकता है।

एक सभ्य सुसंस्कृत समाज के लिए…

पिछले दिनों एक ऐसा भयानक अपराध सामने आया, जिसने पूरे समाज को बेचैन कर दिया! २७ वर्ष पूर्व हुआ तंदूर कांड, जिसमें हत्या के बाद शव को ठिकाने लगाने के लिए तंदूर का प्रयोग किया गया था, जैसे कुछ और विकृत एवं भयानक रूप लेकर वापस आया हो! इस अपराध में लिव-इन संबंध और तथाकथित प्रेम भी केंद्र में था तथा विश्वास की क्रूर हत्या हुई थी, इसलिए भी समाज बुरी तरह आहत हुआ!

क्रूरता के अलावा दोनों में एक समानता और भी थी, जिस पर कम लोगों का ध्यान गया है और वह है कि तंदूर कांड में शव को ठिकाने लगाने की प्रेरणा एक विदेशी फिल्म से ली गई थी, वहीं वर्तमान में हुए कांड में क्रूरता की प्रेरणा एक विदेशी वेब सीरीज के दृश्य से ली गई। विचारणीय है कि क्या ये दोनों अपराध मीडिया से प्रेरित होने के संदर्भ में कोई अपवाद हैं? अब तक सैकड़ों गंभीर अपराधों में अपराधियों ने स्वीकार किया है कि उन्हें अपराध का तरीका या 'आइडिया' किसी फिल्म से मिला था। इस संदर्भ में यह विमर्श जरूरी है कि वर्तमान में टी.वी. चैनल, फिल्में, फेसबुक जैसे सोशल मीडिया पटल या वेब श्रृंखलाएँ बच्चों, किशारों, युवाओं को रात-दिन किस प्रकार की विकृति, फूहड़ता, अश्लीलता, कुरुचि, अपराधी प्रवृत्ति, संवेदनहीनता तथा अमानवीयता परोस रही हैं। समाज में हर दिन अलग-अलग प्रांतों के विभिन्न नगरों में मासूम बच्चियों, किशोरियों, युवतियों से सामूहिक दुष्कर्म तथा हत्या आदि के कुकृत्य भय तथा असुरक्षा की भावना भर रहे हैं। क्या बढ़ते अपराध तथा अपराधों में बढ़ती क्रूरता, अमानवीयता के प्रति समाज को चिंतित नहीं होना चाहिए!

अपराध होते आए हैं, लेकिन डाकुओं द्वारा महिलाओं, बच्चों के प्रति सम्मान के किस्से भी हमने सुने हैं। समाजशास्त्रियों, बुद्धिजीवियों, सरकारों को गहन विमर्श करना होगा कि सामाजिक ढाँचे में कुछ तो दरारें आई हैं। इन्हें कैसे भरा जाए? फूहड़ता, अश्लीलता से युवा पीढ़ी को कैसे बचाया जाए? इधर के वर्षों में नाबालिगों की अपराधों में भागीदारी बेतहाशा बढ़ी है? यह हम कैसा बीमार समाज बना रहे हैं? दुनिया में इन अपराधों के चलते भारत की एक सभ्य सुसंस्कृत देश की छवि कैसे संभव है? भारत में मोबाइल का प्रयोग दुनिया के देशों में सबसे अधिक है। बच्चों तक इसकी पहुँच हो गई है। अश्लील सामग्री बहुत आसानी से उपलब्ध है। कच्चे दिमागों पर इसका कितना विषैला असर पड़ता है, यह स्वत:सिद्ध है। इसलिए सरकार को अश्लील और फूहड़ सामग्री को नियंत्रित करने में पहल करनी होगी तथा सख्ती भी दिखानी होगी। फेसबुक हर किसी के द्वारा प्रयोग किए जा रहे पटल पर अश्लील सामग्री क्यों उपलब्ध रहे! जो वयस्क हैं, उन तक ही ऐसी फिल्में या वेब सीरीज सीमित होनी चाहिए, जिनमें 'वयस्क सामग्री' हो, अश्लीलता तो हर हाल में प्रतिबंधित होनी चाहिए! दुनिया के अनेक विकसित तथा विकासशील देशों में ऐसी व्यवस्थाएँ की हैं कि अश्लील सामग्री की पहुँच बच्चों तथा किशोरों तक न हो सके। नारी सुरक्षा के संदर्भ में भारत का स्थान विश्व में खराब स्थिति में है। यह बहुत जरूरी हो गया है कि आए दिन बच्चियों, किशोरियों, युवतियों, महिलाओं के प्रति होनेवाले अपराधों के नियंत्रण के लिए कठोर एवं सार्थक कदम उठाए जाएँ।

साहित्य उत्सव में साहित्य…

इसे सुखद ही माना जाना चाहिए कि भारत के अनेक नगरों में विभिन्न संस्थाओं द्वारा साहित्य उत्सवों का आयोजन किया जा रहा है। यह और भी सुखद है कि इनका विस्तार, छोटे-छोटे नगरों तक हो रहा है। जहाँ एक ओर बड़े-बड़े समूह या संस्थान या टी.वी. चैनल बड़ी धूमधाम, चमक-दमक के साथ ऐसे आयोजन कर रहे हैं, वहीं सीमित साधनोंवाली संस्थाएँ भी अपने निजी प्रयासों से सफल आयोजन कर रही हैं। सूत्र रूप में कहें तो यदि समाज में संवादहीनता, संवेदनहीनता, अमानवीयता बढ़ रही है तो साहित्य भी अपने पंख फैला रहा है। बात हिंदी तक सीमित रखी जाए तो अब ८०० से अधिक टी.वी. चैनलों में साहित्य के लिए कोई जगह नहीं है, दूरदर्शन से नियमित साहित्यिक कार्यक्रम समाप्त हो गए हैं, आकाशवाणी में भी साहित्य की उपस्थिति निरंतर घटती जा रही है, साहित्यिक पत्रिकाओं की पहुँच ६० करोड़ हिंदी पढ़ने-लिखनेवालों के हिसाब से अत्यंत सीमित है तो साहित्य उत्सवों की प्रासंगिकता महत्त्वपूर्ण हो जाती है। इसलिए इन साहित्य उत्सवों की गुणवत्ता और उपलब्धियों पर विचार करना भी आवश्यक हो जाता है! सबसे जरूरी सवाल यही हो जाता है कि साहित्य उत्सवों में 'साहित्य' कितना होता है। बड़े-बड़े साहित्य उत्सवों में प्राय: भीड़ जुटाने तथा भीड़ को आकर्षित करने के लिए ग्लैमर का बोलबाला बढ़ जाता है। लेखन की गुणवत्ता अथवा श्रेष्ठ साहित्यिक कृतियों की जगह चर्चित नामों पर अधिक जोर दिया जाता है। विचारणीय यही है कि क्या साहित्य उत्सवों में समकालीन गंभीर विषयों पर चर्चा होती है? क्या युवा रचनाकारों को भरपूर अवसर मिलता है? क्या ऐसे साहित्यकारों को आमंत्रण मिलता है, जो प्रचार-प्रसार, गुटबंदी आदि से दूर साहित्य साधना करने का श्रेष्ठ साहित्यिक कृतियों पर विमर्श होता है? क्या प्रकाशन संबंधी समस्याएँ विमर्श का केंद्र बनती हैं? साहित्य का प्रचार-प्रसार कैसे हो, साहित्य विद्यालयों, गाँवों तक कैसे पहुँचे? साहित्यिक संस्थाओं, साहित्यिक पुरस्कारों आदि पर भी विमर्श होना चाहिए। कुल मिलाकर भीड़ का मनोरंजन हो, खूब तालियाँ बजें, उससे अधिक महत्त्वपूर्ण यह है कि साहित्य उत्सव से 'साहित्य' को कुछ ऊर्जा मिले, प्रतिष्ठा मिले, समाज को संस्कारित करने का अवसर मिले। साहित्य के माध्यम से हम समाज, देश के प्रति, अपने दायित्वों के प्रति जागरूक हों, उन जीवन-मूल्यों के प्रति समर्पित हों, जो हमें बेहतर मनुष्य, बेहतर समाज बनाते हैं।

(लक्ष्मी शंकर वाजपेयी)

गरीब-हृदय

• विश्वंभरनाथ शर्मा 'कौशिक'

१० मई, १८९१, अंबाला (हरियाणा) में जन्म। क्राइस्ट चर्च कॉलेज, कानपुर से शिक्षा प्राप्त की। कल्लोल, बंध्या, पेरिस की नर्तकी, मणिमाला, चित्रशाला, साध की होली, रक्षाबंधन, अप्रैल फूल (कहानी-संग्रह); माँ, भिखारिणी, संघर्ष (उपन्यास); दुबेजी की चिट्ठियाँ, दुबेजी की डायरी (व्यंग्य-संग्रह) बहुत लोकप्रिय हुए। उन्होंने साहित्यिक पत्रिका 'हिंदी मनोरंजन' का संपादन करते हुए हिंदी लेखकों की नई पीढ़ी तैयार की। इस रूप में वे अविस्मरणीय हिंदीसेवी भी रहे। यहाँ उनकी एक चर्चित कहानी 'गरीब-हृदय' प्रस्तुत कर रहे हैं।

भाद्रपद की दोपहर का समय था। फूलपुर ग्राम के एक खेत में कुछ स्त्री-पुरुष काम कर रहे थे। इनमें से अधिकांश चमार जाति के थे। खेत के निकट ही कुछ दूरी पर एक महुए के वृक्ष की छाया में एक अधेड़ व्यक्ति बैठा तंबाकू मल रहा था। अकस्मात् खेत में से एक वृद्धा चमारिन निकलकर बस्ती की ओर चली। उसे जाते देखकर तंबाकू मलनेवाले ने पुकारा, "कहाँ जाती हो?"

वृद्धा कुछ ठिठककर बोली, "जरा पानी पी आऊँ, अभी आती हूँ।"

"आज तुम्हें बहुत प्यास लग रही है, क्या बात है?"

वृद्धा बोली, "क्या कहूँ भैया, तीन-चार दिन से जी अच्छा नहीं है, रात को बुखार हो आता है, जाड़ा बहुत लगता है। अन्न अच्छा नहीं लगता। पानी पीते-पीते दिन बीतता है।"

"ऐसी बात है तो एक डोल भर के खेत की मेंड़ पर रख लो, बार-बार गाँव जाती हो, काम का हरजा होता है।" उस व्यक्ति ने तंबाकू फटफटाते हुए कहा।

"कोई लाकर रख दे तो हो सकता है, मुझमें तो इतना बूता नहीं है, जो कुएँ से डोल भरकर यहाँ लाऊँ।" इतना कहकर वृद्धा चल दी।

"अबकी जितना पानी पीना हो, पी आना या डोल-कलसा भरवाकर ले आना। अब मैं नहीं जाने दूँगा।" वृद्धा चुपचाप चली गई।

वह व्यक्ति तमाखू फाँककर अपने आप ही बोला, "जब जी अच्छा नहीं है, तब मजूरी करने काहे को आई?"

इसी समय एक युवक उधर से निकला। उसने उस व्यक्ति की बात सुनकर पूछा, "किसका जी अच्छा नहीं है, ठाकुर!"

ठाकुर युवक की ओर देखकर किंचित् मुसकराते हुए बोला, "अरे भइया! वही डायन है, मँहगुवा की अम्माँ। बुखार आता है, फिर भी मजूरी करने दौड़ी आई। सवेरे से दस दफे पानी पीने जा चुकी। हमारे काम का हरजा होता है, मजूरी मुफ्त की थोड़े ही देनी है। हम चाहते हैं, आज शाम तक खेत निका जाए।"

"कितने आदमी निका रहे हैं?"

"आठ आदमी हैं!"

"तब तो शाम तक हो जाना चाहिए।"

"होगा कैसे नहीं, न होगा तो मजूरी भी नहीं दूँगा।"

"इस बार तुम्हारी खेती अच्छी है, ठाकुर।"

"हाँ, अभी तो अच्छी हुई है, घर में कुछ आवे तब जानें। रब्बी क्या कुछ कम थी, पर पानी ने चौपट कर दी।"

"हाँ, यह तो ठीक बात है। कट-मड़कर खैरसल्ला से घर में आ जाए तो सब अच्छा है, नहीं तो कुछ भी नहीं।"

"खड़े काहे को, बैठ जाओ, किसी काम से जा रहे हो क्या?"

"नहीं काम तो कोई नहीं, ऐसे ही घूम-फिर रहा हूँ।"

"तो बैठो, हवा खाओ।"

युवक ठाकुर के सामने बैठ गया।

"तुम्हारे खेत तो सब निका गए।"

"हाँ, हमारा तो सब काम खत्म है, इसी से तो मस्त घूम रहे हैं।"

"हमारा काम भी दो-तीन दिन में हो जाएगा। आज यह खेत हो जाएगा। एक खेत और रह गया, सो परसों तक वह भी हो जाएगा।" अधेड़ व्यक्ति ने कहा।

इसी समय वृद्धा आती हुई दिखाई पड़ी। वह बहुत धीरे-धीरे आ रही थी। अधेड़ व्यक्ति बोला, "देखो, ससुरी कैसी जनवासी चाल चल रही है। जरा जल्दी पैर उठाओ चौधराइन। कुछ बताशे नहीं बिछे हैं, जो फूट जाएँगे।" पिछला वाक्य ठाकुर ने चिल्लाकर चौधराइन से कहा।

"बीमार तो मालूम होती है।"

"होगी ससुरी बीमार। हम तो पूरा काम लेंगे, तब मजूरी देंगे। बीमार थी तो मजूरी करने क्यों आई?"

"मजूरी न करे तो खाए क्या? घर की अकेली ठहरी, दूसरा कोई कमाने-धमाने वाला नहीं है।"

"भइया की बातें! इसके पास रकम है, पर कंजूस इतनी है कि बैठकर नहीं खा सकती।"

"रकम तो क्या होगी।"

"तुम मानते नहीं। गाँव में चाहे जिससे पूछ लो।"

"रकम है, तो इतनी तकलीफ क्यों सहती है?"

"मैंने बताया न कि कंजूस परले सिरे की है। प्राण दे देगी, परंतु बैठकर नहीं खाएगी।"

"होगी रकम, अपने को क्या करना है।"

इतनी देर में वृद्धा इन दोनों के निकट आ गई। युवक ने पूछा, "काकी, कुछ तबीयत खराब है क्या?"

वृद्धा बोली, "हाँ बेटा, चार दिन से रोज जूड़ी आ जाती है। अन्न चलता नहीं, पानी पी-पीकर दिन काटती हूँ।"

"जब तबीयत अच्छी नहीं है तो काम करने नाहक आई।"

"काम न करूँ तो बेटा खाऊँ क्या? गाँव में कोई रोटी का टुकड़ा देनेवाला तक नहीं है। क्या करूँ, भगवान् भी सुध नहीं लेते। चोला छूट जाए तो जंजाल से छुट्टी मिले।"

अधेड़ व्यक्ति बोला, "जंजाल काहे का? अकेला दम है, न बेटा, न बेटी। आगे नाथ न पीछे पगहा, फिर भी जंजाल!"

"बुढ़ापे में जब हाथ-पैर नहीं चलते और कोई रोटी देनेवाला नहीं होता तो अपना चोला ही जंजाल हो जाता है, भइया!"

इतना कहकर वृद्धा खेत के भीतर घुस गई।

युवक बोला, "तुम तो कहते हो, इसके पास रकम है। जिसके पास रकम होगी, वह इतनी तकलीफ कभी न उठाएगा।"

"अब तुम न मानो तो इसका क्या इलाज है?"

युवक थोड़ी देर तक बैठा रहा, तत्पश्चात् उठकर चल दिया।

□

सूर्यास्त का समय था। वही युवक शौच से निवृत्त होने के लिए गाँव के बाहर जा रहा था। सहसा उसके कानों में किसी के चीत्कार कर रोने का शब्द आया। युवक ठिठक गया और कान लगाकर सुनने लगा। कुछ क्षणों तक सुनने पर अपने ही आप बोला, "यह तो चौधराइन काकी की आवाज है, जान पड़ता है कि ठाकुर से कुछ झगड़ा हुआ।" यह कहता हुआ युवक उसी ओर चला।

खेत के सामने पहुँचकर उसने देखा कि वृद्धा चौधराइन भूमि पर बैठी चीत्कार कर रो रही है। सामने वही अधेड़ ठाकुर और चार-पाँच अन्य मजदूर खड़े हैं। पास पहुँचकर युवक ने पूछा, "क्या हुआ काकी, काहे रोती हो?"

वृद्धा युवक को देखकर और उसका सहानुभूतिपूर्ण प्रश्न सुनकर और जोर से रोने लगी।

युवक ने ठाकुर से पूछा, "क्या मामला है, ठाकुर?"

ठाकुर कर्कश स्वर में बोला, "इसके कारण मेरा खेत आज रह गया। इसने दिनभर यों ही काटा, जरा भी काम नहीं किया। दोपहर को तुम्हारे सामने यह पानी पीकर कितनी देर में आई थी। तुम तो उस समय मेरे पास ही बैठे थे।"

वृद्धा रोना बंद करके आर्त स्वर में बोली, "बेटा मनोहर! मैंने दिनभर जी तोड़कर काम किया। ये सब देखनेवाले हैं, इनसे पूछ लो। हाँ, चार-पाँच बेर पानी पीने जरूर गई थी। यहाँ पानी नहीं मिला तो गाँव जाना पड़ा। यहाँ पानी का इंतजाम होता तो काहे को जाती। सो अब ठाकुर कहते हैं कि मजूरी नहीं मिलेगी। खेत बाकी रह गया तो उसका दोष मेरे ऊपर धरते हैं। खेत नहीं हुआ तो मैं क्या करूँ? कुछ मैं अकेली तो थी नहीं और सब लोग भी तो थे। मैं तो यहाँ तक कहती हूँ कि पानी पीने में सब मिलाकर घंटा-दो घंटा लगा होगा, सो दो घंटे मैं और काम कर दूँगी, पर खेत फिर भी नहीं होगा। मजूरी की मजूरी नहीं देते और ऊपर से तीन-चार थप्पड़ मारे। मैं अनाथ हूँ, इसलिए चाहे जो कोई मार-पीट ले, जो आज मेरे कोई होता तो ठाकुर की मजाल थी जो हाथ लगा लेते।"

इतना कहकर वृद्धा ने पुनः रोना आरंभ किया। ठाकुर बोले, "तेरा कोई होता तो क्या कर लेता? ससुरी फैल मचाती है।"

इतना कहकर ठाकुर ने एक थप्पड़ मारा और पुनः दूसरा मारने को हाथ उठाया ही था कि मनोहर ने लपककर ठाकुर का हाथ पकड़ लिया और कहा, "बस ठाकुर, बहुत हुआ, बूढ़ी और बीमार औरत को मारते हो। बड़े शरम की बात है। और यह बेचारी ठीक तो कहती है, आज इसके कोई होता तो तुम इसे इस प्रकार पीट सकते थे?"

ठाकुर ने बिगड़कर कहा, "तुम क्यों बीच में टिपर-टिपर करते हो? तुमसे क्या मतलब?"

"मतलब क्यों नहीं है। यह अनाथ है तो क्या मार डालोगे? ऐसा अँधेर! आखिर कुछ तो काम किया है? दिनभर में आधे दिन तो किया है। आधे ही दिन की मजदूरी दो? एक तो मजूरी न देते हो और ऊपर से मारते हो।"

"इसकी वजह से हमारा खेत रह गया, नहीं तो आज हो जाता।"

"ऐसा नहीं हो सकता कि इसकी वजह से खेत रह गया। क्यों भई, क्या कहते हो, इसकी वजह से खेत रह गया?"

एक मजदूर बोला, "नहीं, सो बात तो नहीं है। खेत तो आज हो ही नहीं सकता था। यह कितना काम करती? पूरा काम करती तो बिसुआ,

दो बिसुआ और हो जाता, पर खेत तो अभी चार-पाँच बिसुआ रह गया। इतना काम यह अकेले नहीं कर सकती थी।"

"हमने तो ठाकुर से बहुतेरा कहा भइया, पर ठाकुर नहीं मानते। यही कहते हैं कि इसकी वजह से खेत रह गया। अब बताओ, हम क्या करें?"

मनोहर ने कहा, "वाह, ठाकुर साहब! वाह! खूब न्याय किया। यह दो-चार दफे पानी पीने गई तो तुम्हें मजूरी दाब लेने का बहाना मिल गया। उचित तो यह था कि यदि इसने कुछ कम काम भी किया था तो पूरी मजूरी दे देते। यह गरीब है, अनाथा है। इसको यदि दो-चार पैसे फालतू भी दे दोगे तो कुछ गरीब नहीं हो जाओगे।"

ठाकुर बोले, "मेरे पास इतना फालतू पैसा नहीं है, जो हरामखोरों को खिलाऊँ। तुम बड़े दयावान हो तो तुम्हीं दे दो।"

"मुझे देना होगा तो तुमसे पूछने नहीं आऊँगा। अच्छा, अब उसे कुछ देते हो या नहीं?"

"न दूँगा तो क्या करोगे?"

"ठाकुर, अब अधिक बात मत बढ़ाओ, नहीं तो ठीक न होगा। चुपचाप इसकी मजूरी दे दो। घंटे-दो घंटे के दो-चार पैसे तुम्हें काटना हो तो काट लो, समझे?"

मनोहर ने आरक्त नेत्रों से उपर्युक्त वाक्य कहे। मनोहर यथेष्ट हृष्ट-पुष्ट था। ठाकुर साहब अधेड़ होने के साथ ही साथ दुबले-पतले थे। अतएव मनोहर से रार बढ़ाना उन्होंने उचित नहीं समझा। टेंट से दस पैसे निकालकर उन्होंने बुढ़िया के सामने भूमि पर फेंक दिए और कहा, "छह पैसे मैंने काट लिये।"

मनोहर ने घृणापूर्वक कहा, "ठीक है! काकी पैसे उठा लो और घर चलो, जो मिला सो सही।"

बुढ़िया पैसे उठाकर चली। साथ-साथ मनोहर भी चला। बुढ़िया बोली, "बेटा, ये पैसे तुम्हारी बदौलत मिले, नहीं ठाकुर एक पैसा भी न देते। भगवान् तुम्हें दूध-पूत से सुखी करें।"

मनोहर बोला, "काकी, अब जब तक जी अच्छा न हो, कहीं काम पर न जाना। रोटी की चिंता मत करना। मैं अपने घर से रोज भिजवा दिया करूँगा।"

वृद्धा ने अवाक् होकर कृतज्ञतापूर्ण छलछलाते हुए नेत्रों से मनोहर को देखा।

मनोहर बोला, "घर पहुँचा आऊँ?"

"नहीं बेटा, चली जाऊँगी। बड़ी दया की बेटा। गाँव में तो कोई बात पूछनेवाला भी नहीं है।"

वृद्धा आशीर्वादों की झड़ी लगाती हुई गाँव की ओर चली और मनोहर गाँव के बाहर की ओर।

थोड़ी देर में मनोहर चौधराइन के पास पहुँचा। चौधराइन एक कोठरी में भूमि पर कथरी-गुदड़ी बिछाए पड़ी थी। सिरहाने पानी-भरा हुआ एक मैला-सा घड़ा रखा था। एक कोने में चूल्हे के पास चार-पाँच लोहे और पीतल के बरतन रखे थे। चौधराइन बहुत दुर्बल और अशक्त हो गई थी। मनोहर ने उसके पास खड़े होकर पुकारा, "काकी!" बुढ़िया ने आँख खोलीं। आँखें फट गई थीं। मनोहर को देखकर उसने क्षीण स्वर में कहा, "बेटा मनोहर!"

□

मनोहर के विवाह के दिन निकट थे। विवाह की तैयारियाँ हो रही थीं। वृद्धा चमारिन उस दिन से इतनी बीमार हो गई कि फिर उठ न सकी। मनोहर उसकी खोज-खबर लेता रहता था। एक दिन संध्या समय एक चमार मनोहर को बुलाने आया। बोला, "चौधराइन ने आपको बुलाया है।"

मनोहर ने पूछा, "क्या हाल है?"

"हाल तो खराब है, भइया! अब अधिक नहीं चलेगी। हमें तो ऐसा मालूम होता है कि आज की रात पार होना ही कठिन है। आगे राम जाने।"

"अच्छा चलो, मैं आता हूँ।"

थोड़ी देर में मनोहर चौधराइन के पास पहुँचा। चौधराइन एक कोठरी में भूमि पर कथरी-गुदड़ी बिछाए पड़ी थी। सिरहाने पानी-भरा हुआ एक मैला-सा घड़ा रखा था। एक कोने में चूल्हे के पास चार-पाँच लोहे और पीतल के बरतन रखे थे। चौधराइन बहुत दुर्बल और अशक्त हो गई थी। मनोहर ने उसके पास खड़े होकर पुकारा, "काकी!" बुढ़िया ने आँख खोलीं। आँखें फट गई थीं। मनोहर को देखकर उसने क्षीण स्वर में कहा, "बेटा मनोहर!"

मनोहर बोला, "हाँ, काकी! मैं हूँ। कैसा जी है?"

"अब तो बेटा चल-चलाव है। अच्छा है! भगवान् ने सुध ले ली। इस अंत समय में तुमने बड़ा साथ दिया बेटा। नहीं तो भूखी-प्यासी तड़प-तड़पकर मर जाती।"

मनोहर के नेत्रों में पानी भर आया। बुढ़िया दम लेकर पुनः बोली, "सुना है, तुम्हारा ब्याह होनेवाला है?"

"हाँ, काकी होनेवाला तो है।"

"बस, यही एक साध रह गई। तुम्हारी बहू का मुँह देखकर मरती तो अच्छा था, पर भगवान् की मरजी नहीं।"

बुढ़िया पुनः कुछ क्षणों तक दम लेकर बोली, "जहाँ इतना किया बेटा, वहाँ थोड़ा सा काम और कर देना।"

"बोलो!"

बुढ़िया ने अपना सिरहाना टटोलकर एक पोटली निकाली और मनोहर की ओर बढ़ाई। मनोहर ने पोटली लेकर कहा, "इसमें क्या है?"

"खोलकर देखो।"

मनोहर ने पोटली खोली। उसमें पंद्रह रुपए नकद तथा पैर के चाँदी के कड़े का एक टुकड़ा था। मनोहर ने पूछा, "इसे क्या करूँ?"

"पंद्रह रुपए हैं, इनमें मेरी किरिया-करम करा देना। इसी समय के लिए बचाकर रखे थे।"

"और यह कड़े का टुकड़ा?"

"इसे बेचकर अपनी बहू के पैरों का कोई गहना लेकर मेरी तरफ से मुँह दिखाई दे देना। साध तो यही थी कि मैं अपने हाथों देती, पर जैसी भगवान् की इच्छा।"

"इसकी क्या जरूरत है, काकी! मैं यह सब तुम्हारे ही काम में लगा दूँगा।"

"ऐसा न करना, बेटा! नहीं मेरी आत्मा दु:खी होगी। यह मैं जानती हूँ बेटा, कि भगवान् का दिया तुम्हारे पास सबकुछ है। मैं तुम्हें क्या दे सकती हूँ। मैं खुद तुम्हारे टुकड़े खा रही हूँ। पर बेटा, भगवान् ने भी सुदामा के तंदुल ले लिए थे। मेरे लिए तुम भी भगवान् का रूप हो। जिसके मन में दया-धर्म है, वह भगवान् का ही रूप है। सो बेटा, सुदामा के तंदुल समझकर इसे ले लो और बहू के पैरों का गहना लेकर मेरी तरफ से दे देना। बेटा! मैं नीच हूँ, तुम्हारी जूती हूँ, इससे तुम्हें मेरी बात अच्छी न लगती होगी, यह मैं जानती हूँ, पर बेटा क्या कहूँ, मेरी यह साध है। साध पूरी हो जाएगी तो आत्मा सुखी होगी।"

इतना कहते-कहते बुढ़िया की दम उखड़ गई और वह हाँफने लगी।

मनोहर ने अश्रुपूरित नेत्रों से गद्गद स्वर में कहा, "अच्छा काकी, जैसी तुम्हारी इच्छा। जैसा तुम कहती हो, वैसा ही करूँगा।"

"भगवान् तुम्हें दूध-पूत से सुखी रखें। अब मैं सुख से मरूँगी।"

कोठरी के बाहर आकर मनोहर ने उस चमार से, जो उसे बुलाने गया था, कहा, "देखो, आज रात में इसके पास रहना, हटना नहीं। आज रात पार होना कठिन है।"

उस रात में चौधराइन का देहांत हो गया। विवाह के कुछ दिनों उपरांत मनोहर अपनी पत्नी तथा चचाजात भाई के साथ एक पर्व पर शहर में गंगा-स्नान करने गया और उस कड़े के टुकड़े के बदले में उसने अपनी पत्नी के लिए पाजेब खरीद ली।

सा/अ

लघुकथा

कोख का बँटवारा

• अंकुर सिंह

रामनरायण के दो बेटों का नाम रमेश और सुरेश है। युवा अवस्था में रामनारायण की मृत्यु होने के बाद उनकी पत्नी रमादेवी ने रामनारायण की जमापूँजी और पूर्वजों से मिली संपत्ति से दोनों बेटों की परवरिश की। रमादेवी का बड़ा बेटा रमेश पढ़-लिखकर शहर में सरकारी विभाग में बड़े बाबू के पद पर आसीन हुआ तो छोटा बेटा सुरेश गाँव में ही खेतीबाड़ी सहित अन्य सामाजिक कार्य करने लगा। एक भाई शहर में, तो दूसरा गाँव में अपने परिवार के साथ रहने लगा। रमादेवी अपने छोटे बेटे सुरेश के साथ गाँव में ही रहती थी। रमेश और सुरेश दोनों के रिश्ते सामान्य थे तथा दोनों एक-दूसरे की भावनाओं का पूरा सम्मान करते थे। सुरेश कभी अपने बड़े भाई के सामने ऊँची आवाज में बात नहीं करता।

खैर, दोनों भाई अपने-अपने तरीके से अपने परिवार के पालन-पोषण में लगे रहे और दोनों के बच्चे पढ़-लिखकर शहर में नौकरी करने लगे। कुछ दिनों बाद रमेश भी रिटायर हो सरकारी विभाग से पेंशन पाने लगा और सुरेश गाँव में ही रमेश से साथ आपसी रजामंदी से हुए बँटवारे में मिली अपने हिस्से की जमीन पर धन-अर्जन का साधन बना अपना जीवन बिताने लगा।

कुछ सालों बाद अचानक एक दिन सुरेश को करोड़ों रुपए की लाटरी लग गई। यह बात जब रमेश को पता चला तो वह छोटे भाई के बदलते हालात देख बड़ा खुश हुआ, पर रमेश के बीवी और बच्चों को सुरेश के परिवार की यह खुशी फूटी आँख नहीं सुहाई और रमेश की बीवी, बच्चे रमेश को ताने देने लगे तथा सुरेश के साथ हुए बँटवारे को न मानने और उसपर सुरेश के द्वारा बनाई गई संपत्ति में हिस्सेदारी माँगने के साथ जयजाद के पुन: बँटवारे की बात कहने लगे। पहले तो रमेश अपने बीबी-बच्चों की बात नजरंदाज करता रहा, लेकिन आखिर में रमेश पर यह कहावत चरितार्थ हुई कि 'जो किसी के सामने नहीं झुकता, उसे उसके अपने झुका देते हैं।' अंत: रमेश भी अपने परिवार के दबाव में आ छोटे भाई सुरेश के साथ पूर्व में आपसी रजामंदी से हुए बँटवारे को न मानते हुए उस पर सुरेश द्वारा बनाई गए चीजों में हिस्सा माँगने लगा। यह देख सुरेश ने कहा, भैया! जैसे आपने अपने पूरे जीवन में नौकरी की और अब आप सरकार से मिलनेवाली लाखों रुपए की पेंशन के हकदार बने, वैसे मैंने भी अपना पूरा जीवन आपसी सहमति से हुए बँटवारे से अपने हिस्से में मिली जमीन पर इन चीजों का निर्माण करने में लगा दिया, ताकि इसके होनेवाली दो रुपए की आमदनी से मैं अपना जीवन बिता सकूँ। रमेश की अंतरात्मा तो सुरेश की इन बातों को सही बता रही थी, पर बीवी और बच्चों के जिद्द के कारण रमेश इसे सहर्ष स्वीकार नहीं कर पा रहा था और पूर्व में हुए बँटवारे को मानने को तैयार नहीं था। सुरेश भी अपनी कही बातों को बार-बार दुहराए जा रहा था। धीरे-धीरे इन बातों का सिलसिला बहस और झगड़े का रूप ले ऊँची आवाज के साथ पूरे कमरे में गूँजने लगा।

होते शोर के बीच कमरे में एक किनारे बैठी इनकी माँ रमादेवी अपने नम्र आँखों से ऊपर छत की तरफ देखते हुए ईश्वर से कह उठी—"हे ईश्वर! ये तू संपत्ति का बँटवारा नहीं करवा रहा, बल्कि मेरी कोख का बँटवारा करवा रहा है!"

सा/अ

चंदवक, जौनपुर,
उत्तर प्रदेश-२२२१२९
दूरभाष : ८३६७७८२६५४

अब लौं नसानी···

● ऋता शुक्ल

व्यासपीठ पर विराजमान कमलेशानंदजी की सुललित वाणी और मंत्रमुग्ध उनके वचनामृत का पान करते श्रोतागण—

जिस मनुष्य के चित्त में अहंकार का आविर्भाव होता है, वह भ्रमित मनोदशा को प्राप्त होता है। विकृत, पथभ्रष्ट, नाना दुर्गुणों से युक्त दुर्बुद्धि ही अहंकार की जननी होती है। ऐसा व्यक्ति खंडित नक्षत्र का अवशिष्ट-उल्कापिंड बनकर रह जाता है।

सच, प्रभारंजन का पूरा व्यक्तित्व एक दहकता हुए अग्निपिंड बनकर रह गया था। चाल-ढाल में विचित्र अकड़, प्रत्येक क्षण मनोविभ्रम से ग्रस्त मन, शंकालु वृत्ति से आकंठ भरा हुआ दयनीय व्यक्तित्व।

श्रोता मंडली में सबसे आगे की पंक्ति में बैठी कुमुदिनी प्रश्न-सत्र के लिए प्रतीक्षारत थीं—मेरा एक विनम्र प्रश्न है। मेरा भगिनी पति इसी मानसिकता से ग्रस्त है।

आचार्यवर, कृपया बताएँ, मनुष्य मात्र के हृदय में अहंकार किन कारणों से उत्पन्न होता है, मृत्युपर्यंत मनुष्यता का क्षरण न हो, इसके लिए क्या करणीय होता है ?

उनके गुरुभाई के हृदय में अकूत करुणा भाव था—बहन, बहुत पहले आपके श्रद्धास्पद पिता, हमारे प्रात: वंदनीय आचार्य श्रेष्ठ विमलेंदु शास्त्री से मैंने यही प्रश्न पूछा था—गुरुवर, मेरे माता-पता सादगी और सरलता की मूर्ति हैं, फिर भी मेरे अग्रज चंद्रप्रकाश में इतनी कठोरता किस प्रकार··· ? तब उन्होंने प्रेमपूर्वक समझाया था—कहा गया है, अपनी संतानों को संपत्ति देकर जाओ, न जाओ, मनुष्यता के संस्कार अवश्य दे जाओ।

कमलेश, आपके माता-पिता से एक बड़ी भूल यह हुई कि उन्होंने आपके बड़े भाई चंद्रप्रकाश की उचित-अनुचित प्रत्येक माँग को पूरी करने में कोई कोताही नहीं की। जीवनभर जमींदारी वैभव के मद में डूबे रहे। पुश्तैनी धन, पर्याप्त आमदनी। चंद्रप्रकाश के लिए इतना ही पर्याप्त था।

लेकिन आचार्यजी, मैं भी तो उसी परिवेश में पला न, फिर ?

सुप्रसिद्ध कथाकार। 'अरुंधती', 'दंश', 'अग्निपर्व', 'समाधान', 'बाँधो न नाव इस ठाँव', 'शेषगाथा', 'कनिष्ठा उँगली का पाप', 'कितने जनम वैदेही', 'कासों कहों मैं दरदिया' तथा 'मानुस तन' कृतियाँ चर्चित। 'क्रौंचवध तथा अन्य कहानियाँ' कृति भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा पुरस्कृत। इसके अलावा लोकभूषण सम्मान आदि विशिष्ट पुरस्कारों से सम्मानित।

जानती हैं कुमुदिनी बहिन, आपके संत सुझाव पिता ने मृदु मुसकान के साथ उत्तर दिया था—

जल में कमलवत् रहे, तभी तो तुम कमलेशानंद बने। पूर्व जन्मों के संस्कार तुम्हारी आत्मा का कवच बने पुत्र। तुलसी बाबा की शास्ति को मानते हो न, तुलसी तहाँ न जाइए, कंचन बरसे मेह !

मेरा अग्रज अहंकार का पुतला बन चुका था। ठेकेदारी की आय, व्यवसायी श्वसुर की अथाह संपदा का स्वामित्व ! मेरे मात-पिता उसके व्यंग्य वचनों से आहत होते रहे। हूबहू वही स्थिति कमलिनी बहिन के पति श्रीमान प्रभारंजन की भी है। उन सरीखे जीवों के लिए तुलसी बाबा की कए अर्द्धाली सटीक उतरती है—

क्षुद्र नदी, भरि चलि उतराई।

व्याख्यान समाप्त होने के पश्चात् कलेशानंदजी ने कुमुदिनी को कई बातें बताई थीं—आपके छोटे बहनोई प्रभारंजन की शैशवावस्था मैंने देखी है। जिला स्कूल के संस्कृत शिक्षक अनुराग रंजन के ज्येष्ठ पुत्र में बालपन से ऐसे ही लक्षण थे। इनकी माताजी उन्हें अपने साथ शिवाला घाट ले जातीं, जब इनका हठीला स्वभाव देखकर उसको चिंता होती थी। छोटी-बड़ी किसी भी वस्तु के लिए हठ कर बैठना, धरती पर लोट-पोट होने लगना। अपनी माताजी को दाँतों से काटना···। छीना-झपटी करनेवाली उसकी मनोवृत्ति को सुभद्रा काकी हँसी में टाल जाया करती थीं। अबहीं लड़कपन है न, परमा बउआ जइसे जइसे चेतेंगे,

नरम पड़ते जाएँगे।

पर ऐसा कुछ भी नहीं हुआ।

कुमुदिनी मौन थीं—कैसा वैषम्य घिर आया था छोटी के जीवन में! पूरे दस साल छोटी कमलिनि के लिए उनके मन में गहरा ममत्व था। मनोविज्ञान विषय में परास्नातक, गृहकार्य में निपुण! उनके पिता आचार्य विमल शास्त्री ने भावी वर का बाहरी रूप-रंग देखा था और रीझ गए थे।

माँ ने कई बार टोका था—मगन मन रामायण की चौपाई गुनगुना रहे हो। पता लगाया, लड़के का स्वभाव कैसा है? बात-व्यवहार में कैसा है? कोई इधर-उधर की ऐब तो नहीं?

मैंने भावी वर के माता-पिता को देखा-परखा है। कमलिनी के भविष्य को लेकर मुझे भी उतनी ही चिंता है। भावी वर सौम्य है! प्रभारंजन मेरी बिटिया के मनोभाव को समझेगा अवश्य!

शुभ मुहूर्त देखकर सभी वैवाहिक अनुष्ठान संपन्न हुए थे। गाँव के वयोवृद्ध पंडित विजयानंदजी की वाणी में कंपन था। उनकी असमर्थता देख मुकुदिनी ने पिता की ओर देखा था। तुम्हारा मनुभाव समझ गया बिटिया, मेरा चश्मा लाना जरा! विवाह के वैदिक मंत्र उन्होंने स्वयं पढ़े थे।

सबसे छोटी कमलिनी की विदाई उनके लिए असह्य थी। उन्होंने पत्नी के समक्ष अपनी मनोव्यथा प्रकट की थी—बड़ी बिटिया कुमुदिनी भी अपने घर वापस लौट जाएगी। यह घर-आँगन बिल्कुल सूना हो जाएगा। उन्होंने प्रस्ताव रखा था—मेरा पट्टशिष्य कमलेशानंद इन दिनों काशी में है। उसने हम दोनों को वहाँ आमंत्रित किया है। श्रीमद्भागवत सप्ताह का भव्य आयोजन काशी हिंदू विश्वविद्यालय में होनेवाला है। आप कहें तो टिकट···

पत्नी की गहरी उदासी को भाँपते हुए वे तनिक चिंतित हो उठे थे—क्या सोच रही हैं, कल्याणी! आपकी इच्छा नहीं हो तो···

कुमुदिनी ने माँ के मन का मर्म थाह लिया था। उनकी कल्याणी माँ कहना चाहती थीं—रोज अपनी शिष्यमंडली को ज्ञान देते रहते हैं—ऐसी बानी बोलिए···

वाणी की शीनलता का वरदान सद्विवेकशील मनुष्यों को ही मिला करता है। छुटकी के मामले में आपसे बहुत बड़ी भूल हुई है, शास्त्रीजी! हर चमकनेवाली चीज सोना नहीं होती। मेरी बच्ची के प्रारब्ध में यही लिखा था।

□

काशी हिंदू विश्वविद्यालय परिसर में श्रद्धेय करपात्रीजी महाराज का मार्मिक व्याख्यान चल रहा था—श्रोतागण, आपने दंडवत् शब्द की व्याख्या जाननी चाही है। इस सात्त्विक शब्द का अर्थ है। द्वादश अंगों सहित हृदय भाग द्वारा भूमि का संस्पर्श अर्थात् सर्वभावेन निरभिमान हो जाना! यही हमारी संस्कृति है, यही हमारा संस्कार है।

कुमुदिनी को छोटी बहन के विवाहवाले दिन का स्मरण हो आया था। प्रभारंजन के पिता ने धीरे से कहा था—

प्रभा बेटे, ये हमारे कुलगुरु हैं। दोनों हाथों से चरण छूकर इनका आशीर्वाद लो। प्रभारंजन की झल्लाहट उनके चेहरे पर स्पष्ट थी। आप भी, हाथ जोड़ने से काम नहीं चल सकता क्या? पैंट की पूरी क्रीज खराब हो जाएगी।

वृद्ध आचार्य श्रेष्ठ ने अपने मिट्टी सने पाँव पीछे खींच लिये थे—सूने पाँव पीछे खींच लिये थे, सुनो प्रभारंजन, मैं कुपात्र से अपने पाँव नहीं छुलाता, अनिच्छापूर्वक दिखाए गए सम्मान को विष मानता हूँ।

आचार्यवर तत्क्षण वहाँ से प्रस्थान कर गए थे।

कल्याणी माँ हतवाक् थीं—बिटिया, हमारे द्वार से वृद्ध तपस्वी अनाहार, अपमानित होकर लौट गए। यह कैसा असगुन! विवाह की शेष विधियाँ असहजता के परिवेश में पूरी हुई थीं।

अस्वास्थ्य की बात कहते हुए वर के पिता और उनके अग्रज जनवासा लौट गए थे। विमलेंदु शास्त्री दुखी हो गए थे इस लड़के का ऐसा रूक्ष व्यवहार···!

प्रभारंजन की बड़ी बहिन ने बात सँभालने की कोशिश की थी—भाई लंबी यात्रा करके कल ही लौटा है। आप लोग शीघ्रता करें। विवाह संपन्न हो जाए तो हम लोग ब्रह्ममुहूर्त में ही यहाँ से जाना चाहेंगे।

कमलिनी ने बड़ी बहन को सबकुछ बताया था, दोहरा व्यक्तित्व है इस व्यक्ति का। भारतीय तेल निगम के निदेशक रजनीकांत कोलकाता से पधारे थे। उनके स्वागत में भाव-विभोर फूलों का बड़ा सा गुच्छा लिये घंटों पहले से हवाई अड्डा अगोरते रहे। पाँच सितारा होटल में भी अगवानी करनेवाले प्रथम महानुभाव यही थे।

दीदी, रंग बदलना मुहावरे की पहली बार चरितार्थ होते हुए मैंने प्रत्यक्ष देखा। उस दिन खाने की मेज पर भोजन परस रही थी तो निदेशक महोदय ने मुझसे पूछ लिया था—आप लोग पटेल नगर के निवासी हैं न, आपके पूज्य पिताजी का शुभनाम··· ?

आचार्य विमलेंदु शास्त्री···।

उन्होंने सम्मानसूचक विस्मय भाव से मुझे देखा था।

लेकिन आपके पति प्रभारंजन ने मुझे कुछ भी नहीं बताया। कमलिनी बहन, मेरा छोटा भाई अवनीकांत आपके प्रातःस्मरणीय पिता का शिष्य है। पंडित कमलेशानंदजी मेरे सहपाठी रह चुके हैं। मैं विज्ञान का विद्यार्थी था, तब भी कमलेशानंद के साथ बहुधा आचार्यजी की कक्षाओं में बैठा करता था। कितना सुखद संयोग है न, पूरे बीस वर्षों के बाद···

प्रभारंजन की मुखाकृति देखने योग्य थी।

अरे सर, आप कमलिनीजी के इतने करीबी हैं, मुझे अब जाकर पता चला। लेकिन विज्ञान के विद्यार्थी होकर वेद-पुराणों में आपकी इतनी अभिरुचि?

रजनीकांत के मुख पर अरुचि का भाव स्पष्ट था। महोदय, आपको इतना भी ज्ञात नहीं कि आपके पूज्य श्वसुरजी विज्ञान विषय के परास्नातक हैं। उन्होंने स्वाध्यायपूर्वक विश्व के श्रेष्ठ आध्यात्मिक ग्रंथों का अध्ययन किया है। कमलेशानंदजी से उनके व्याख्यान की सी.डी. मँगवाकर सुनता रहता हूँ। बहिन, आप यहाँ हैं तो आपके ब्याज से आचार्यजी के दर्शन तो होंगे ही। वह मेरे लिए दुर्लभ क्षण होगा। आप मुझे सूचना अवश्य देंगी, मैं त्वरित उपस्थिति हो जाऊँगा। उन्होंने कुछ भी खाने से मना कर दिया था। आज एकादशी व्रत है और वैसे भी मैं प्याज-लहसुन का सेवन नहीं करता।

कुमुदिनी और अखिलेश के जाने के बाद प्रभारंजन के बोल बर्छी की तरह चुभनेवाले थे—दिया सिलाई की डिबिया जैसी गाड़ी पर बैठकर आए और बैरंग चले गए। क्यों कुमूजी, आपका ठाट-बाट देखकर दोनों प्राणियों को अपार कष्ट हुआ होगा। अजी, पूरे जिले की तेल सप्लाई इस नाचीज के जिम्मे है। तमाम डीलर हमारी चौखट पर कोर्निश बजाते हैं। तुम मेरे मुताबिक चलती रहो। सिर से पैर तक स्वर्णाभूषणों से नहीं लाद दिया तो···तुम भी क्या याद रखोगी!

कमलिनी को पता था, उसके पिता कभी उसके घर नहीं आएँगे। विवाह के पूरे तीन महीनों के बाद नैहर जाना हुआ था। बड़ी बहन कुमुदिनी भी मिलने के लिए आई हुई थी। माँ-पिताजी सोने गए तो कुमुदिनी ने छोटी बहन को अपनी अँकवार में बाँध लिया था। कमल, सबके सामने कुछ भी पूछना उचित नहीं लगा। न जाने क्यों, ऐसा प्रतीत हो रहा है, जैसे तू कुछ छिपा रही है। मुझे बता, बात क्या है?

कमलिनी की आँखें डबडबा आई थीं। दीदी, माँ-बाबूजी को मत बताना। दरअसल, सेमल के फूल-सा जीवन है दोनों भाई-बहन का। बड़ी ननद जब भी आती हैं, बेमतलब रोक-टोक करती रहती हैं।

तुमने अबतक रंजू की पसंद का लंच डिनर बनाना नहीं सीखा? भात, दाल, रोटी, तरकारी, इसके अलावा भी दुनिया में अनेक स्वादिष्ट व्यंजन भरे पड़े हैं। पिज्जा, बर्गर, मैगी, नूडल, पनीर, चिली, पनीर कोफ्ता···और यह क्या, दिनभर छहगज्जी साड़ी पहने रहती हो। अभी से बूढ़ियोंवाली हरकतें।

हलका सा टॉप और जींस। कितनी चुस्त-दुरुस्त दिखती हूँ न। देखो भई, हमारे रंजू के साथ तो तभी निभेगी, जब तुम मेरी बात मानोगी, स्मार्ट बनो, मैं प्रतिभा से पू बन गई तो तुम कमलिनी से कुमू क्यों नहीं बन सकती?

□

मेरी मानो, तुम मेरी एक जींस 'ट्राई' करके देखो! 'फिट' आ गया तो 'ऑन लाइन' ऑर्डर करा देंगे। देखो कुमू, हमारा रंजू ठहरा टॉप इंजीनियर। उसकी कंपनी में उसके जैसा स्मार्ट और हैंडसम कोई नहीं। ऊँची सोसाइटी में उसका उठना-बैठना ठहरा। उस पार्टीवाले दिन मन मसोसकर कह रहा था।

दीदी, कौन इसे समझाए। कई बार कहा, अम्मा-बाबूजी का, शास्त्री, शास्त्राइन का युग गया। एडवांस होना होगा। मिसेज अग्निहोत्री, मिसेज कंडूलना, हमारे साथ खुलकर एंज्वॉय करती हैं, इसके सिर में दर्द हो जाता है।

कुमुदिनी स्तब्ध रह गई थी, यह कैसी विडंबना! अम्मा-बाबूजी को ये सारी बातें मालूम होंगी तो···

छोटी बहन को धीरे से प्रबोध देते हुए उन्होंने कहा था, 'मैं अखिलेश से बात करूँगी।'

कोई लाभ नहीं होगा दीदी, यह रोग किसी के वश का नहीं है। मनोविज्ञान के श्रेष्ठ आचार्य डॉ. शुभेंदु हमारे विश्वविद्यालय में 'मानव-मन' विषय पर व्याख्यान देने के लिए आए थे। उन्होंने बताया था—अतृप्त-दमित इच्छाएँ ही मनोग्रंथि का कारण बन जाती हैं। न जाने किस जन्म की अतृप्ति ने इनके हृदय में स्थायी बसेरा बना लिया है। एक दिन बौखलाहट में कहने लगे थे—मेरे साथ वाले सब विदेश चले गए। तीन तल्ला आलीशान मकान बनवा लिया। कीमती कारें खरीद लीं, मोटा बैंक बैलेंस बना लिया, अब ऐश कर रहे हैं स्सा···! एक हमारे पितृदेव हैं। जन्म-जन्मांतर से घंटी बजाते, माला फेरते एक ही रट लगाते—विदेश जाने से आदमी की आकबत बिगड़ जाती है, धर्म-संस्कार सबकुछ नष्ट हो जाता है।

प्रभारंजन की माँ ने गहरा प्रतिवाद किया था, उसी घंटी बजानेवाले खद्दरधारी पिता की बदौलत आज यहाँ तक पहुँचे हो बबुआ! पुरोहिताई की आमद नहीं होती तो तुम्हारी भारी-भरकम फीस कैसे चुकाई जाती? वाह, परभू बबुआ, जनमदाता के प्रति ऐसा अनादर भाव!

कुमुदिनी ने छोटी बहन की मनोदशा के विषय में अपने पिता विमलेंदु शास्त्री को बताया था। विदाई के पहले उन्होंने कमलिनी को अपने स्वाध्याय कक्ष में बुलाया था—मेरी बच्ची, कातर नहीं होना है। विधि के विधान को भी अपनी दृढ़ संकल्प शक्ति से टाला जा सकता है। स्मरण रखना, काल वैदूर्यमणि होता है। उसे धारना होगा। उसके भीतर से स्वयं के प्राप्य को मथित करके निकालना होगा। यह तय कर सको तो···

कमलिनी ने अपना अवशिष्ट शोध कार्य पूरा करने का संकल्प लिया था। प्रभारंजन बगावत पर उतर आए थे। तुम्हारे घर से पर्याप्त दान-दहेज नहीं मिला, मैंने कुछ नहीं कहा। तुम्हें सलीका सिखाना चाहा, तुम नहीं सीख पाईं। अब इतने बड़े त्याग की उम्मीद मुझसे तो करो मत। मुझे मेरा ब्रेकफास्ट और लंच समय पर मिलना चाहिए, फ्रूट्स, मेवे, इटालियन, स्पेनिश डिशेज सबकुछ···! तुम्हें अच्छी तरह पता है, सोने के पहले मेरे पाँवों की मालिश होनी चाहिए। मेरी राय मानो, कॉण्टीनेंटल फूड मेकिंग का कोर्स ज्वॉइन करो। फ्रायड, एडलर, युंग को धोखने से कोई लाभ नहीं।

कुमुदिनी और अखिलेश बिना किसी पूर्व सूचना के प्रभारंजन के घर पहुँच गए थे।

अरे, आप लोग इस तरह अचानक··· ?

चौंक गए साढ़ू भाई, हमारा आना तो बनता है न। क्षमा करेंगे, हम लोग अनामंत्रित चले आए।

अरे नहीं, लेकिन आप लोग··· ?

चिंता न करें, हमारा सामान रजनीकांतजी के यहाँ है। कल सुबह मेरी एक आवश्यक बैठक है। सोचा, कुमुदिनीजी को भी साथ लेता चलूँ। आप लोगों से भेंट हो जाएगी।

ठीक है। आप लोग बैठें, चाय-कॉफी लें। मुझे टूर पर निकलना है।

प्रभारंजन तेजी से सीढ़ियाँ उतरते चले गए थे।

कमलिनी तनिक अस्त-व्यस्त हो उठी थी—दीदी, जीजाजी, पहले बता दिया होता, मैं कुछ तैयारी···

हम चाय-नाश्ता लेकर आए हैं। तुम हमारे पास बैठो।

घर तो सुंदर सजाया है कमलिनी, यह बताओ कि पिकासो कब से तुम्हारी पसंद बन गए?

उसने कोई उत्तर नहीं दिया था। पहलेवाली कमलिनी होती तो मीठी हँसी के साथ उसका चुलबुलापन बहनाई को निरुत्तर कर देता।

मेरी रुचि क्या आप नहीं जानते? हिमालय के सुंदर दृश्य, घाटियों में खिले हुए फूलों का परिदृश्य, उत्ताल तरंगोंवाला फेनिल समुद्र, अकेला नाव खेता हेमिंग्वे का बूढ़ा मछुआरा, रवि वर्मा की पेंटिंग, रघुराय के छायाचित्र···

कमलिनी के मुख पर आषाढ़ के घने बादलों का कलछौंहापन था।

कुछ लोग घनघोर आत्म-प्रशंसक हुआ करते हैं दीदी, उनकी अपनी इच्छा ही सर्वोपरि हुआ करती है। मैंने सामंजस्य बनाने की प्राणपण चेष्टा की, अपने संस्कार बचाए रखने के लिए इन दो वर्षों में अनवरत संघर्ष ही तो करती रही। रजनीकांत भाई ने इन्हें कई बार समझाया।

आपको सामिष भोजन पसंद है, लेकिन कमलिनी वैष्णव परिवार से आती है। चाहें तो आप कार्यालय की कैंटीन में खा लिया करें, लेकिन उस बच्ची पर अनावश्यक दबाव···

मेरी रसोई, मेरे बरतन-बासन सब अशुद्ध हो चुके हैं, भाईसाहब, मैं चाहकर भी आप लोगों को भोजन···

छह मास पूर्व कमलिनी के सास-ससुर गाँव चले गए थे। उनका निष्क्रमण अनायास नहीं हुआ था। उस रात प्रभारंजन अंडों की पोटली घर ले आए थे। रोटीवाले तवे पर आमलेट और भोजन की थाली में अखाद्य परोसने चले तो सास अपने कमरे से उठकर रसोईघर में आ गई थीं।

यह कैसी बिसाईन गंध?···यह क्या बबुआ। बाहर खाते-पीते रहे, हमने बर्दाश्त किया। अब घर के भीतर भी···सारे बरतन-बासन अशुद्ध हो गए। घर में छठ व्रत होता है। यह भी नहीं सोचा?

प्रभारंजन तिनक उठे थे, छठ व्रत तो सिन्हा आंटी भी करती हैं, सालों भर माछ-भात खाती हैं। उनकी रसोई तो भ्रष्ट नहीं होती। अम्मा, ये दकियानूसी विचार अपने पास रखें। कुमू को मेरे मन-मुताबिक चलना होगा। यह नहीं मानी तो···

अम्माजी का अपमान और मुझे चेतावनी दोनों एक साथ।

प्रभारंजन के पिता निर्विकार थे, आप कहा करती हैं न सुभद्रा, आपकी गंगातट सेवन की इच्छा पूर्ण होनेवाली है। हम पहले काशी चलेंगे। फिर अपने गाँव।

कुमुदिनी और अखिलेश के जाने के बाद प्रभारंजन के बोल बर्छी की तरह चुभनेवाले थे—दिया सिलाई की डिबिया जैसी गाड़ी पर बैठकर आए और बैरंग चले गए। क्यों कुमूजी, आपका ठाट-बाट देखकर दोनों प्राणियों को अपार कष्ट हुआ होगा। अजी, पूरे जिले की तेल सप्लाई इस नाचीज के जिम्मे है। तमाम डीलर हमारी चौखट पर कोर्निश बजाते हैं। तुम मेरे मुताबिक चलती रहो। सिर से पैर तक स्वर्णाभूषणों से नहीं लाद दिया तो···तुम भी क्या याद रखोगी!

प्रभारंजन की इच्छाएँ पंख पसारती सातवें आसमान को छूने चली थीं।

यह कार बहुत पुरानी हो गई। नए मॉडलवाली एक कार लेनी होगी। नया बँगला और एक फार्महाउस भी। डीलर दीनदयाल जौहरी की बुलाहट हुई थी।

आइए बंधु, आपने कहा था न, घाटोवाले पेट्रोल पंप के बारे में, समझ लीजिए, उसका कॉण्ट्रैक्ट आपके नाम हुआ। अब हमें प्रसन्न करना आपकी ड्यूटी बनती है।

बड़ी ननद प्रतिभा का अप्रत्याशित आगमन हुआ था। भाई-बहन का वह स्नेह मिलन।

सिस, नई कार पसंद आई?

बहुत ब्रो, अगले साल हम लोग भी ठीक यही मॉडल लेनेवाले हैं।

क्यों कुमू, नई कार में घूम आई या?

अरे, तुम्हारे गले में यह लाल सूत क्यों, मेरे भाई ने सतलड़ा गिफ्ट किया था, पूरे चौबीस कैरेट सोने का, वह क्या हुआ? पहना करो यार, ऐश करने की यही तो उम्र है, बूढ़ी होने पर शृंगार करोगी?

रहने भी दो सिस, किसके आगे ज्ञान बघारने चली हो? इनका चूल्हा-चौका पिछवाड़े सर्वेंट रूम में शिफ्ट हो चुका है। हमारे बिग बॉस रजनीकांत इनके अंगरक्षक बनकर जो आ गए हैं। उस खूसट के रहते हुए तो···इंतजार है उनके शीघ्र स्थानांतरण का···। इस शहर से उनके हटते ही···

रजनीकांत का वरदहस्त कमलिनी के माथे पर था। उनकी पत्नी

अनुराधा बराबर संपर्क में थीं—ननदजी, आप अपना शोधकार्य शीघ्र पूरा करें। भगवती पर भरोसा रखें, कोई-न-कोई मार्ग अवश्य निकलेगा।

रजनीकांत का स्थानांतरण पाटलिपुत्र हुआ था। वे प्रसन्न थे।

पूज्य शास्त्रीजी का सत्संग मिलेगा। गुरु-माताजी के हाथों का भोग-प्रसाद। इससे अधिक सुंदर योग और क्या होगा?

कारागृह से रिहा कैदी की तरह प्रभारंजन खुशी से उछल पड़े थे—अब मुक्ति मिली। सत्रहवीं शताब्दी के फकीर चले अपने गाँव। बहुत अच्छा हुआ, हमारे डीलरों की और हमारी भी भगवान् ने सुन ली।

सप्ताह भर के भीतर ही एक और आदेश निर्गत हुआ था—पाटलिपुत्र के लिए प्रभारंजन पांडेय का स्थानांतरण आदेश!

उनके मुख में घुलता मटन करी का स्वाद कुनैन के स्वाद में बदल गया था।

निश्चित तौर पर रजनीकांत ने कोई-न-कोई षड्यंत्र···।

दीन-हीन बलिपशु की कातरता दिखाते वे रजनीकांत के कार्यालय कक्ष में पहुँचे थे—सर, आपके साथ मेरा भी स्थानांतरण?

हाँ भाई, अभी-अभी मुझे भी सूचना मिली। कोई असुविधा? वहाँ तो आपकी ससुराल ठहरी न, चिंता कैसी, सामान बाँधिए।

लेकिन सर···!

लेकिन, परंतु की कोई गुंजाइश नहीं बंधु, हमारी नौकरी ही ऐसी है। यह तो शुभ संवाद है। कमलिनी बहन अपना शोधकार्य भी पूरा कर लेंगी।

शुभ संवाद, माय फुट···। मगरमच्छ की तरह घात लागए बैठे रहेंगे शास्त्रीजी। वहाँ जीना दूभर हो जाएगा। रजनीकांत की खुफियागिरी अलग से···

कुमुदिनी ने पिता को यह सूचना दी थी। वे आश्वस्त हुए थे। रजनीकांतजी ने दो मकान ढूँढ़ लिये थे।

प्रभारंजन, मैंने जुड़वाँ घर ढूँढ़े हैं। पूज्य शास्त्रीजी का परामर्श उचित है, साथ-साथ रहेंगे तो एक-दूसरे के सुख-दुःख में···

उन्होंने सारा कोप पत्नी पर निकाला था, तुम्हारे पिताजी और तुमने रजनीकांत के साथ मिलकर किसी जन्म का वैर निकाला है। मेरे एकांत में खलल पहुँचाने के लिए···

पाटन देवी के दर्शन, महावीर मंदिर का पूजन करके दोनों बहनें लौटीं तो दुर्वासा भाव से भरे प्रभारंजन आरामकुरसी पर लेटे थे।

आ गईं? आज तो तुम्हारे देवता-पितर बेहद प्रसन्न हुए होंगे। मुझे फिर से उस पोंगापंथी रजनीकांत का मातहत बनना होगा।

एक मास भी नहीं बीता था।

रजनीकांत के कार्यालय में विजिलेंस वालों का एक दल पहुँचा था।

निदेशक महोदय, इस सूची में आपके मातहत पाँच अधिकारियों के नाम हैं। आय से अधिक आमदनी, डीलर्स से घूस लेने का आरोप, पेट्रोल पंप आवंटन के नाम पर मोटी रकम वसूलने की बात इस शिकयत-पत्र में लिखी गई है।

रजनीकांतजी स्तब्ध रह गए थे।

यह पत्र झूठा भी तो हो सकता है।

महोदय, हमारे पास पुख्ता प्रमाण हैं, रकम देनेवालों का वीडियो भी है। ऊपर से आलाकमान का आदेश भी···।

प्रभारंजन ने पहली बार कमनिली के सामने मेष रूप धारण किया था।

तुम्हारे पिता की मंत्री से गाढ़ी जान-पहचान है। तुम चाहो तो मेरा बचाव···।

एक मौन चीत्कार कमलिनी के गले में जम गया था।

कुछ भी कहने-सुनने का अधिकार आपने पहले ही खो दिया है। आपके अम्मा-बाबूजी ने गृह त्याग किया, घर में अशुभता व्याप गई। मेरी पहलौंठी की कोख उजड़ गई, उससे अधिक पीड़ा आपके शब्द-बाणों से हुई।

प्रेग्नेंसी थी भी या काम से बचने का बहाना था। अब आराम करो, कल से बावरची आकर मेरा खाना पकाएगा।

एक सनातनी प्रतिकार कमलिनी के मन-मस्तिष्क में वात्याचक्र बनकर उमड़ने लगा था। प्रतिदिन तुलसीदास के ग्रंथों का पारायण करतीं, उनके पदों को मन-ही-मन दुहराती अपना मूक क्रंदन आप सुनती रहती थीं—

अब लौं नसानी, अब ना नसैहों··।

कब शेष होगी यह भव निशा?

रसविहीन शुष्क इक्षुदंड की तरह दिखनेवाले प्रभारंजन सहसा एक नए अवतार में प्रकट हुए थे—कुमू, तुम्हारे पिता ग्रह, नक्षत्रों के ज्ञाता, हस्तरेखा विशेषज्ञ हैं। उनसे पूछो, इस संकट से त्राण का कोई···।

तुमने जवाब नहीं दिया। मैं दंडित होऊँ तो तुम्हें प्रसन्नता होगी न। अब समझ में आया, क्यों मेरे बाबूजी एक ही पंक्ति को बार-बार दोहराते थे—

धीरज, धर्म, मित्र अरु नारी··।

आपत काल परखिए चारी॥

सो, तुम्हारी परख हो चुकी।

उस रात प्रभारंजन ने अन्न का एक दाना मुँह में नहीं लगाया था। चाँदी की तश्तरी, छुरी, काँटों से सजी मेज पर नेपकिन की तह लगाते बटन बावरची ने हाँक लगाई थी—

हुजूर, डिनर हाजिर है।

कोई उत्तर नहीं।

उसने कमरे में जाकर देखा था—

साँसों का कर्ज चुकता कर चुके थे प्रभारंजन।

कमलिनी का करुणा विगलित क्रंदन पूरे घर में पसरा हुआ था—

अब लौं नसानी···।

मोराबादी,
राँची-८३४००८
दूरभाष : ९४३११७४३१९

पच्चीस ताँका कविताएँ

● रामनिवास मानव

आत्म-चेतना
करती प्रभावित
हर विमर्श।
मुद्दा हो विकास का
या कि इतिहास का।

हैं ज्ञानपीठ
धार्मिक चिंतन के
मंदिर सभी।
होता जहाँ विमर्श,
होता वहाँ उत्कर्ष।

ज्ञान-विज्ञान
अथवा बोध-शोध,
सबकी रही
प्राचीन परंपरा;
भारत भू उर्वरा।

भीड़-ही-भीड़,
लेकिन पहचान
सभी की गुम।
चेहरा कुरूप है,
स्वयं का विरूप है।

खतरा बड़ा
अब सामने खड़ा,
फिर भी सोया
शुतुरमुर्ग आज,
यानी हिंदू समाज।

बढ़ा आतंक
नित मारता डंक;
आहत देश।
भोथरी तलवारें,
कैसे देश उबारें!

सम्मुख खड़े
शकुनि-दुर्योधन,
संकट भारी।
अब जागो भारत,
भ्रम त्यागो भारत।

बनी है आज
सोच सबकी यही—
मेरा या तेरा,
दु:ख सबका साँझा,
सुख केवल मेरा।

न मथुरा में,
न ही वृंदावन में।
सच्चा सुख तो
है घर-आँगन में,
अपने ही मन में।

पेट की भट्ठी,
जलती है जिसमें
भूख की आग।
आग से सारे राग,
आग से होली-फाग।

जीवन-खेल
सही हमने खेला,
फिर भी रहा
रेफरी को डाउट,
किया हमें आउट।

आँखों में आँसू
और उर में पीड़ा।
नारी-जीवन
कही या अनकही,
तेरी त्रासदी यही।

बाट-बाट का,
जिसने पिया पानी
घाट-घाट का,
मर्म धर्म का जाना,
धर्म कर्म को माना।

कैसा भविष्य!
जीवन कामना का
बना हविष्य।
शेष कुछ यादें हैं,
और झूठे वादे हैं।

तैयार हैं सब
बारूद, टैंक, तोपें;
सीमा पर फौजें।
हालात हैं विकट,
विनाश है निकट।

चलें गोलियाँ,
होते कहीं विस्फोट,
बिछती लाशें।
चाहे किसी का खोट,
मानवता को चोट।

जब भी फटा
ज्वालामुखी कोई,
निकला लावा।
जनता या धरती,
क्षमा नहीं करती।

विष पीकर
हुई बीमार नदी,
घुटता दम।
झुलसा रही आग,
उगल रही झाग।

बड़ा अजब
है नियति का खेल।
जानता कौन?
किस की यह लीला,
वेद-पुराण मौन।

रंगभूमि-सा
लगता था जीवन
जो यौवन में,
ढूँढ़ रहा है सुख
अब वृंदावन में।

युद्ध में डटे;
लड़े, जीते या मरे,
पीछे न हटे।
है पहचान यही,
वीरों की शान यही।

नदी को लगा
किनारों की मर्यादा
है बड़ी बाधा।
मचल उठी धारा,
तोड़ चली किनारा।

सुख-दु:ख की
मधुर-तिक्त स्मृतियाँ
जीवन-भर
साथ-साथ चलती,
बार-बार छलती।

किसी का कंधा,
बंदूक है किसी की,
मरता कोई।
चलाता कोई गोली,
खेलता कोई होली।

लड़ना पड़े
एक युद्ध स्वयं से,
सभी को यहाँ।
स्वयं से जो जीता,
बना विश्व-विजेता।

सुपरिचित रचनाकार। इनकी रचनाओं पर अब तक सत्तर से अधिक शोधार्थी शोध कर चुके हैं। दस अनूदित कृतियाँ प्रकाशित। देश-विदेश की डेढ़ सौ से अधिक संस्थाओं द्वारा हिंदी-साहित्य में विशिष्ट योगदान हेतु विभिन्न पुरस्कारों और सम्मानों से सम्मानित।

५७१, सेक्टर-१, पार्ट-२
नारनौल-१२३००१ (हरियाणा)
दूरभाष : ८०५३५४५६३२

सेहत से जुड़े कुछ नए सुभाषित

• श्रीधर द्विवेदी

'धर्मार्थ काम मोक्षाणां शरीरं साधनं हितम्' अर्थात् धर्म (कर्तव्य), धनार्जन, रति (काम-वासना/संतति निर्वहन) तथा मोक्ष (निर्वाण) इन चारों पुरुषार्थों की प्राप्ति के लिए हमारा स्वस्थ रहना बहुत जरूरी होता है। स्वस्थ-समर्थ व्यक्ति ही इन चारों उद्देश्यों की पूर्ति में सफल हो सकता है। संस्कृत के स्वर्ण काल में लिखा गया यह आप्त कथन अब सुभाषित का रूप ले चुका है और चिकित्सा विज्ञान का आदर्श वाक्य माना जाता है। इसी प्रकार महर्षि सुश्रुत द्वारा स्वस्थ व्यक्ति के विषय में लिखी गई यह बात भी अब सूक्ति का रूप ले चुकी है—'समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियाः। प्रसन्नेन्द्रिय चित्तात्मा स्वस्थ इत्यभिधीयते।' अर्थात् ऐसा व्यक्ति, जिसके समस्त जैव-रासायनिक, चयापचय और मल विसर्जन की प्रक्रिया सामान्य हो और उसका चित्त तथा इंद्रियाँ (आँख, नाक, कान, त्वचा, कार्मेंद्रियाँ) स्वस्थ हों। ऐसा व्यक्ति ही वास्तविक अर्थों में स्वस्थ व्यक्ति कहा जा सकता है। स्वस्थता की इतनी विशद और विज्ञानसम्मत सूक्ति, परिभाषा शायद ही कहीं अन्यत्र देखने को मिले। ध्यान करने योग्य बात यह है कि महर्षि सुश्रुत ने यह परिभाषा ईसा काल ५०० वर्ष पूर्व दी थी। यह परिभाषा आज भी विज्ञान की कसौटी पर खरी उतरती है। इसी प्रकार 'पहला सुख निरोगी काया' हमारे बाप-दादा सदियों से कहते आ रहे हैं। यह किसने कहा था, यह किसी को नहीं मालूम, किंतु इसके महत्त्व को सब समझते हैं। आपके पास कितना भी पैसा हो, अथाह संपत्ति हो, हीरा-मोती भरा पड़ा हो, पर आपकी सेहत खराब है तो आपकी सारी धन-दौलत और भौतिक संपदा बेकार है। आप दुखी पड़े रहेंगे और कुछ भी उपभोग न कर पाएँगे। इसी से मिलती-जुलती एक और पुरानी कहावत है—'तंदरुस्ती हजार नियामत'।

ये सब पुरानी कहावते हैं, जिनका महत्त्व आज भी उतना सार्थक है, जितना वर्षों पूर्व था। किंतु अब समय बदल गया है। नई-नई रीतियों-कुरीतियों, जैसे—धूम्रपान, तंबाकू का सेवन, मदिरापान, जंक आहार तथा मोबाइल का दिन-रात प्रयोग, सामाजिक परंपराओं, भोग-उपभोग के नए-नए साधनों और उपक्रमों ने नई-नई बीमारियों को जन्म दिया है। आज जब डायबिटीज, ब्लड प्रेशर, हृदयाघात और कैंसर ने विश्व में अकथनीय तबाही मचा रखी हो, तब युग की माँग के अनुसार नए-नए

चिकित्सा विषयों पर हिंदी में लिखनेवाले प्रतिनिधि लेखक। एम.डी., पी-एच.डी., एफ.ए.एम.एस., एफ.आर.सी.पी. (लंदन), संस्कृत भाषा दक्षता, संस्थापक डीन–हमदर्द इंस्टीट्यूट ऑफ मेडिकल साइंसेज ऐंड रिसर्च, संप्रति नेशनल हार्ट इंस्टीट्यूट में वरिष्ठ हृदय रोग विशेषज्ञ व प्रमुख अकादमिक। अनेक राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय पुरस्कारों से सम्मानित। 'कोरोना काल चिकित्सक की कलम' कृति उ.प्र. हिंदी संस्थान से पुरस्कृत।

सुभाषितों का सृजन भी हो रहा है। आइए, देखते हैं, कौन-कौन से वे नए स्वास्थ्य सुभाषित हैं, जिनका संबंध सीधे-सीधे हमारे सुस्वास्थ्य से जुड़ा हुआ है—

१. सेहत ही धन है

सेहत निवेश है,
अच्छी जीवन शैली,
सुख का प्रवेश है।

इसे अंग्रेजी में हम इस प्रकार व्यक्त कर सकते हैं—

Health is wealth,
Invest in health,
Healthy lifestyle,
Thy share & wealth.

२. अपनाइए अच्छी जीवन-शैली

सेहत चादर कभी न होगी मैली। अर्थात् अच्छी जीवन-शैली अपनाकर हम अपनी सेहत रूपी चादर को बेदाग और निष्कलुष रख सकते हैं।

अच्छी जीवन-शैली के विषय में यह सूक्ति ध्यान देने योग्य है—

३. आधे घंटे सैर व्यायाम

तंबाकू पर पूर्ण विराम
चिकनाई पर कसें लगाम
अच्छे दिल का यह पैगाम।

४. 'योग रखे निरोग'

योग एक ऐसी विधा है, जो व्यक्ति को शारीरिक, मानसिक और

आध्यात्मिक रूप से से निरोग रख सकती है। सेहत ही धन है, रोगी निर्धन है, भोगी रोगी है, योगी निरोगी है।

ऐसे योग की परिभाषा स्वयं योगेश्वर कृष्ण ने इस प्रकार दी है—

युक्ताहार विहारस्य, युक्तचेस्स्य युक्ताचेष्टसय कर्मसु।
युक्त स्वप्ना व बोधस्य योगो भवति दुखहः॥

उपयुक्त आहार, नियमित व्यायाम, अपने कर्तव्यों का भली-भाँति निर्वहन, समय पर सोना और समय पर जगना, यही योगमय जीवन है। ऐसा करने पर हमें कोई रोग नहीं सताएगा और कोई दु:ख भी नहीं होगा।

५. 'दौड़ने से छरहर' : शारीरिक सक्रियता और व्यायाम से हम अपने स्वास्थ्य को चुस्त और दुरुस्त रख सकते हैं। इस विषय पर यह सूक्ति विचारणीय है—

लेटने से जर्जर
बैठने से उदर,
चलने से फरहर
दौड़ने से छरहर।

संदेश बहुत स्पष्ट है। अधिक लेटने-बैठने और आलस करने तथा व्यायाम न करने, बिना सैर और योगासन के बिना शरीर कमजोर एवं जर्जर हो जाता है। एक समय ऐसा आता है, जब शरीर रोगग्रस्त होकर भरभराकर आदमी को बिस्तर पकड़वा देता है। यह वही स्थिति है, जैसे किसी पुराने मकान का बिना किसी उचित रख-रखाव तथा मरम्मत के प्रबल बरसात के दिनों में अचानक ढह जाना और भूमिसात् हो जाना। ऐसी नौबत न आए, इसलिए हर व्यक्ति को प्रतिदिन घूमना, दौड़ना या कोई शारीरिक व्यायाम करना अथवा योगासन करना जरूरी होता है।

व्यायाम शरीर की मांसपेशियों, जोड़ों, दिल-दिमाग को तरोताजा और पुष्ट-मजबूत रखता है। अपने सामर्थ्य के अनुसार घूमना-दौड़ना किसी भी आयु में हर व्यक्ति को स्वस्थ रखता है। घूमने-दौड़ने के इसी लाभकारी पक्ष को हाल में ४८,००० व्यक्तियों पर किए गए शोध से सत्यापित किया गया है। अब एक गहन शोध के बाद यह निष्कर्ष निकाला गया है कि यदि हम १०,००० कदम रोज तेजी से चलते हैं, तो हम स्मृति नाश और कैंसर के खतरे से काफी हद तक बच सकते हैं।

६. धूम्रपान अग्निपान : आधुनिकता, फैशन तथा कुरीति के चलते इस समय हमारे समाज का बहुत बड़ा वर्ग आज कल तंबाकू सेवन या धूम्रपान करता है। तंबाकू सेहत का सबसे बड़ा दुश्मन है। इससे उत्पन्न धुएँ के एक कश में करीब ७००० विषतत्त्व होते हैं, जो फेफड़े, दिल और दिमाग के लिए बहुत घातक सिद्ध होते हैं। इसी तथ्य को उजागर करता यह सुभाषित सबके लिए मनन करने योग्य है—

धूम्रपान अग्निपान,
धूम्रपान विषपान,
अनेक रोगों की खान,
मृत्युदंड धूम्रपान।

७. तंबाकू से संबंधित एक और महत्त्वपूर्ण सुभाषित है—'तंबाकू खाना, कैंसर पाना।' ध्यान रहे, इस समय भारतवर्ष में प्रतिवर्ष १४ लाख लोग कैंसर से प्रभावित होते हैं, जिसमें से अधिकांश तंबाकू सेवी होते हैं।

८. 'तारो बीड़ी दंश दिल पे पड़ी भारी है : 'तंबाकू/धूम्रपान से जुड़ी हुई एक ब्रजवासिनी माँ का करुण विलाप, जिसका तीस वर्षीय पुत्र धुआँधार बीड़ी पीने के कारण अस्पताल के आई.सी.सी.यू. में पड़ा हुआ है—

छोरो तीस को भयो,
दिल चालिस को बतायो है,
अंदर-ही-अंदर जाम कहै हैं वे,
नसन में लल्ला को छल्ले पड़ेंगे अब,
बूझन की मानो माखन मिश्री न मारो हैं,
तारो बीड़ी दंश दिल पे पड़ी भारी है।

९. लंबे और स्वस्थ जीवन के लिए क्या-क्या जरूरी चीजें हैं। उसके लिए आगे की दो सूक्तियाँ बड़ी सटीक हैं—

दिल निर्मल हो;
चित्त विमल हो,
कोष्ठ अमल हो
आयु प्रबल हो।

१०. पेट साफ हो,
दिल न रुद्ध हो,
मन अक्रुद्ध हो,
उच्च ग्राफ हो।

संसार में ऐसा कौन सा व्यक्ति है, जो अपनी सेहत और जीवन का ग्राफ ऊँचा नहीं चाहता। अच्छी सेहत ही वह मुख्य वस्तु है, जो किसी की उन्नति के द्वार खोलती है। बीमार व्यक्ति तो अपने अच्छे स्वास्थ्य की कामना में ही लगा रहता है। सुंदर स्वास्थ्य की तीन मूलभूत जरूरतें होती हैं—१. पेट का रोज साफ होना, जिससे बड़ी आँत (कोलन) में जमा मल बाहर निकलता रहे और उसके अंदर उपस्थित हानिकारक जीवाणु और विषाणु शरीर के अन्य अंगों, जैसे यकृत, अग्नाशय और हृदय को दुष्प्रभावित न कर सकें। पेट साफ रह सके, इसके लिए मोटे अन्न, जैसे जौ, मक्का, चने या रागी का सेवन, रेशेदार सब्जी व फल, जंक से परहेज, खूब पानी, नियमित कसरत और शौच जाने की नियमित आदत जरूरी है। शौच की हाजत का आदर करें। कब्ज रहने पर अपने चिकित्सक से संपर्क करें, स्वयं इलाज न करें। न ही गूगल-पटल पर इसके हल की खोजबीन करें।

दिल की तीनों धमनियों (नलियों) को अवरोधहीन रखने के लिए, जिससे उनके अंदर शुद्ध रक्त अबाधित प्रवाह करता रहे, हमें अपना खाना-पीना, आचार-विचार, योग-व्यायाम, सोना-जगना तथा अपने निर्धारित कार्य (ड्यूटी) को ठीक-ठीक करना आवश्यक होता है। इनमें से कोई भी बात अगर दोषपूर्ण या गलत होती है तो ऐसी दशा में दिल की नलियाँ क्षतिग्रस्त/बाधित होती हैं और उनके अंदर खून का प्रवाह शिथिल हो जाता है और दिल को पर्याप्त मात्रा में शुद्ध खून नहीं मिलता है। ऐसी

स्थिति में दिल का एक हिस्सा मृत हो जाता है, जिसे हृदयाघात या हार्ट अटैक कहते हैं।

अच्छे स्वास्थ्य के लिए तीसरी मुख्य बात है मन का अक्रुद्ध होना, अर्थात् क्रोध न करना, स्थिर होना; ईर्ष्या, जलन, डाह न करना और सकारात्मक होना। क्रोध, ताव और तनाव हृदय के लिए अत्यंत हानिकारक तत्त्व हैं। जहाँ तक संभव हो, हमें इनसे बचना चाहिए। क्रोध से बचने का सरल और प्रभावी उपाय है परमात्मा (कुदरत/निसर्ग) में ध्यान। योग भी हमें क्रोध से दूर करने में सहायक होता है।

संक्षेप में जिसका पेट साफ होगा, दिल में कोई अवरोध न होगा तथा चित्त शांत और क्रोध विहीन होगा, उसकी सेहत अच्छी और आयु लंबी होगी। उसके जीवन का ग्राफ ऊँचा होगा।

११ . सावधानी हटी, दुर्घटना घटी

विगत कुछ दिनों के अंदर दो विशिष्ट प्रतिभाओं की असमय मृत्यु ऐसे कारणों से हुई, जिन्हें संभवत: टाला जा सकता था। पहली मृत्यु टाटा समूह के पूर्व प्रमुख श्री साइरस मिस्त्री की पुणे-मुंबई राजमार्ग पर अत्यंत तेज गति से चल रही बी.एम.डब्ल्यू. कार के दुर्घटनाग्रस्त होने की वजह से हुई। ध्यान रहे, दुनिया की सर्वाधिक सुरक्षित माने जानीवाली कार भी अत्यंत तेज रफ्तार से चलने के कारण दुर्घटनाग्रस्त होती है और पीछे बैठे श्री मिस्त्री, जो सीट बेल्ट लगाए बिना बैठे थे, वह बुरी तरह से घायल होते हैं और उनकी इस सांघातिक दुर्घटना में तत्काल मृत्यु हो जाती है।

जबकि अगली सीट पर बैठे ड्राइवर और अन्य सहयात्री, जो बेल्ट लगाकर बैठे थे, के प्राण बच जाते हैं। साइरस मिस्त्री का जीवन शायद बच सकता था, यदि उन्होंने भी सीट बेल्ट लगाई होती। पर अपने देश में ऐसी मानसिकता और सुरक्षा की लापरवाही करते हैं कि कार में पीछे की सीट पर बैठे लोग बहुधा सीट बेल्ट नहीं लगाते। यह प्रमाद कभी-कभी मरणांतक हो सकता है, जैसा मिस्त्रीजी के साथ हुआ। बहुत दिनों पूर्व ललितनिबंध के धुरंधर पुरोधा आचार्य विद्यानिवास की मृत्यु भी सड़क दुर्घटना में इन्हीं परिस्थितियों में हुई थी। इसलिए गाड़ी से चलते समय सीट बेल्ट लगाना कभी न भूलें, भले ही आप पिछली सीट पर क्यों न बैठे हों। एक बहुत जीवन रक्षक कहावत है—'सावधानी हटी, दुर्घटना घटी।'

१२. कसरत में अतिरेक, दिल के लिए खतरनाक

आजकल लोगों में, विशेषत: युवकों और धनाढ्य-संपन्न लोगों में तथाकथित आधुनिक वातानुकूलित व्यायामशालाओं/जिम में जाकर खूब कसरत करने का फैशन सा बन गया है।

बहुधा ऐसे स्थानों पर सिखानेवाले लोग भी अधकचरे और अप्रशिक्षित होते हैं। अपने व्यापार को चलाने के लिए वे लोग पुष्टिकारक आहार के नाम पर ऐसे पदार्थ देते हैं, जिनमें हानिकारक हार्मोन और स्टेरॉयड का समावेश होता है, जो खानेवाले व्यक्ति का ब्लड प्रेशर, रक्त शर्करा तथा कोलेस्टेरॉल बढ़ाता है। ये तीनों चीजें—बी.पी., शुगर और कोलेस्टेरॉल हृदय के लिए खतरनाक होती हैं। तीव्र और गहन कसरत करना स्वयं में दिल के लिए तनावपूर्ण परिस्थिति होती है, उसमें बढ़ा हुआ ब्लड प्रेशर, खून में शक्कर की अधिकता और रक्त में चिकनाई का बढ़ना एक ऐसा दुर्योग होता है, जो असमय में कम उम्र में दिल के दौरे को जन्म देता है। ठीक ऐसी ही दुर्घटना बिग बॉस के विजेता सिद्धार्थ शुक्ला के साथ घटी और वह जिम करते-करते दिल के दौरे से चल बसे। इसी से मिलती-जुलती अत्यंत दुखद घटना हास्य कलाकार राजू श्रीवास्तव के साथ हुई। उन्हें भी व्यायामशाला में कसरत-अतिरेक के कारण प्रबल हृदयाघात हुआ और अनेक प्रयत्नों के बाद भी उन्हें बचाया न जा सका।

जिम से जुड़े कसरत के अभ्यास में खाने-पीने में बदपरहेजी के अतिरिक्त एक बात जो महत्त्वपूर्ण है, वह है कि व्यायाम करते समय या उसके बाद धूम्रपान या शराब का सेवन। प्राय: यह देखा गया है कि इस प्रकार के लोग व्यायाम के बाद धूम्रपान या मदिरापान से गुरेज नहीं करते। ऐसा करते समय वे भूल जाते हैं कि अधिक व्यायाम, धूम्रपान तथा शराब, ये तीनों हृदय के लिए हानिकारक हैं—

१३. सिगरेट शराब, स्ट्रेस, (तनाव/अतिव्यायाम), दिल के लिए डिस्ट्रेस। (दुखदायी/विषम)

१४ तोंद, तंबाकू, ताव-तनाव, सब मिल देते दिल को घाव

मतलब स्पष्ट है कि तोंद/मोटापा, तंबाकू, क्रोध और तनाव दिल की धमनियों (नसों) में घाव पैदा करते हैं, जिसके फलस्वरूप वहाँ पर खून का थक्का जम जाता है और हृदयाघात की आशंका बढ़ जाती है।

१५. 'हृदय कलश अमृत अशेष हो'—विगत कई वर्षों से संपूर्ण विश्व में हृदय संबंधी रोगों की संख्या में लगातार वृद्धि होने के कारण विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यू.एच.ओ.) प्रतिवर्ष २९ सितंबर को 'विश्व हृदय दिवस' मनाता है, ताकि सामान्य लोगों में हृदय की बीमारियों के प्रति जागरूकता बढ़े और इससे बचने के उपायों पर खुलकर चर्चा हो सके। लोग यह भी सीख सकें कि कैसे हम बिना ज्यादा पैसा खर्च किए साधारण नियमों का पालन करके दिल को स्वस्थ रख सकते हैं।

एक मोटे अनुमान के अनुसार अकेले भारत में प्रतिवर्ष करीब नौ लाख लोग हृदय रोगों के कारण अपने प्राण गँवा बैठते हैं। इसका सबसे महत्त्वपूर्ण, सामाजिक, आर्थिक दृष्टि से स्तंभित करनेवाला पक्ष है, इस बीमारी से पीड़ित होनेवालों में एक बड़ा वर्ग युवा लोगों का है, जो कम आयु में ही आकस्मिक पड़नेवाले दिल के दौरे से मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं। ऐसी असामयिक मृत्यु से बचने के लिए एक अचूक नुस्खा सरल भाषा में सारांश रूप में इस प्रकार दिया गया है, जिसका पालन करके हम अपने सेहत और हृदय दोनों को सुरक्षित रख सकते हैं—

खान-पान सात्त्विक विशेष हो,
क्षोभ ताप तंदुल नि:शेष हो,
प्रकृति रूप जीवन निवेश हो,
हृदय कलश अमृत अशेष हो।

डिपार्टमेंट ऑफ कार्डियोलॉजी
नेशनल हर्ट इंस्टीट्यूट
ईस्ट ऑफ कैलाश
नई दिल्ली-११००६५
दूरभाष : ९८१८९२९६५९

गीतावली

• रमा रानी सिंह

गजल में गुनगुनाते हैं

छुपाकर आँख में आँसू
अधर पर मुसकराहट ले
हम अपने दर्द को पीकर
गजल में गुनगुनाते हैं

नहीं हम कहते कुछ भी तो
हमेशा चुप ही रहते हैं
गमों के बोझ को भी तो
न जाने कैसे सहते हैं
हठीले मौन के संग में
हमारी ऐसी यारी है,
कि जैसे साहिलों को इन नदी
जन्मों से प्यारी है,

हक हम सुनते जमाने की
नहीं अपनी सुनाते हैं
हम अपने दर्द को पीकर
गजल में गुनगुनाते हैं।

यहाँ मौसम हो कोई भी
हम हम विचलित नहीं होते,
कि अपनेपन के काँटें
राह में भी हम नहीं बोते,
हमारी राह अपनी है
उसी पर चलते रहते हैं
हमारे पाँव बंजारे से हैं
ये तो नहीं सोते,

जहाँ के फूल या काँटे
कहाँ हमको सताते हैं
हम अपने दर्द को पीकर
गजल में गुनगुनाते हैं।

नहीं आसमान हम छूने
सदा रहते हैं धरती पर।
कि टूटे गीत ही हमको
यहाँ मिलते रहे अकसर
उन्हीं के अश्रु पोंछे हैं
उन्हीं के दिल से की बातें,
उन्हीं को हमने सिखलाया
नहीं जीना यहाँ डरकर,
उन्हें सम्मान से जीने की
राहें हम बताते हैं।
हम अपने दर्द को पीकर
गजल में गुनगुनाते हैं।

सौंपकर अपनी धरोहर

सौंपकर अपनी धरोहर चल दिए,
आस का दीपक बुझाकर चल दिए।

हर तरफ काली घटा घनघोर है
पर कहीं दिखता नहीं चितचोर है
सूना-सूना रह गया यमुना का तट
टेरता है अब तुम्हें यह वंशीवट
प्यार की चुनरी ओढ़ाकर चल दिए
आस का दीपक बुझाकर चल दिया।

वृंदावन की निधियाँ सारी हो रहीं
धड़कनें भी पीर अनगिन हो रहीं
शब्द कुछ कहने से पहले चुक गए
मौन में बातें निरंतर हो रहीं
बोध साँसों का उठाकर चल दिए
आस का दीपक बुझाकर दिए

दूर थे पर, दूर में अहसास था
मैं तो हर पल ही तुम्हारे पास था
इतना कहकर तुमने सबकुछ कह दिया
पर दिया सीता सा ही वनवास था
दूर से कुछ गुनगुनाकर चल दिए
आस का दीपक बुझाकर चल दिए।

सुपरिचित रचनाकार। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित। साहित्य भूषण सम्मान सहित कई सम्मानों से सम्मानित। पोत-परिवहन मंत्रालय में हिंदी सलाहकार के पद से सेवानिवृत्त।

रोऊँ या नाचूँ-गाऊँ

दर्द की मदिरा पीकर अब मैं
रोऊँ या नाचूँ-गाऊँ
मृगतृष्णा है सारी दुनिया
यह कैसे मैं समझाऊँ।

दुनिया की है राह कँटीली
या अंधी पथरीली है,
जितनी ऊपर से है मीठी
भीतर से जहरीली है,
जिसने इतना समझ लिया
वह माया के उस पास हुआ,
वो ज्ञानी वो ऋषि मुनि है
उसको सार-असार हुआ,
पाप-पुण्य का खेल समझ तू
मैं कैसे यह दिखलाऊँ।

एक-एक कर छूटे साथी
एक-एक कर घर टूटे,
साँसों की माया नगरी में
प्राण न जाने कब छूटे,
तू चल, मैं पीछे आता हूँ
चला-चली की वेला है,
भीड़ भरे इस मेले में भी
प्राणी बहुत अकेला है।

विश्रांत के.एम.-१५९
कवि नगर, गाजियाबाद-२०१००२ (उ.प्र.)
दूभाष : ९८१०६३६१२१

कहानी

झाड़ी की आवाज

● नंदकिशोर कौशिक

उम्मीद और सुरेंद्र उसी स्कूल में पढ़ते थे, जो मदनपुर गाँव से दो कोस की दूरी पर था। आजादी के उपरांत भारत ने बहुत कुछ उन्नति की है, लेकिन शिक्षा के क्षेत्र में आज भी स्थिति संतोषजनक नहीं है। भारत की अधिकांश जनसंख्या ग्राम्यांचलों में ही रहकर अपना जीवन निर्वाह करती है, लेकिन हर गाँव में शिक्षा का पूरा प्रबंध नहीं है। ठीक इसी तरह गोबली गाँव के आस-पड़ोस के गाँवों की हालत भी शिक्षा के अभाव में असंतोषजनक थी। इस गाँव को छोड़कर लगभग दो-दो कोस दूर तक कोई भी विद्यालय नहीं था। उम्मेद और सुरेंद्र, दोनों ठेठ मदनपुर के रहनेवाले कक्षा आठ के विद्यार्थी थे। मैत्रीभाव होना तो स्वाभाविक ही था। दोनों जोट लगाकर रहते थे। जब वे अपने गाँव से पढ़ने के लिए गोवली गाँव को जाते, एक साथ ही जाते थे। वैसे उस गाँव के दर्जनों बच्चे गोवली विद्यालय में पढ़ते थे। सभी बच्चे साथ-साथ ही आते-जाते थे। वे दोनों भी उनके साथ ही आते-जाते थे। लेकिन दोनों की जोड़ी अलग ही दिखाई देती थी। यहाँ तक कि कक्षा में बैठते तो भी, दोनों छात्र एक ही जगह पास-पास बैठते थे और मन लगाकर पढ़ते थे। और दोनों ही प्रथम श्रेणी के बच्चों में गिने जाते थे। दोनों को कलम-पेंसिल और कॉपी-किताब का ही आदान-प्रदान ही नहीं था बल्कि खाना भी लगभग एक ही जगह बैठकर खाते। उनके इस व्यवहार से स्पष्ट था कि वह पहले मित्र थे, बाद में सहपाठी।

इनमें एक अंधी माँ का इकलौता बेटा था तो दूसरा एक समृद्ध परिवार का बालक था। उम्मेद बड़ा था, सुरेंद्र कुछ छोटा, किंतु ज्यादा अंतर नहीं था। केवल एक-आध बरस का। वैसे दोनों की उम्र तेरह-चौदह के लगभग होगी। उम्मेद लुहार जाति में पैदा हुआ था और सुरेंद्र एक संभ्रांत वैश्य जमींदार परिवार में पल रहा था। उसके पिता के पास अच्छी जमीन थी। मित्रता कभी वर्ग, धर्म, रंग तथा ऊँच-नीच का भेद नहीं देखती। उन दोनों में संस्कारवश अच्छा मैत्रीभाव था। वह दोनों आदर्श विद्यार्थी के रूप में विद्या-अध्ययन कर रहे थे। समस्या केवल एक ही बात की थी कि मदनपुर से लेकर गोबली स्कूल तक का जो मार्ग था, वह बड़ा ही दुर्गम और भयानक था। उस रास्ते से होकर कोई भी बटोही अकेला पार होने की हिम्मत नहीं रखता था। रास्ते के एक तरफ किनारे-किनारे बहुत लंबी दूरी तक राजाजी के बाग की रॉस, दूसरी तरफ बेवजह खड़े काँटे-करील, झाड़ झुंड, रास्ते के दोनों ओर झाड़ियों के कुंज-पुंज

सुपरिचित कवि एवं कहानीकार। दूर-देहात में सामाजिक, ग्रामीण परिवेश की समस्याओं पर लेखन। देश की प्रतिष्ठित हिंदी पत्र-पत्रिकाओं में कविताएँ, कहानियाँ आदि प्रकाशित होती रहती हैं। संप्रति स्वतंत्र लेखन।

थे। उस रास्ते को देखकर वनखंडों का दृश्य आँखों में उभरने लगता था। मदनपुर गाँव के सभी विद्यार्थियों को नित्य उसी रास्ते से गुजरना होता था। बेचारे बालक निरीह भयातुर मृग वृंदों की भाँति जैसे-तैसे रास्ता तय कर पाते थे। हालाँकि गाँव के लोग भी उन आते-जाते बच्चों पर बहुत कुछ निगाह रखते थे, लेकिन कहाँ तक रखते। गाँव में यह बड़ी समस्या बनी हुई थी।

एक दिन दोनों मित्र उम्मेद और सुरेंद्र स्कूल परिसर में खेल रहे थे, खेलते-खेलते उन दोनों को शाम हो गई। अन्य बच्चे तो छुट्टी होते ही अपने-अपने गाँव-घर जा चुके थे। अचानक दोनों को समय और घर का ध्यान आया। खेल छोड़कर वे अपने गाँव की तरफ चल दिए। जब रास्ते की भयानकता ध्यान आई तो उन बच्चों के पाँव फिरने लगे। फिर भी साहस करके पासवाली झाड़ी से एक-एक डंडा तोड़ लिया और ऐसे चलने लगे, जैसे सिपाही रात्रि गश्त पर चल दिए हों। लेकिन उस रास्ते की भयावहता और इन किशोरों की उम्र में बड़ा भारी अंतर था। भादों का महीना था। झाड़ियाँ मदांध होकर किसी मधुमति नर्तकी की भाँति झूम रही थीं। झंझावात की तेज गति, बादलों का रह-रहकर तड़कना, उस तड़कन और साँय-साँय के बीच वह दृश्य ऐसा लग रहा था कि प्रकृति आज निष्ठुर होकर अलग ही ताल ठोक रही है। उन नादान बच्चों का हृदय क्षीण होने लगा। अँधेरा अपना अलग प्रभुत्व जमाने लगा। बेचारे कहाँ तक साहस बटोर पाते। यहाँ तक कि ऐसे समय में उनको किसी मनुष्य की परछाईं तक नजर नहीं आ रही थी। वे घिर चुके थे।

किसान तो खेतों से बहुत पहले ही लौट चुके थे। अब अँधेरा पूरी तरह छा चुका था। बरसाती कीट-पतंगे इधर-उधर उड़ने चलने लगे थे। सियार हुआँ-हआँ करने लगे। दोनों भय से काँप रहे थे। ये सारी बलाएँ उन किशोरावस्था वाले बच्चों के लिए मौत के मुँह में जाने से कम नहीं

थीं। कभी उनके मन में नरभक्षी बाघिन का विचार बन खड़ा होता, कभी किसी दुर्दांत दस्यु के चंगुल की बात मन को डरा देती। उस तमयुक्त भाँय-भाँय भरे वातावरण में बच्चे तो क्या प्रौढ़ भी न ठहर पाते। तभी अचानक पीछे से एक डरावनी आवाज आई, 'रुक जाओ!' उस आवाज को सुनकर दोनों का डर से खून का पानी हो गया, और वे सरपट दौड़ पड़े। फिर वही आवाज कुछ क्रोध से दहाड़ी, 'रुक जाओ! भागो मत! नहीं तो गोली मार दूँगा।'

गोली की बात सुनकर दोनों रुक गए। बेचारे करते भी क्या। देखा, पीछे से एक भीमकाय आदमी की परछाईं नजर आई। वह आदमी हाँफता सा आ रहा था। हरामजादे! क्यों भाग रहे थे? रुके क्यों नहीं? उसने आते-आते दोनों को बुरी तरह थप्पड़-लातों से पीट डाला। बच्चे रोने-चिल्लाने लगे, लेकिन वहाँ कौन सुननेवाला था। उस क्रूरकर्मा ने उनको चुप होने की धमकी दी। वे भयातुर से चुप हो गए। बेचारे करते भी क्या। यह शिक्षा का कैसा प्रसार, कहीं तो देश में गाँव के लाल मौत से जूझकर शिक्षा पाते हैं और कहीं अच्छे हॉस्टलों में रहकर स्वर्ग का आनंद लेते हैं। यह सब भारत की असमान शिक्षा का ही परिणाम है। जो शायद कभी खत्म नहीं होगी। क्योंकि गाँव और शहर का भेद इस अभिशाप से उभरने नहीं देगा।

उन बच्चों का कुछ बस नहीं चला और वे उस बंदूकधारी के चंगुल में आकर उसके इशारों पर झाड़ियों के मध्य बनी पगडंडी पर चलने लगे। वह कह रहा था—चलो अंदर, जल्दी चलो झाड़ी में···। वह तेजी से उसके आगे-आगे चल रहे थे। तभी सुरेंद्र को चक्कर सा आया और वह गिर पड़ा। उस दुष्ट ने सुरेंद्र के एक लात और लगा दी। क्यों बे मक्कार, बहाना बनाता है। उम्मेद देखता ही रह गया। जब सुरेंद्र नहीं बोला तो उस दुष्ट ने उसे अपने कंधों पर रख लिया। उम्मेद डर के मारे आगे-आगे चल रहा था, घनी झाड़ियों के सघन झुरमुटों को तय करता हुआ वह अंदर जाकर बहुत पुरानी धर्मशाला पर जाकर रुका, जो कभी किसी ने धर्म के नाम पर बनवाई होगी। शायद अब वह उसका निवास-स्थान हो। उसने सुरेंद्र को झोंपड़ीनुमा उस धर्मशाला के एक हिस्से में अंदर डाल दिया और उम्मेद को भी अंदर कर लिया। यह दुर्बुद्धि अकेला ही बच्चों का शोषण और अपहरण करता था, क्योंकि धर्मशाला पर कोई भी दूसरा उसके साथ नहीं था।

वह अपहरण करने के बाद बच्चों के घरवालों से उत्कोच (फिरौती) लेता था। लेकिन आज तक इसका सही ठिकाना का किसी को भी मालूम नहीं था। अगर घरवाले इसको मनोवांछित पैसा नहीं देते तो वह बच्चों को मार देता था या कहीं दूर जाकर बेच देता था। अब इन बच्चों का क्या हाल होगा। पहले उसने झोंपड़ी में चिराग जलाया। उम्मेद दुविधा में था और सुरेंद्र को तो कुछ होश ही नहीं था। उस पापी ने उम्मेद से कहा। बैठ जा, उम्मेद बैठ गया। तभी फिर बोला, मैं तुम्हारे चक्कर में बहुत दिनों से था। सेठ का बच्चा तुममें से कौन है? आज हाथ लगे हो, लाखों का माल। उम्मेद डर रहा था और सुन भी रहा था। तभी सुरेंद्र ने करवट बदली और कुछ बुदबुदाने लगा था, पा आ आ आनी पानी। उम्मेद सुनकर भी मूक रहा। उस आदमी की तरफ दया भरी दृष्टि से देखने लगा। वह दुष्ट बोला, 'अच्छा, पानी माँगता है, जरूर लाऊँगा, खाना भी खिलाऊँगा। तुम तो मेरी लाखों की संपत्ति हो।' इस विचार से वह पानी लेने को चल दिया। कुआँ झोंपड़ी से पीछे की ओर था। जो शायद उसी धर्मशाला के साथ का होगा। कुएँ की जगत पर कहीं-कहीं तो घास भी पनप रही थी।

वह पानी लेने तो गया, पर एक चूक कर गया। अपनी बंदूक को वहीं रख छोड़ गया। उसे क्या मालूम था कि किशोर मन बड़ा साहस भी कर सकता है। इस बीच साहसी बालक उम्मेद ने वह बंदूक अपने हाथ में ले ली और बिना किसी पूर्व ज्ञान के ही इसमें गोली भरी है या नहीं, उस पापाचारी को मारने की मन में ठान ली। जैसे ही वह वापस पानी लेकर झोंपड़ी में अंदर प्रविष्ट होता, तभी एक ओर खड़े उम्मेद ने खटका दबा दिया। धाँय-धाँय की आवाज के साथ ही वह दुष्ट किसी दानव की भाँति पृथ्वी पर ढेर हो गया। संयोग से बंदूक में गोली भरी हुई थी। जंगल के जीव-जंतु चीत्कार कर उठे थे। ईश्वर की कृपा से उम्मेद को अपने साहस का सही फल मिल गया था। वह थोड़ा खुश तो हुआ, लेकिन भय उसपर सवार था। उधर सुरेंद्र भी पानी पीकर कुछ सजग हो गया, क्योंकि डोल में कुछ पानी बिखरने से बच गया था। वह दोनों उसे वहीं तड़फता छोड़ शीघ्रता से उसी रास्ते पर दौड़ लिये और अपने गाँववाले रास्ते पर आ गए, और फिर गाँव की ओर चल दिए।

अब दूसरी बला आ खड़ी हुई। अँधेरे में दूर एक उजाला सा दिखाई दिया। दोनों फिर सावधान हो गए और पेड़ की ओट में लूटी हुई बंदूक को लेकर खड़े हो गए। उम्मेद ने कहा, सुरेंद्र, अब चिंता मत कर मेरे हाथ में बंदूक है। जब उजाला निकट आया। कान लगाकर दोनों ने सुना, उनके गाँववाले ही थे। उनको देखकर वे दोनों पेड़ की ओट से सामने आए तथा गाँववाले उनको अपने साथ ले गए। दोनों बार-बार रो रहे थे। गाँववालों ने उनको भरोसा दिया और समझाया। झाड़ीवाली घटना को सभी ने सुना। गाँवभर के बच्चे स्कूल जाने से रुक गए। उस दिन के बाद उम्मेद और सुरेंद्र भी स्कूल नहीं गए। कुछ दिनों बाद घटना विस्मृत सी हो गई तो सामान्य होने पर एक दिन गाँव की पंचायत हुई। बच्चों के साथ में दो आदमी नित्य बंदूक लेकर जाएँगे। इस काम पर धन व्यय पूरा गाँव करेगा। ऐसा निश्चित हुआ। लेकिन इस सुविधा के उपरांत दोनों बच्चों के घरवालों ने उनको गोबली स्कूल जाने नहीं दिया। सुरेंद्र के घरवालों ने तो भय के कारण अपने बेटे को शहर भेज दिया और अंधी माँ का पुत्र कहीं

का भी नहीं रहा। उसके लिए तो वही हुआ न···धोबी घर का रहा न घाट का। वह गाँव में ही रह गया। दोनों सुहृदय समय की चाल के कारण एक-दूसरे से दूर हो गए।

झाड़ीवाली घटना तो दोनों के हृदय में स्थायित्व ले चुकी थी। समय की गति के आगे कौन की चली है। उम्मेद पढ़ाई छोड़कर अपने पैतृक काम-धंधे लोहारगिरी को सीखने में लग गया। सुरेंद्र के पिता अपनी सब संपत्ति को बेचकर शहर चले गए। दोनों की मैत्री पर धुंध छा गई। लेकिन वह झाड़ीवाली घटना एक-दूसरे को याद आती रही। एक लंबे अरसे के बाद सुरेंद्र को अपने मित्र की याद सताई, तो उसको मिलने की चाह मदनपुर खींच लाई। इस समय वह एक सिविल इंजीनियर बन गया था। खासा धन भी अर्जित कर लिया था। वह गाँव गया, अपने चिर-परिचित घर पर पहुँचा। वहाँ एक ठाकुर की हवेली मन्ना रही थी। ठाकुर ने ही सुरेंद्र के पिता से वह घर ऊँची कीमत पर खरीदा था। सुरेंद्र ने अपना परिचय दिया और हाथ जोड़कर सिर नवाकर अपने पैतृक स्थान को नमन किया। सबने उसे बड़े प्यार से लिया।

फिर वह अपने मित्र से मिलने चल दिया। गाँव की गलियों में घूमने पर उसे बड़ा ही आनंद मिल रहा था। उम्मेद के घर पहुँचा। उसने उसे एकदम तो नहीं पहचाना, बताने पर दोनों मित्र कोली भरकर फिर एक हो गए। सबकी आँखें भर आईं। ऐसा दृश्य कभी-कभार ही देखने को मिलता है। उम्मेद की लोहार की दुकान को देखकर वह दुखी हुआ। बोला, 'उम्मेद, तू तो मुझसे पढ़ने में अब्बल था। पर क्या करें, परिस्थिति ने मजबूर कर दिए थे।' हाल-चाल पूछा तो उसकी अंधी माँ चल बसी थी। बड़ा दु:ख हुआ। उम्मेद सिसक रहा था। मैत्री स्नेह में अश्रुधारा बह निकली। दोनों के कपड़े वक्ष तक भीग गए। तभी सुरेंद्र ने घोषणा कर डाली—चिंता मत कर यार, अब मैं तुझे ऐसे वंचित नहीं छोड़ूँगा। और दो लाख की नगदी रकम उम्मेद के हाथों में थमा दी। ऐसी मित्रता को देख पूरा गाँव अचंभित था। फिर सुरेंद्र ने गाँववालों को भरोसा दिलाया। 'देखो सम्मान योग्य मेरे गाँववासियो! चाहे वह मेरे चाचा-ताऊ-बाबा अथवा भाई-बहन हैं। मैं यह बात दावे के साथ कह रहा हूँ। अब मदनपुर का कोई बालक इंटर तक कहीं दूसरी जगह पढ़ने नहीं जाएगा। मैं अपने पैसे से ही इंटर कॉलेज बनवाऊँगा।' यह बात सुनकर गाँववाले हर्षातिरेक में झूमने लगे। फिर सुरेंद्र ने प्यार और सम्मान के साथ गाँववालों से विदा ली और अपनी कीमती गाड़ी में बैठकर शहर को रवाना हो गया। गाँव में चकल्लस और चर्चाएँ जोर पकड़ गईं।

पूरे एक वर्ष में सुरेंद्र के प्रयासों से मदनपुर में इंटर कॉलेज खुल गया। जिसके प्रबंधक नामित हुए उम्मेद सिंह और कॉलेज का नाम पट्टिका पर अंकित था—'श्री उमेद सिंह इंटर कॉलेज मदनपुर।'

गाँव+पोस्ट-पिसावा, तहसील-गभाना,
जिला-अलीगढ़-२०२००१ (उ.प्र.)
दूरभाष : ८७५५७६४५५०

लघुकथा

लुभाते चेहरे

● सत्य शुचि

शादी का समय निकट था और एक बात साथ जाहिर हो चली कि दोनों परिवारवाले खुले विचारों के थे। इसलिए थोड़े समय में ही भावी दूल्हा-दुलहन शादी से पेश्तर फोटोग्राफर के एक समूह के संपर्क में आ चुके थे। और जल्द से उस जोड़े ने अपने कार्यक्रम की सुध ली। तत्पश्चात् प्लानिंग के अनुसार कपल ने अलग-अलग सैर सपाटों की जगह, बड़े होटलों में ठहराव और यहाँ तक कि समुद्री बीच पर जाकर कम-से-कम परिधानों में अपना यादगार वीडियो शूट पूरा किया था और अभी मस्ती का आलम चहुँदिश गुलजार था।

···शादी समारोह के रोज एक बड़ी स्क्रीन लगाई गई और वीडियो-फोटोग्राफी अब स्क्रीन पर प्रदर्शन के लिए तैयार थी। गौरतलब है, स्क्रीन पर दूल्हा-दुलहन एक-दूजे के आगोश में झूलते-चूमते दिखे थे···और इसी समय लड़के-लड़की के परिवार से जुड़े संपूर्ण रिश्तेदार आनंद लोक की सैर में मुग्ध-मगन हो चले थे। इतना ही नहीं, पंडाल में आगुंतकगण स्वादिष्ट व्यंजनों के साथ-साथ स्क्रीन पर चलती-उतरती फोटोग्राफी का लुफ्त उठाए जा रहे थे। दरअसल, सबकुछ सुखद था और जश्न की वाह-वाह होने लगी।

बहरहाल, वहाँ एक शख्स ऐसा भी था, जो जाने क्यों जरा बेचैन सा लग रहा था। कदाचित् उसके भीतर तनिक उथल-पुथल मची थी और हालात को भाँपता-सा आधा-अधूरा खाना खा वह तुरंत प्रवेश-द्वार से निकल आया, मन कसैला हो उठा।

'···प्री वेडिंग के नाम पर जब दूल्हा-दुलहन कई रातें संग बिता चुके हों तो ऐसे सामाजिक समारोहों का तमाम यत्न-प्रयत्नों से बहिष्कार होना चाहिए!' उसका गला रुँध गया, 'और फिर प्री-वेडिंग के बहाने नष्ट होती भारतीय संस्कृति का मखौल उड़ाना जरूरी है क्या!' और देखते-ही-देखते एक प्रश्न हवा में टँगकर रह गया।

साकेत नगर, ब्यावर-३०५९०१
(राजस्थान)
दूरभाष : ९४१३६८५८२०

लगता है गुजरी है बहार

● **सूर्य प्रकाश मिश्र**

सुपरिचित रचनाकार। अब तक पाँच गीत-संग्रह–'छुई मुई सी सुबह', 'वफा के फूल मुसकराते हैं', 'भोर का तारा न जाने कब उगेगा', 'दरबान ऊँघते खड़े रहे', 'सुरीले रंग', एक कुंडली-संग्रह 'कौवा पुराण'। पत्र-पत्रिकाओं में शताधिक रचनाएँ प्रकाशित।

तुमको रंगों में

तुमको रंगों में ढाला तो
लेकिन कल्पना अतृप्त रही
गढ़ डाले कितने शब्द नए
लेकिन साधना अतृप्त रही

कोई शिखर कभी ना आ पाया
शब्दों की व्याकुल बाँहों में
कोई सागर नहीं समा पाया
इनकी बेचैन निगाहों में

सोचा प्राणों से प्राण छुएँ,
लेकिन कामना अतृप्त रही।

मौसम की मस्ती और कभी
ऋतु की अलसायी अँगड़ाई
रंग डाले पन्नों पर पन्ने
फिर भी वो बात नहीं आई

चाहा तुमको कुछ और पढ़ें,
लेकिन भावना अतृप्त रही।

साँसों का तेज-तेज चलना
ये रंग कहाँ कह पाएँगे
संवाद, बोलती आँखों के
शब्दों में कहाँ समाएँगे

माँगा ऐसे पल और जिएँ,
लेकिन याचना अतृप्त रही।

बेचारा चाँद

बेचारा चाँद कहाँ जाए
हो गया रात का दीवाना
पर दिल की लगी ना कह पाए

अपलक निहारता रहता है
यों पल गुजारता रहता है
आँखों से रात की सुंदरता
दिल में उतारता रहता है

है पता रात को सब लेकिन,
मुँह से उसके सुनना चाहे।

कोशिश करता है बार-बार
जाहिर कर दे दिल का खुमार
पर वाणी साथ नहीं देती
फिर करने लगता इंतजार

है फितरत प्यार की जग जाहिर,
जब हो जाए तो तड़पाए।

चुपचाप देखते हैं तारे
मन-ही-मन हँसते हैं सारे
दीवाना चाँद न पढ़ पाया
अब तक ढाई अक्षर कारे

यह कैसा प्रेम पुजारी है,
जिसे प्यार जताना ना आए।

गुमसुम चाँद

गुमसुम सा गलने लगा चाँद
ना जाने किसकी नजर लगी
अब रहने लगी चाँदनी भी
कुछ-कुछ उदास खोई-खोई

कितना समझाया लोगों ने
लगवा लो काजल का टीका
लेकिन बातों का ना सुनना
जंजाल बन गया है जी का

है अच्छा भला देखने में,
पर रौनक सारी उतर गई।

कोई कहता संजोग इसे
कोई कहता है प्रेम रोग
कोई कहता दीवाने को
है सता रहा कोई वियोग

जितने मुँह हैं उतनी बातें,
जाने इनमें है कौन सही?

ऐ हवा जरा कहना उनसे
बे-वजह बात बढ़ जाएगी
इस चाँद की तरह उनको भी
कोई भी नजर लग जाएगी

परदा कर लें मत रहा करें,
नन्हे से तिल के भरोसे ही।

कविता

तितली ने फूलों के रस से
लिख डाली उपवन पर कविता
गुड़हल, कनेर, बेला, जूही
चंपा के जीवन पर कविता

झूमती नीम, हँसती चिलबिल
गुलमोहर का सोने सा दिल
गेंदा गुलाब में द्वितीय कौन
निर्णय कर पाना है मुश्किल

क्या अनुभव करती नागफनी,
उसके अंतर्मन पर कविता।

मदमस्त पड़े हैं हरसिंगार
लगता है गुजरी है बहार
सब जान गए हैं, पीपल से
है अमरबेल का अमर प्यार

पढ़कर पुरवा मुसकरा उठी,
ये अल्हड़ यौवन पर कविता।

सोया-सोया सा है पलाश
खोया-खोया सा अमलतास
गुमसुम से इमली के बूटे
महुवे का पत्ता है उदास

गुजरी है पतझड़ से होकर,
ऋतु के आकर्षण पर कविता।

गौरैया के बजते नूपुर
क्या कहते हैं कोयल के सुर
क्यों हुए न जाने परदेशी
हैं पिया पपीहे के निष्ठुर

घर छोड़ के आए मिट्ठू से,
कौवे के अनबन पर कविता।

बी २३/४२ ए के
बसंत कटरा (गांधी चौक)
खोजवा, दुर्गाकुंड
वाराणसी-२२१००१
दूरभाष : ०९८३९८८८७४३

निराला और महात्मा गांधी

● राहिला रईस

गांधी सिर्फ व्यक्ति नहीं, अपितु विचारधारा है। निराला के अनुसार गांधीजी को उनके जीवनकाल में बुद्ध और क्राइस्ट की समता उनके भक्तों ने दी है। गांधीजी ने अपने दर्शन, व्यक्तित्व, भाषा-नीति, सर्वोदयी कार्यक्रमों, भाषणों एवं लेखन के माध्यम से संपूर्ण देशवासियों को प्रभावित किया। विशेषकर समकालीन साहित्यकारों पर उनका विशेष प्रभाव परिलक्षित किया जा सकता है। उनकी ख्याति भारत तक सीमित न रहकर संपूर्ण विश्व में व्याप्त हुई। यही कारण है कि अनेक देशों में गांधी दर्शन को पढ़ाया भी जाता है एवं विदेशी साहित्यकारों पर भी गांधीजी का प्रभाव देखा जा सकता है।

१९१५ के पश्चात् भारतीय इतिहास में गांधीजी उदीयमान सूर्य के समान उपस्थित हुए और उसी के समान समस्त भारतवर्ष के हर स्थान, मनुष्य और विचारों पर अपना प्रभाव स्थापित कर लिया। विरला ही कोई होगा, जो उनके जीवनदर्शन से अछूता रहा हो। लोग या तो उनके समर्थक थे या आलोचक, पर गांधीजी थे, सबके मस्तिष्क में विद्यमान उनके विचारों का अंग बनकर। दूसरी ओर निराला थे—गंभीर आलोचक, पक्षपात से दूर, सरलता से मोह में न बँधनेवाले। गांधीजी का अमृत भी उन्हें दिखाई देता और उनका विष भी। १९४० में निराला ने एक कविता लिखी—'बापू के प्रति'। इससे पहले पंतजी भी इसी नाम से कविता लिख चुके थे। गांधीजी के गुणगान और स्तुति से परिपूर्ण रचना। पर निराला की कविता थी आक्रोश के स्वर में बुनी-गुँथी, कांग्रेस की कूटनीति पर कटाक्ष करती हुई।

फैजाबाद सम्मेलन में निराला ने कहा था, "अगर राजनीतिकों ने हिंदुओं में मुरगी खाने का प्रचार किया होता तो हिंदू-मुस्लिम यूनिटी बहुत मजबूत हो चुकी होती।" निराला ने 'बापू के प्रति' कविता इसी बहर में लिखी। भगवतीचरण वर्मा ने कलकत्ते से प्रकाशित होनेवाले पत्र 'विचार' में इस कविता को प्रकाशित किया, पर साथ ही यह नोट भी लगाया, "इधर हाल में उनकी (निराला की) विचित्रता से भरी प्रतिभा सीमा तोड़ने पर आमादा हो गई है। अगर ऊल-जलूल बातें लिखना और उनकी घोषणा करना, अगर लोगों की सुरुचि पर प्रहार करना और जनमत अथवा लोकमत

सुपरिचित कहानीकार। प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में लेख, कहानी, शोध-पत्र, अनुवादित कहानियाँ प्रकाशित। नाथद्वारा की प्रसिद्ध संस्था 'साहित्य मंडल' द्वारा सम्मानित। संप्रति अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय में सहायक प्रोफेसर (हिंदी) के रूप में कार्यरत।

की भद्दे तौर से हँसी उड़ाना ही उत्कृष्ट कला है, तो हम स्वीकार करते हैं कि निरालाजी इस युग का सर्वश्रेष्ठ कवि अथवा कलाकार होने का वह दावा, जो वह अकसर मौके-बेमौके उचित-अनुचित ढंग से किया करते हैं, सोलह आना ठीक है।"

कविता के कुछ अंश इस प्रकार हैं—

बापू, तुम मुरगी खाते यदि,
तो क्या भजते होते तुमको
ऐरे-गैरे नत्थू-खैरे?
सिर के बल खड़े हुए होते
हिंदी के इतने लेखक-कवि,
बापू, तुम मुरगी खाते यदि?

बापू, तुम मुरगी खाते यदि,
तो क्या पटेल, राजन, टंडन,
गोपालाचरी भी भजते?
भजता होता तुमको मैं औ'
मेरी प्यारी अल्लारक्खी,
बापू, तुम मुर्गी खाते यदि!

पर रामविलास शर्मा इस कविता के संदर्भ में लिखते हैं, "यह उस कवि की रचना थी, जिसकी पुरानी आस्थाएँ टूट चुकी थीं और उनकी जगह नए विश्वास पनपे न थे। यह लोगों की सुरुचि पर नहीं, कांग्रेसी राजनीति की कुटिलता पर प्रहार थे।" यह भले ही निराला के अवसाद के दिनों की रचना थी, पर इससे स्पष्ट है कि निराला गांधीवादी विचारों और उनके समर्थकों की कार्यप्रणाली से संतुष्ट नहीं थे।

निराला अपने युग के सर्वाधिक जागरूक रचनाकारों में से थे। देश-विदेश की छोटी-से-छोटी घटना पर उनकी सजग और पैनी दृष्टि थी। यह इत्तेफाक ही है कि भारतीय इतिहास में गांधी युग प्रारंभ होने के साथ ही हिंदी साहित्य में निराला का भी पदार्पण हुआ। निराला के साहित्य में युग-चेतना आधार रूप में उपस्थित है। यही कारण है कि गांधी युग का समस्त परिदृश्य निराला साहित्य में उपलब्ध है। गांधीजी उनके साहित्य में व्यक्ति और दर्शन दोनों रूप में उपस्थित हैं।

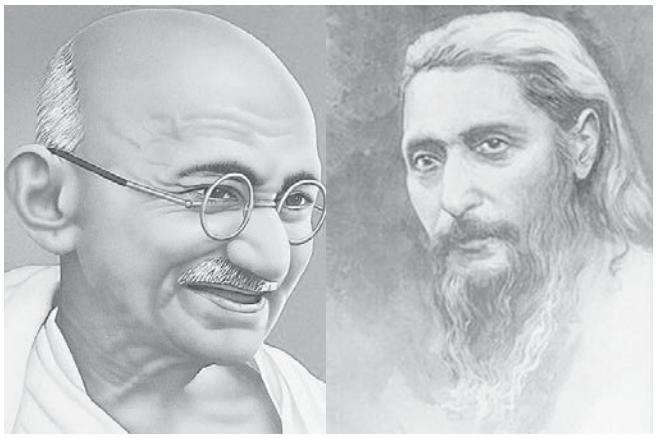

निराला महात्मा गांधी को समाज-विधाता, जीर्ण जाति के प्राण, देश की आर्थिक स्थिति के सुधार के उद्योगी जैसी उपाधियों से विभूषित करते हैं। वह यह भी मानते हैं कि देश की गुलामी को शिकस्त देने की सबसे बुलंद आवाज देश में गांधीजी की ही है। लेकिन अपने जिस निबंध 'चरखा' में वह गांधीजी को इन तमाम अलंकरणों से संबोधित करते हैं, वहीं यह कहने से भी नहीं चूकते कि "मैं यह नहीं कहता कि गांधीजी निर्दोष हैं और रवींद्र सदोष। मेरी दृष्टि में जहर दोनों में है और अमृत भी दोनों में है।" स्पष्ट है कि निराला अंधभक्त नहीं हैं। निराला के संपूर्ण साहित्य में वैचारिक द्वंद्व दिखाई पड़ता है। विचारों को लेकर अंतर्संघर्ष की स्थिति निराला के साहित्य की विशेषता है। गांधीजी और गांधीवाद को लेकर भी निराला इस द्वंद्व से ही ग्रसित रहे हैं। यह वह युग है, जब गांधीजी का माहात्म्य अपने चरम पर था। भक्ति के साथ गांधीजी की तीव्र आलोचना भी हो रही थी। निराला का भी गांधीवाद के प्रति आलोचनात्मक दृष्टिकोण था, किंतु "वह उन बहुत थोड़े से सतर्क बुद्धिजीवियों में थे, जो न गांधीजी के प्रति मोहाविष्ट थे, न उनके अंध विरोधी।"

१९२१ में चौरी-चौरा घटना के पश्चात् असहयोग आंदोलन वापस ले लिया गया। जनता में घोर निराशा पैठ गई। उसका जुझारू मन अशांत था। ऐसे में मार्च १९२१ के कांग्रेस के विजयवाड़ा अधिवेशन में गांधीजी ने रचनात्मक कार्यक्रम की रूपरेखा प्रस्तुत की, जिसके तहत मुख्य कार्य था चरखों का वितरण और कांग्रेस की सदस्यता का विस्तार। गांधीजी स्वयं चरखा चलाते और सूत कातते। इस दौरान चरखे और खादी का खूब प्रचार हुआ। गांधीजी ने इसे स्वदेशी और देश के आर्थिक विकास के साथ जोड़ा था।

निराला गांधीजी के चरखा आंदोलन के नितांत समर्थक थे। रवींद्रनाथ टैगोर ने गांधीजी की चरखा नीति के विरोध में लेख लिखा, जिसका प्रत्युत्तर निराला ने अपने निबंध 'चरखा' में दिया—"महात्माजी जैसे एक समाज विधाता हैं। वे भारतीय समाज को चरखा चलाकर अपना कपड़ा आप बना लेने का उपदेश देते हैं। इससे करोड़ों रुपयों की बचत और फायदा देश के निवासियों को है। इससे वे परावलंबी न रहेंगे। स्वावलंबी हो जाना ही शक्ति का सूचक है। इस तरह शक्ति वृद्धि के साथ-साथ देशवासी स्वराज्य की प्राप्ति नहीं कर सकेंगे, यह कौन कह सकता है।"

निराला ने अपने उपन्यास 'अप्सरा' में गांधीजी के चरखे और स्वदेशी अपनाने के आह्वान का जनता पर पड़े प्रभाव को प्रस्तुत किया है। वह लिखते हैं—(नंदन ने कनक को देने के लिए) "छाँटकर एक अच्छा चरखा उन्होंने खरीद लिया। इसके साथ ही उन्हें शांतिपुर और बंगाल-कैमिकल की याद आई। एक शांतिपुरी कीमती साड़ी और कुछ बंगाल कैमिकल के तेल-फुलेल, सेंट पाउडर आदि खरीद लिये।"

१९३१ के रचनात्मक आंदोलन में ग्राम विकास मुख्य मुद्दा था। ग्राम विकास का सीधा तात्पर्य था किसानों की प्रगति, विकास एवं उनकी स्थिति में सुधार। निराला की बहुमुखी क्रांति की धुरी ही किसान है। किंतु गांधीजी के आह्वान के पश्चात् भी कांग्रेस का रचनात्मक कार्यक्रम सदस्यता विस्तार और चरखे के प्रचार तक सिमटकर रह गया था। उसका अगला चरण था जेल भरो आंदोलन। निराला का विरोध इसी से था। अलका में वह लिखते हैं—"चाहते और क्या हैं, न्याय, इस दुःख से मुक्ति। इसलिए जो लोग वास्तव में क्षेत्र से उतरकर देश के लिए कार्य करते हैं, वे यदि इन किसानों की शिक्षा के लिए सोचें, हर जिले के आदमी, अपने ही जिले में जितने हों, उतने केंद्र कर अर्थात् उतने गाँवों में इन किसानों को केवल प्रारंभिक शिक्षा भी दे दें, तो उनके जेलवास से ज्यादा उपकार हो और यह शिक्षा की सच्चाई सहृदयों की यथेष्ट संख्या वृद्धि करें।" वस्तुतः जेल में रहकर देशसेवा करने की अपेक्षा ग्रामीणों को शिक्षित करने का कार्य निराला के निकट अधिक महत्त्वपूर्ण है।

स्वाधीनता, वर्ण-व्यवस्था, सांप्रदायिकता और भाषा—ये चार विषय थे, जहाँ निराला गांधीजी से प्रभावित थे और यही उनकी टकराहट का कारण भी था। स्वाधीनता गांधीजी भी चाहते थे। वर्ण-व्यवस्था में गांधीजी का विश्वास था किंतु छुआछूत की समाप्ति उनका मंतव्य था। गांधीजी हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने के पक्ष में थे। निराला के भी समान उद्देश्य एवं विचार थे। किंतु परिवर्तन था तो इन उद्देश्यों की पूर्ति हेतु अपनाए जानेवाले मार्ग के चयन में। गांधीजी मध्यममार्गी तो निराला सदा के विद्रोही। गांधीजी सुधार और समझौतावादी तो निराला आमूलचूल परिवर्तन के लिए क्रांति के हिमायती। यद्यपि यह नहीं कहा जा सकता कि निराला क्रांतिकारियों की बम-पिस्तौल की नीति के समर्थक थे। गांधीजी की अहिंसा की नीति के वह प्रशंसक अवश्य थे किंतु एक गाल पर चाँटा खाकर दूसरा गाल आगे कर देने की गांधीवादी नीति को वह स्वीकार न करते थे। 'अप्सरा' का नायक राजकुमार अंग्रेज अफसर को जमीन की धूल चटा देता है। अहिंसा का व्रत लेकर अन्याय सहन नहीं करता। 'अलका' में भी अय्याश और

जालिम जमींदार मुरलीधर का कत्ल निराला दिखाते हैं।

वर्ण-व्यवस्था को लेकर गांधीजी और निराला के विचारों में काफी साम्य मिलता है। दोनों ही वर्ण-व्यवस्था और जाति को विलग करके देखते हैं। दोनों के ही अनुसार समाज के समुचित विकास के लिए जो विभाजन किया जाए, उसमें वर्ण-व्यवस्था सर्वोपयुक्त है। किंतु जातिप्रथा और छुआछूत वर्ण-व्यवस्था से ही उपजी अत्यंत विकट समस्या है, यह दोनों को मान्य नहीं है। कँवल भारती लिखते हैं—"निराला की दलित चेतना वैसी ही है, जैसी गांधीजी की थी। आरंभ में गांधी भी वर्ण-व्यवस्था के कट्टर समर्थक थे और उसे हिंदुत्व का प्राण मानते थे। छुआछूत के खिलाफ भी वह तब हुए थे, जब डॉ. अंबेडकर ने दलितों की मुक्ति का प्रश्न उठाकर उनके स्वतंत्रता आंदोलन को चुनौती दी थी। इसके बावजूद उन्होंने वर्ण-व्यवस्था का विरोध कभी नहीं किया। निराला भी इस मामले में गांधीवादी थे। उन्होंने यहाँ तक वर्ण-व्यवस्था का पक्ष लिया कि जाति-पाँति तोड़क मंडल बनानेवाले संतराम बी.ए. तक का विरोध किया था।"

निराला गांधीजी के आलोचक न थे, न ही वह गांधी दर्शन के विरुद्ध थे, किंतु वह विरोधी थे उस छद्म गांधीवाद के, जिसका सहारा लेकर उनके समकालीन कांग्रेसी नेता राजनीति कर रहे थे। हर गांधी टोपी और खद्दर पहननेवाला नेता गांधीवादी नहीं हो जाता, बल्कि अपनी कुत्सित मानसिकता, दोगली राजनीति और जनता विरोधी नीति को उस वेश-भूषा के पीछे छुपाकर देश का अहित करता है। निराला इसी अनाचार के विरोधी थे। झींगुर डटकर बोला, कुत्ता भौंकने लगा, महँगू महँगा रहा आदि निराला की कुछ ऐसी ही कविताएँ हैं।

इस विषय पर गांधी और अंबेडकर की टकराहटें तत्कालीन भारतीय राजनीति का ज्वलंत विषय थीं। अंबेडकर दलित जातियों के मसीहा बनकर उभरे थे। गांधीजी भी अपने अछूतोद्धार और छुआछूत उन्मूलन कार्यक्रमों के द्वारा हरिजन जातियों को मुख्य धारा में लाने का प्रयास कर रहे थे। समस्या एक थी, सदिच्छा दोनों की थी। सुपरिणाम दोनों चाहते थे, पर विरोधाभास था तो समाधान की प्रणाली पर। निराला दोनों को सुन रहे थे दोनों के विचारों पर चिंतन एवं मनन कर रहे थे। किंतु गांधीजी के साथ उनका विचार साम्य पूर्णरूप से प्रदर्शित होता है। वह लिखते हैं—"महात्माजी लोक रुचि के बड़े जबरदस्त परीक्षक हैं। उन्होंने समाज को एक ही सीढ़ी चढ़ने की राय दी। उन्होंने कहा, खान-पान संसार में किसी के साथ किया जा सकता है, रोटीवाला सवाल हल होना ही ठीक है। बेटीवाले पर अभी वह राय नहीं देते। फिर कुछ काल बाद, रोटीवाला सवाल हल हो जाने पर बेटीवाला भी आपसे प्रचलित होकर हल हो जाएगा।"

अभी देश में गांधी और अंबेडकर की बहस चल ही रही थी कि १६ अगस्त, १९३२ को ब्रिटिश प्रधानमंत्री रामसे मैकडोनल्ड ने पृथक् निर्वाचन मंडल को प्रारंभ किया। जो कि Communal Award के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इससे पूरे देश की राजनीति में उबाल आ गया। गांधीजी का तर्क था कि "पृथक् निर्वाचन मंडल का सबसे बड़ा खतरा है कि यह अछूतों के हमेशा अछूत बने रहने की बात सुनिश्चित करता है। दलितों के हितों की सुरक्षा के नाम पर विधानमंडलों में या नौकरियों में सीटें सुरक्षित करने की जरूरत नहीं, उन्हें अलग समुदाय बनाने की जरूरत नहीं, जरूरत है समाज से छुआछूत की कुरीति को जड़ से उखाड़ फेंकने की।"

पृथक् निर्वाचन मंडल को गांधीजी के समान निराला भी अंग्रेजों की विभाजनकारी नीति के लिए लाभप्रद मानते हैं और यह स्वीकार करते हैं कि अछूतोद्धार का कार्य सामाजिक आंदोलन से ही हो सकता है किंतु वह यह भी मानते हैं कि पृथक् निर्वाचन मंडल से अछूतों में जागृति उत्पन्न होगी, उन्हें दु:ख है तो केवल इतना कि अछूत राजनीतिक सत्ता के प्रश्न को अभी भी नहीं समझते। वे लिखते हैं—"यह पृथक् निर्वाचन समस्या जबसे खड़ी हुई, तमाम राजनीति का रुख ही बदल गया। पर यह अच्छा ही हुआ। अब सुधार ठीक जड़ पर पहुँचा है। जहाँ देश की जीवनीशक्ति है, और अब तक प्रसुप्त है, ठीक वहीं एका-एक जगाने का प्रयत्न हुआ। अधिकांश अछूत इस राजनीतिक विषय को नहीं समझते। अब बराबरी वाले मामले को विशेष रूप से समझने की चेष्टा करेंगे।"

वस्तुत: निराला अंग्रेजों के कुचक्र को तो गलत मानते हैं, किंतु दलितों के दृष्टिकोण से पृथक् निर्वाचन मंडल उन्हें उपयुक्त लगता है। १९३२ के पूना पैक्ट से पहले गांधीजी के आमरण अनशन को लेकर निराला अत्यंत चिंतित एवं व्यथित थे। वह लिखते हैं—"हम भीरू हैं, साधारण कोटि के मनुष्य हैं, हम महात्माजी को सशरीर सप्राण देखने के लिए ही ईश्वर से बारंबार करबद्ध साश्रु प्रार्थना करते हैं।"

अछूतों के समान ही हिंदु-मुस्लिम एकता को लेकर भी गांधीजी का प्रभाव निराला पर दिखता है। दोनों को ही मुस्लिमों से गुरेज नहीं। दोनों ही देश की प्रगति में हिंदु-मुस्लिम एकता को आधार मानते हैं। किंतु यहाँ भी प्रश्न दृष्टिकोण को लेकर ही था। हिंदु-मुस्लिम एकता को लेकर निराला धार्मिक रूढ़ियों का नाश करने के पक्ष में थे। कट्टरवादिता से बाहर आने, जनेऊ आदि उतार फेंकने के पक्ष में थे तो गांधीजी समझौतावादी दृष्टिकोण रखते थे। अपने मत पर अडिग रहो किंतु दूसरे को हानि न पहुँचाओ, यह उनका सूत्र था। शांतिपूर्ण सहअस्तित्व गांधीजी का मूल मंत्र था।

निराला गांधीजी के आलोचक न थे, न ही वह गांधी दर्शन के विरुद्ध थे, किंतु वह विरोधी थे उस छद्म गांधीवाद के, जिसका सहारा लेकर उनके समकालीन कांग्रेसी नेता राजनीति कर रहे थे। हर गांधी टोपी और खद्दर पहननेवाला नेता गांधीवादी नहीं हो जाता, बल्कि अपनी कुत्सित मानसिकता, दोगली राजनीति और जनता विरोधी नीति को उस वेश-भूषा के पीछे छुपाकर देश का अहित करता है। निराला इसी अनाचार के विरोधी थे। झींगुर डटकर बोला, कुत्ता भौंकने लगा, महँगू महँगा रहा आदि निराला की कुछ ऐसी ही कविताएँ हैं। 'झींगुर डटकर बोला' कविता की कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं, जिनमें निराला गांधीवादियों की तथाकथित सर्वोदय की

भावना के पीछे छुपी सामंतों, जमींदारों और पूँजीपतियों से उनकी साठ-गाँठ का पर्दाफाश करते हैं, यथा—

गांधीवादी आए, कांग्रेसमैन टेढ़े थे
देर तक गांधीवाद क्या है, समझाते रहे
देश की भक्ति से, निर्विरोध शक्ति से
राज अपना होगा, जमींदार साहूकार अपने कहलाएँगे
शासन की सत्ता हिल जाएगी,
हिंदु और मुसलमान, बैरभाव भूलकर जल्द गले लगेंगे।

हिंदी के प्रश्न पर निराला गांधीजी की कटु आलोचना करते हैं। यह सत्य है कि गांधीजी को हिंदी से विशेष प्रेम था, वह इसे हृदय की भाषा कहते हैं। गांधीजी ने 'हिंदी ही देश की राष्ट्रभाषा हो सकती है। यह उद्घोषणा भी की थी। किंतु बाद में गांधी जी हिंदी के स्थान पर हिंदुस्तानी के समर्थक हो गए। निराला के लिए यह अक्षम्य अपराध था। गांधीजी द्वारा हिंदी को राष्ट्रभाषा का दर्जा दिए जाने के पक्ष में बोलने को निराला ने केवल एक राजनीतिक स्टंट माना। जनता को अपने पक्ष में करने के लिए जुमला भर। वह लिखते हैं—"हिंदी राष्ट्रभाषा है, यह आवाज गांधीजी की बुलंद की हुई है। उनके इस एक आवाज उठाने के साथ तमाम हिंदी भाषी उनके साथ हो गए···नेता को यही चाहिए।" गांधीजी द्वारा हिंदी साहित्य सम्मेलन के इंदौर अधिवेशन में सभापति के रूप में यह कहना कि हिंदी बोलनेवालों में रवींद्रनाथ कहाँ हैं? प्रफुल्लचंद्र राय कहाँ हैं? जगदीश बोस कहाँ हैं? निराला को चुभ सा गया। हिंदीवालों का गांधीजी के इस प्रश्न पर मौन निराला के लिए असहनीय था। उनको अपनी १५ वर्ष की साहित्य साधना व्यर्थ जान पड़ रही थी। मन कचोट रहा था। निराला गांधीजी से मिलकर उनके सामने ही इन प्रश्नों का उत्तर देने को बेताब थे। आखिरकार उनकी भेंट हुई। "निराला ने अपनी दृष्टि गांधीजी की आँखों पर केंद्रित की; मन पर यह छाप पड़ी कि आँखों में जितनी दिव्यता है, उतनी ही चालाकी। निराला ने गांधीजी से स्पष्ट कह दिया कि आप हिंदी में रवींद्रनाथ नहीं अपितु प्रिंस द्वारकानाथ का नाती या नोबेल पुरस्कार से सम्मानित व्यक्ति देखना चाहते, महज कवि नहीं। निराला को गांधीजी से नहीं अपितु हिंदी साहित्य सम्मेलन के सभापति (जो कि गांधीजी ही थे) से यह आशा थी कि वह हिंदी के साहित्यकारों को पढ़ेंगे, हिंदी साहित्य के नवीन ट्रेंडस से परिचित होंगे। किंतु बिना पढ़े, बिना जाने हिंदी साहित्यकारों पर गांधीजी की टिप्पणी निराला को स्वीकार नहीं थी। निराला ने गांधीजी से हिंदी साहित्य पर चर्चा करने के लिए समय माँगा किंतु गांधी ने इनकार कर दिया। निराला के आत्मसम्मान को ठेस पहुँचाने के लिए यह काफी था। निराला की गांधीजी से इस मुलाकात का रोचक वर्णन रामविलासजी ने अपनी 'निराला की साहित्य साधना भाग-१' में विस्तार से किया है।

कहा जा सकता है कि गांधीजी और उनके विचारों को लेकर निराला में लगातार परिवर्तन आया है। अपने उपन्यासों, विशेषकर अप्सरा, अलका, निरुपमा, कुल्लीभाट में गांधीजी की विचारधारा का प्रभाव स्वीकृत या अस्वीकृत रूप में मिलता है तो 'बापू के प्रति' कविता में निराला गांधीजी के प्रति काफी कटु हो जाते हैं। वास्तव में निराला गांधी के महात्मा होने में तो यकीन रखते है किंतु जनमानस में प्रचलित गांधीजी के जादू और प्रताप में उन्हें बिल्कुल विश्वास नहीं था।

साअ
हिंदी विभाग, अलीगढ़ मुसलिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़
दूरभाष : ७५०३३८५९२४

कविताएँ

कविता

• माला श्रीवास्तव

दादा-दादी

दादी आई दादा आए
मुन्नी किलकी, चहका मुन्ना
कहानी सुनने की चाहत में
दौड़-दौड़ वे करते काम
चश्मा लाएँ, पानी लाएँ
उनका बिस्तर तुरंत बिछाएँ
दादी ने शुरू की अपनी कहानी
एक था राजा एक थी रानी
बिगड़ा मुन्ना रूठी मुन्नी
नहीं चलेंगे राजा रानी
दादा ने निकाला अपना लैपटॉप
मुन्ना दौड़ा, दौड़ी मुन्नी
दादा की गोद में बैठ
सैर करें वे दुनिया की
दादी बैठी सर खुजाए
अपने राजा-रानी कहाँ ले जाएँ।

जुगनू

नन्हे-नन्हे प्यारे जुगनू
जगमग करते रात में जुगनू
पल में जलते पल में बुझते
धरती पर तारों से लगते
नन्हे-नन्हे प्यारे जुगनू।

कभी पेड़ पर कभी झाड़ पर,
कभी बैठते जा घास पर
अपनी टॉर्च साथ में रखते
नहीं अँधेरे से वे डरते
नन्हे-नन्हे प्यारे जुगनू।

मन करता उनको जा पकड़ूँ
अपनी बोतल में बंद कर लूँ
फिर मम्मी की याद है आती
जीवों को नहीं सताना
बार-बार वह है समझाती
जब मैं देता मुट्ठी खोल
उड़ जाते वे थैंक्यू बोल।

नन्हे-नन्हे प्यारे जुगनू,
जगमग करते रात में जुगनू।

साअ
डी-३६, सीनियर सिटीजन
होम कॉम्प्लेक्स
ग्रेटर नोएडा

गजलें

• उर्वशी अग्रवाल 'उर्वी'

एक

तू राजा मैं रानी लिख दूँ?
ऐसी एक कहानी लिख दूँ?

मेरी आँखों में आँसू हैं।
बोलो तो मैं पानी लिख दूँ?

तुझको कृष्ण कन्हैया खुद को।
मीरा सी दीवानी लिख दूँ?

शेर मुकम्मल हो जाएगा।
तू ऊला मैं सानी लिख दूँ?

नया-नया है प्यार हमारा।
इसको बात पुरानी लिख दूँ?

ज़ुल्फ़ रेशमी आँखें तौबा।
चेहरा भी नूरानी लिख दूँ?

आया नहीं है मिलने मुझको।
इसको ना फ़रमानी लिख दूँ?

प्यार की भाषा मुश्किल है।
आती है समझानी लिख दूँ?

जान कहा था तूने मुझको।
तुझको दिलबर जानी लिख दूँ?

तू झूठा है प्यार भी झूठा।
होती है हैरानी लिख दूँ?

नश्वर काया, झूठी माया।
'उर्वी' दुनिया फ़ानी लिख दूँ?

दो

इक अक्षय आलोक भरा है।
मेरे भीतर प्रेम बसा है॥

दिव्य मंत्र सा तेरा चेहरा।
चेहरे पर संवाद लिखा है॥

तबसे ही बेहोश पड़ी हूँ।
जबसे तेरा तीर लगा है॥

महकी महकी रहती हूँ मैं।
यानी मुझमें तू रहता है॥

सारे मेरे घाव भरे हैं।
जाने किस की लगी दुआ है॥

सुपरिचित कवयित्री। संप्रति उप-संपादिका 'साहित्य अमृत'।

बुझा दिए जब दीपक सारे।
क्यों अब ख़ामोश हवा है॥

ना ढलती ना गलती हूँ मैं।
किसने ये किरदार गढ़ा है॥

अपने घर में अपनों ने ही।
नारी का सम्मान हरा है॥

एक द्रोपदी निपट अकेली।
गूँगी-बहरी हुई सभा है॥

तीन

क्यों तूने यों वर के छोड़ा
आख़िर किससे डरके छोड़ा

आँसू भी अब सूख चुके हैं
मुझको पत्थर करके छोड़ा

नामुमकिन था जिस घर जाना
रस्ते में उस घर के छोड़ा

इश्क़ ने तेरे आग लगा दी
दिल में शोले भर के छोड़ा

ख़ूब रिहाई दी है तूने
मेरे पंख कतर के छोड़ा

उसकी रहम दिली तो देखो,
पंछी को बिन पर के छोड़ा

जीते जी तो छोड़ न पायी
मैंने तुझको मरके छोड़ा

भवसागर क्या मुझे डुबोता
मैंने उसको तर के छोड़ा।

मेरे बिन रब भी था ख़ाली
मैंने उसको भर के छोड़ा

मालिक का शुक्राना 'उर्वी'
सब कष्टों को हर के छोड़ा

चार

गिर जाने का डर था शायद।
वो मिट्टी का घर था शायद॥

हर इक रंग से था वाबस्ता।
वो तितली का पर था शायद॥

कहने को जो बुत तराश था।
वो ख़ुद भी पत्थर था शायद॥

मेरे काँधे पर रखा था।
लेकिन उसका सर था शायद॥

प्यास बुझाता आख़िर किसकी।
प्यासा ख़ुद सागर था शायद॥

भरता था ताज़ा ज़ख़्मों को।
उम्दा कारीगर था शायद॥

पंछी जिसको ताक रहे थे।
शख्श कोई अम्बर था शायद॥

पाँच

मिलना बहुत ज़रूरी है।
पर मेरी मज़बूरी है॥

चंदा और चकोरी में।
जाने क्यों ये दूरी है॥

सब कुछ तुझ से कह डाला।
फिर भी बात अधूरी है॥

बदनामी भी शौहरत भी।
ये कैसी मशहूरी है॥

तेरी चुप को क्या समझूँ।
आख़िर क्या मजबूरी है॥

तेरी चुप को समझूँ क्या।
ये तेरी मंजूरी है॥

एक नशा है उसकी आँखें।
ओठों में अंगूरी है॥

'उर्वी' गुल के मौसम में।
नरगिस क्यों बेनूरी है॥

छह

एक कहानी समझा उसने
फ़क़त निशानी समझा उसने!

दासी बन कर रह सकती थी,
पर पटरानी समझा उसने!

मुझे हकीकत कहते थे सब,
मगर कहानी समझा उसने!

मेरे अश्कों के मोती को,
केवल पानी समझा उसने!

कांटो भरा था रस्ता लेकिन,
डगर सुहानी समझा उसने!

मै थी इक दीवान ग़ज़ल का,
ऊला सानी समझा उसने!

भोली भाली लड़की थी मैं,
और सयानी समझा उसने!

मैं तो उसके प्यार में गुम थी,
मगर दिवानी समझा उसने!

पूजा वाली तुलसी को भी,
रात की रानी समझा उसने!

छह

बचपन में कुछ था ही नहीं।
तब मन में कुछ था ही नहीं॥

झूठ को देखा दर्पण में।
दर्पण में कुछ था ही नहीं॥

राधा और कान्हा के सिवा।
मधुबन में कुछ था ही नहीं॥

जान तो लेकर आप चले हैं।
इस तन में कुछ था ही नहीं॥

एक तुम्हारा नाम लिया था।
धड़कन में कुछ था ही नहीं॥

बेमतलब की दूरी थी वो।
अनबन में कुछ था ही नहीं॥

सामाँ था कुछ यादों का सब।
आँगन में कुछ था ही नहीं॥

काँटों की बस्ती थी केवल।
उपवन में कुछ था ही नहीं॥

सिर्फ़ दुआएँ बाँधी 'उर्वी'।
दामन में कुछ था ही नहीं॥

सा/अ

४/१९ आसफ अली रोड
नई दिल्ली–११०००२
दूरभाष : ९९५८३८२९९९

राम झरोखे बैठ के

नए साल की खिड़की

● गोपाल चतुर्वेदी

वह समृद्ध है। हमारा सौभाग्य है कि हम उन्हें जानते हैं। उनकी कोठी के पीछे एक अनधिकृत झुग्गी-झोंपड़ी की बस्ती है। अपना अनुभव है और किसी क्षेत्र में हो न हो, समृद्धता और गरीबी का यह सहअस्तित्व हर महानगर की विषेशता है। ठीक वैसे ही, जैसे हर बड़े नेता का वह सैक्युलर हो या कट्टर, अपना निजी ज्योतिषी है। उसके हर काम का मुहूर्त उसी पर निर्धारित है, पार्टी तोड़ने-छोड़ने से लेकर नई बनाने तक। समृद्ध बस्ती के पास झुग्गी-झोंपड़ी के अस्तित्व से पुलिस को भी सुभीता है। चोरी-डकैती हुई तो तलाश में दूर नहीं जाना है। गरीब को सब शक की नजर से देखते हैं, पुलिस भी। ऐसों का विचार है कि पेट पालने की विवशता में चोरी-डकैती से उन्हें परहेज नहीं है। ऐसा नहीं है कि उसके संस्कार नहीं हैं या वह नैतिकता-विहीन है, पर मजबूरी भी है। बच्चों को निवाले के लिए तपड़ता कब तक देखे? इसीलिए वह पैसे की खातिर कुछ भी कर गुजरने को प्रस्तुत है।

जैसा बहुधा होता है। प्राण-वायु के लिए पार्क भी ऐसी ही रईस बस्तियों में ही पाए जाते हैं। हरे-भरे पेड़ भी, पर्यावरण की सुरक्षा के लिए। क्रिकेट और राजनीति भारत के सबसे लोकप्रिय खेल हैं। तभी तो पार्क में एक ओर क्रिकेट के प्रशिक्षण का मैदान भी है। वहीं एक भूतपूर्व रंजीत ट्रॉफी के खिलाड़ी 'कोचिंग' के वास्ते आते हैं। हमारे परिचित पैसेवाले के प्रथम दर्शन हमें इसी मैदान में हुए। वह बाकायदा बैटिंग-बॉलिंग की तकनीक समझ रहे थे और अपना जिम्मा हर दूर गई गेंद को लाने का था। वह खेलकर क्रिकेट सीख रहे हैं, हम उन्हें देखकर। अपने-अपने सीखने के अंदाज हैं। यही एक शाम उन्होंने हमें ज्ञान दिया था कि "बस थोड़े दिनों में नए वर्ष की खिड़की खुलनेवाली है।''

हम थोड़े अचंभित हुए। यह नया साल क्या बला है? क्या इसकी भी कोई खिड़की है, जिसके रास्ते यह पधारता है? धीरे-धीरे पता लगा कि समझदारों ने जैसे दिन-रात का विभाजन किया है, वैसे ही समय का भी है। हमारे महानगर में आसानी है, इधर सूरज पूरी तरह डूबा, उधर रात शुरू हो जाती है। पर बाद में हमें बताया गया कि दुनिया में कई देश ऐसे भी हैं, जहाँ सूरज खासी देर में डूबता है। वहाँ विरोधाभास भी है, रात के बावजूद धूप चमक रही है। जैसे सवेरे-सवेरे के अखबार में कलंकित बदमुज्जवाँ का नाम सुर्खियों में चमके। समय के साथ हमारे ज्ञान में वृद्धि हुई कि नया साल निर्धनों का नहीं, उस वर्ग विशेष का उत्सव है, जिसमें सिर्फ ओहदेदार और संपन्न सम्मलित हैं। एक के लिए यह संपर्क बढ़ाने और बनाने का अवसर है, दूसरे के लिए मुफ्तिया भेंट-प्रजेंट पाने का। धीरे-धीरे हमारे पल्ले यह भी पड़ा कि फार्म-हाउस के निर्माण के पीछे भी इसी दर्शन की प्रेरणा है। वहाँ एक तरण-ताल भी होना ही होना। निर्माण के एक ठेकेदार ने हमें बताया कि बड़े लोग अपने बड़ों के संपर्क से ही बड़े बनते हैं। उन दिनों हम उसका हिसाब-किताब रखने के सहायक थे। उसके बाद हम एक पार्टी के प्रत्यक्षदर्शी बने। फार्महाउस में पूल का बड़ा महत्त्व है। वह अपने आप प्रेम-प्रसंगों की भूमिका भी निभाता है। बड़ों की वख्ती महिला-मित्र पार्टी में पधारती ही नहीं, स्विमिंग की पोषाक में पूल की शोभा भी बढ़ाती हैं। तैरने के बाद महिला और उसके पुरुष मित्र वहीं बने कमरों में अंतर्धान होते हैं। उसके बाद लौटकर चहकते-मुसकराते खाद्य-पदार्थों में व्यस्त हो जाते हैं। देखने में आया है कि अधिकतर 'बड़े' परिवार विहीन पधारे हैं। ऐसी पार्टियों के बाद उनकी पारिवारिक निष्ठा में दिखाऊ वृद्धि के आसार नजर आते हैं।

यह फार्म-हाउस संस्कृति देश में आजादी के बाद फली-फूली है। भेंट-गिफ्ट तहजीब तो अंग्रेजों के जमाने से प्रचलित हैं। महानगरों में फार्म-हाउस होना आर्थिक बड़प्पन की पहचान है। हर समृद्ध से लेकर हर बड़के अफसर की शान फार्म-हाउस हैं। कुछ इसे दंश की कृषि-संपदा में अपना निजी योगदान मानते हैं, अधिकतर इसे अपने बड़े बनने का माध्यम। कइयों का तो यह भी दावा है कि वह देश के शहरों को ग्राम-संस्कृति से जोड़ रहे हैं। वह नायाब विदेशी फल-फूल उगाकर, कृषि उत्पादन को नई दिशा देने में अग्रणी हैं। इसका एक व्यापारिक पक्ष भी है। शहर के पाँच सितारा होटलों को सजावट के फूल ऐसे ही फार्म-हाउस उगाते ही नहीं, उससे पैसा भी कमाते हैं। व्यापारियों की वृद्धि कुशाग्र है। एक ओर वह संपर्क बढ़ाने के साधन जुटाते हैं, तो दूसरी ओर उससे ही पैसा कमाने की जुगत भी। एक पंथ, दो काज का फार्म-हाउस से बेहतर उदाहरण क्या हो सकता है? फार्म-हाउस उनके लिए नए संपर्क बनाने और पुरानों को प्रगाढ़ करने की उत्कृष्ट विधि है। ऐसा नहीं है कि इस पुण्य कर्म का खर्चा उनकी जेब से जाता है। उनकी प्रबंधन कला की महारत इस तथ्य से स्पष्ट है कि इसमें भी उनका मुनाफा है। फल-फूल, लगे हाथ, फाइव-स्टार होटलों की शोभा बढ़ाते हैं।

ऐसों की नए वर्ष के उत्सव की खिड़की नए वर्ष के आगमन से एक सप्ताह पहले से खुल जाती है। मंत्रालयों और राजनीतिज्ञों में

उनकी इतनी पहचान है कि सबकी खातिर-तवज्जो में समय तो लगना ही लगना। आधे सप्ताह अफसरों को निपटाना है, बाकी दिन सियासी महापुरुषों को। इनको अलग-थलग भी रखना है। कहीं एक के राज दूसरों पर न खुले? अफसर नेता को याद दिलाएँ कि 'आपको फलानी फार्म-हाउस की पार्टी का स्मरण है कि नहीं? उसमें आप पूल से नंग-धड़ंग अवतरित हुए थे? हमारे पास तो उसके फोटोग्राफ भी हैं?' यों आज के समाजसेवकों का लाज-शरम से दूर-दूर का नाता-रिश्ता नहीं है। वह साफ इनकार कर सकता है कि 'ऐसी दुघर्टना से उसका कोई लेना-देना नहीं है। इस फोटू में शरारती ने उसका सिर और दूसरे का धड़ लगा दिया है। विरोधियों का लक्ष्य कर देश को अस्थिरता के अँधेरे में धकेलना है। यों उसे विश्वास है कि सच का सूरज ऐसे झूठ के तिमिर को दूर करने में पूरी तरह समर्थ है।' वह स्वयं को देश से एकाकार मानता है। उसका विचार है कि जब वह पूल में उतरा तो वह व्यक्ति न होकर पूरा देश था। जब वह नंग-धड़ंग पूल से निकला तो पूरे देश की मर्यादा तार-तार होने के कगार पर है। यह कहना कठिन है कि वह वाकई खुद को मुल्क का प्रतीक मानता है कि केवल जनता को मूर्ख बनाने को यह उसकी कोई भावनात्मक चाल है।

वह भूलता है कि उसकी कथनी और करनी के अंतर पर उनके सगे भी संदेह करने लगे हैं। पर यह भी सच है कि जो अपने को महान् समझते हैं, उनके अपने-अपने मुगालते हैं। वह उन्हीं में जीते हैं। यह सच सिर्फ जनसेवकों पर न होकर हर क्षेत्र में लागू है। साहित्य का सोचिए तो एक युग-सत्य सामने आता है। तीन-चार उपन्यास या कहानियाँ लिखी नहीं, कि आज के साहित्यिक छुटभइए महानता के एवरेस्ट पर जा बिराजते हैं। गुलेरी शायद बिरले लेखक हैं, जो अपनी एक कहानी से अमर हैं। दुर्भाग्य है कि हर व्यक्ति या कलम-किस्सू गुलेरी बनने के गुमान में है। यह मुगालतों का मर्ज लाइलाज है, फिर चाहे सियासत हो या साहित्य अथवा सरकारी सेवा। हमने कई ऐसे सरकारी सेवक देखे हैं, जो इस शक से पीड़ित थे कि वह सेवानिवृत्ति हुए तो सरकार ठप पड़ेगी। दुखद है कि अहम का भ्रम काफी व्यापक है। ऐसे संसार से चले गए, पर सरकार है कि अब तक चल रही है।

हमें विश्वास हो चला है कि समृद्ध-पुत्र ठीक ही कहते हैं। नए वर्ष की खिड़की आयातित है। क्यों न हो? नए वर्ष का उत्सव कौन स्वदेशी है? यह भी तो देश में अंग्रेजी सरकार की देन है। यों भारत उत्सव प्रिय देश है। हमारे स्वदेशी त्योहार कौन कम हैं, जो हमें विदेशी उत्सव आयातित करने पड़ें? इसे तो अंग्रेजी प्रभाव का परिणाम ही कहेंगे कि गोरी मानसिकता के कालू गोरों के त्योहार को अपना ले। देश में बहुत कम धंधे ऐसे हैं, जो बिना सरकारी कृपा के चल सकें। कहने को भारत से लाइसेंस-परमिट राज विदा हो चुका है, फिर भी उसके खँडहर अब भी शेष हैं। शायद ही कोई ऐसा मंत्रालय है, जो व्यापारी-वर्ग पर अपनी सत्ता छोड़ना चाहता हो। मंत्री से लेकर बाबू-अफसर तक सब इनसान हैं। मानव अपनी महत्ता में जीता है। अधिकार का अर्थ ही है कि दस लोग सलाम करें, 'सर' के संबोधन से सम्मान दें और वक्त-जरूरत, भेंट-गिफ्ट का चढ़ावा चढ़ाएँ। अंग्रेजी शासन ने भारत को बहुत कुछ दिया, भेंट-गिफ्ट की परंपरा भी। इसमें दीपावली की डाली, होली के उपहार और पाँच सितारा होटलों के डिनर तथा नववर्ष के उत्सव के 'पास' आदि भी शामिल हैं।' फार्म-हाउस की पार्टियों का जिक्र तो पहले ही हो चुका है। हमें आज भी याद है। जब मारुति की पहली कार आई थी तो वह सस्ती तो थी, पर सुलभ नहीं। तब हमारे महानगर में एक अफवाह जोर पकड़े थी कि तत्कालीन पुलिस कमिश्नर को एक व्यापारी घराने ने मारुति कार की भेंट दी थी। इसमें कितना सच है कितना झूठ, यह तो पता नहीं लगा, पर किसी ने इससे इनकार भी नहीं किया। न व्यापारिक घराने ने, न पुलिस के अधिकारी ने। जैसी अफवाहों की नियति होती है, खबर फैली तो जोर-शोर से, पर खुद-बखुद ठप भी हो गई। तब तक और रोचक अफवाहें शहर की शान बढ़ाने लगीं। हर शहर की रीत है। सबमें कुछ-न-कुछ ऐसी गतिविधि तो चलनी ही चाहिए, वर्ना सन्नाटा किसे रास आता है?

शहरों में ऐसे लोग भी बसते हैं, जिनके पास घर ही नहीं है तो खिड़की कैसे हो? वह भी आयातित। लिहाजा नववर्ष मनाने की समस्याएँ भी हैं। यों शहर के हर ढाबे में उत्सव है, चाहे वह छोटा हो या पाँच सितारा। कुछ को बाहर के खाने का शौक है, गरीब दूसरों की देखा-देखी एक दिन पास के ढाबे को कृतार्थ करते हैं, जब कि बड़े अधिकारी फ्री में पाँच सितारा ढाबे को। सामान्य ढाबे में सिर्फ सजावट और भोजन है, जबकि बड़े ढाबों में मनोरंजन भी है। कोई-न-कोई प्रसिद्ध गायक या नृत्यदल आमंत्रित है। मेहमानों के लिए डांस का सुभीता और संगीत है, जब चाहें थिरक लें।

शहरों में ऐसे लोग भी बसते हैं, जिनके पास घर ही नहीं है तो खिड़की कैसे हो? वह भी आयातित। लिहाजा नववर्ष मनाने की समस्याएँ भी हैं। यों शहर के हर ढाबे में उत्सव है, चाहे वह छोटा हो या पाँच सितारा। कुछ को बाहर के खाने का शौक है, गरीब दूसरों की देखा-देखी एक दिन पास के ढाबे को कृतार्थ करते हैं, जबकि बड़े अधिकारी फ्री में पाँच सितारा ढाबे को। सामान्य ढाबे में सिर्फ सजावट और भोजन है, जबकि बड़े ढाबों में मनोरंजन भी है। कोई-न-कोई प्रसिद्ध गायक या नृत्यदल आमंत्रित है। मेहमानों के लिए डांस का सुभीता और संगीत है, जब चाहें थिरक लें। पारस्परिक प्रतियोगिता भी है। एक बड़का अधिकारी दूसरे को सुनाता है, 'भाई, हम तो उस नए खुले होटल में सपरिवार गए थे। कैसे बताएँ, खाना भी शानदार था और मनोरंजन भी। रात तो वहीं नया वर्ष लाने में बीत गई, बिना सोए आज दफ्तर आए हैं।''

उल्लेखनीय है कि नए साल में पहले सप्ताह में कामकाज कुछ नहीं होता है। कर्मचारी एक-दूसरे और अधिकारियों को 'हैप्पी न्यू ईयर' की कामना में व्यस्त हैं। ऐसे नव वर्ष पर इन शुभ इच्छाओं का असर कुछ नहीं है। न मुद्रास्फीति कम होती है, न कीमतें। दैनिक जीवन दिनोदिन और महँगा तथा कठिन होता जाता है। नए वर्ष का सुखद प्रभाव है कि बच्चों के स्कूल की फीस बढ़े न बढ़े, पर कोर्स की पुस्तकें महँगी हो गई हैं। स्कूल

के मालिक खर्चा किससे वसूलें? उन्होंने भी तो उत्सव मनाया है मित्रों के साथ। वह या तो फीस बढ़ाकर पैसे वसूलते हैं या फिर अपनी अलग पुस्तकों की कीमत बढ़ाकर। वर्तमान में शिक्षा का धंधा बेहद लोकप्रिय है। निजी स्कूल को बनाकर इसके पूँजीपति 'समाज-सेवा' में लगे हैं। इसमें नाम का नाम और दाम का दाम है। इसका शोषण भी निराला है। प्राध्यापक अधिक वेतन पर दस्तखत करते और पाते कम हैं। कागज पर दिखाई संख्या से उनकी तादाद बहुधा कम होती है। सरकारी मदद की राशि के मानकों का पालन कर सर्वशिक्षा अभियान में नए-नए तरीके अपनाकर शिक्षा के पूँजीपति कमाई के धंधे में जरूर जुटे हुए हैं। आजकल इसी प्रकार के देश-सेवकों की चाँदी है।

नया वर्ष नगर-महानगर के समृद्ध और शासक वर्ग का एक लोकप्रिय उत्सव है। इनमें से अधिकतर इसे यह सोचकर मनाते हैं कि सालभर सत्ता सलामत रही। इतना पैसा कमाया, भ्रष्टाचार किया, जाँच एजेंसियों को चूना लगाया, पर मीडिया के हाथ कुछ न आया, वरना वह तिल का ताड़ बना देती। ऐसों को नहीं लगता है कि उनका जीवन नश्वर है, फिर भी अनुभव इस तथ्य का साक्षी है। इसे गनीमत ही कहेंगे कि पूरे वर्ष न कोई दुघर्टना हुई, न हारी-बीमारी। इनमें से दोनों बिना पूर्व सूचना के तशरीफ लाते हैं। ऊपरवाले की इनायत रही। न सरकारी अस्पताल जाना पड़ा, न निजी। नहीं तो दोनों मरघट की मंजिल के विश्राम-स्थल हैं। खुद डॉक्टर इस सच्चाई के गवाह हैं। हाल ही में दो विशेषज्ञ बीमारों का इलाज करते करते टें बोल गए, अपनी ही निजी क्लीनिक में। सामने बैठा रोगी अपनी व्यथा-कथा सुना ही रहा था कि निदानकर्ता का सिर मेज पर लुढ़क गया। वह किसी अजानी बस्ती में प्रस्थान कर चुके थे। रोगी ने अंदर से हल्ला मचाया, कमरे के बाहर प्रतीक्षा कर रहे लोगों ने बाहर से। पर नतीजा सिफर का सिफर ही रहा। निष्कर्ष यही है कि जीवन में कुछ भी अनपेक्षित संभव है। इन परिस्थितियों में एक वर्ष की सही-सलामती, क्यों न उत्सव का कारण हो?

यों प्रत्यक्षदर्शी गवाह हैं कि साल बदलने से कलेंडर के अलावा और कुछ भी नहीं बदलता है। सारे के सारे नव वर्ष के सुखद होने के कार्ड बस कुछ छपाईवालों की कमाई के साधन हैं। इसीलिए वह इन कार्डों को छापते भले हों, परिचितों को खुद नहीं भेजते हैं। वे जानते हैं कि बदलाव कब होता है? नया साल आया या होली दीवाली, ईद या क्रिस्मस तो उन्होंने मुनाफे के चक्कर में कार्ड छपवा लिये और बेच दिए। यदि उनके नाम से कार्ड गए तो यह मात्र दफ्तर के प्रचार की औपचारिकता है, इससे उनकी वास्तविक भावनाओं का कोई ताल्लुक नहीं है। हमें कभी-कभी गंभीरता से संदेह होता है कि नए वर्ष का सारा उत्सव कहीं खरीद-फरोख्त के बाजार-प्रबंधन (मार्केटिंग) का खेल तो नहीं है?

इतने नए वर्ष बीत गए मंगल-कामनाओं की इफरात के वाबजूद, हामिद भाई अब भी हजामत के धंधे में लगे हैं, गाँव से शहर आए कल्लू, तपेदिक से ग्रस्त होने के बाद भी, बदस्तूर काहिल मोटों को ढोते हुए, रिक्शा हाँक रहे हैं, काँखते-कराहते? कौन सा नववर्ष पधारेगा कि उनके जीवन की गुणवत्ता में सुधार आए? इतनी सरकारें वर्षों से कलेंडर भेजते-छापते चली गईं, बिना ऐसों की जिंदगी स्पर्श किए। हामिद और लल्लू ऐसे हजारों-लाखों हैं, जो साँसों के सफर में हताशा से लगे हैं। हमारी नजर में ऐसे किसी राष्ट्रीय स्तर के पुरस्कार के हकदार हैं। इतनी दुखद और कष्टप्रद जिंदगी गुजारने के उपरांत भी उन्होंने आत्महत्या का नहीं सोचा। जिजीविषा हो तो ऐसी हो। हमें लगता है कि भारत में ऐसे सामान्य लोगों की कमी नहीं है, वरना मौसम की विविधता और आँख-मिचौली में न जाने कितनी जानें चली जातीं।

राहत की बात है कि नगर-महानगर में नव-वर्ष, साल में एक दिन लोगों को हर्ष की छोटी-बड़ी ढाबा-गटर में डूबने का अवसर देता है, इस गलतफहमी के साथ कि वह जैसे गंगा नहा लिये। संपन्न सोचता है कि उसके संपर्क बढ़े, उसने बड़े ढाबे के इतने निमंत्रण खरीदकर बाँटे हैं, वह कुछ तो आभार मानेंगे। जो निमंत्रित हुए हैं, ऐसों का विचार है कि यह उसका कर्तव्य और उनका अधिकार है। साल में दो-तीन बार कभी बड़े ढाबे और कभी फॉर्म-हाउस में बुला भी लिया तो कौन सा अहसान कर दिया? इससे 'फाइल' पर 'फेवर' होने से रहा। उल्टे दफ्तरवालों ने भी यदि संपर्क का सच सूँघ भी लिया है तो उनके 'क्लियर' होने में और समय लगना लाजिमी है। आखिर हाकिम की 'रेप्युटेशन' का प्रश्न है। जीवनभर इतनी मेहनत से झूठ को सच की छवि दी है। अब क्यों चूकें? फिर भी हर बार वह समृद्ध के बिचोलिए को आश्वस्त करते हैं कि 'काम उनका ही होना है, पर मामला लाखों-करोड़ों का है। वह नहीं चाहते हैं कि किसी को रत्तीभर भी संपर्क या जान-पहचान होने का शक हो। इधर जमाना भी ठीक नहीं है। रोज धर-पकड़ हो रही है।'

इसी बहाने कुछ के लिए आयातित नववर्ष की खिड़की खुल रही है। पर देश की अधिकतर आबादी गाँवों में है। वहाँ घर भले हो, उनमें खिड़की यदि है भी तो 'देसी' है। इससे होली, दीवाली, ईद आदि भले प्रवेश करें, पर नया वर्ष कभी नहीं आता है। उनमें से कइयों ने नववर्ष का नाम भले सुना हो, पर इसे मनाने में उनकी कोई रुचि नहीं है। मनाएँ तो क्यों और वह भी कैसे? वहाँ न छोटे ढाबे हैं, न बड़े। निकट भविष्य में इसकी संभावना भी नहीं है। फिलहाल, बिजली-पानी का प्रबंध है तो, पर वह भी सीमित समय के लिए है। क्या पता, बिजली कब आए, कब कहीं और सैर करे? वह स्वभाव से चंचल है। नगर-महानगर में कब टिक कर रहती है, जो गाँव पर सतत टिकने की कृपा करे? इस नजरिए से देखें तो नए साल की गाँवों में न महत्ता है, न महत्त्व।

इससे उलट देश में नई फसल के त्योहार हैं, जैसे महाराष्ट्र में बुद्धपड़वा, दक्षिणी राज्यों में पोंगल और उत्तर-पूर्व में बीहू तथा उत्तर भारत में चैत्र की नवरात्रि। ये सारे उत्सव भारत जैसे कृषि-प्रधान देश से जुड़े हैं, इसकी तुलना में पश्चिमी देशों का नववर्ष अपने पल्ले नहीं पड़ता है। यह कौन सा त्योहार है? खेती या उद्योगों का अथवा ठंड पड़ने का? इसे मनानेवाले जानें। नववर्ष को इस आयातित उत्सव की आयातित खिड़की कुछ कालू-गोरों के लिए भले खुले, पर इस देश के अधिकांश घरों के लिए बंद है।

९/५, राणा प्रताप मार्ग, लखनऊ-२२६००१
दूरभाष : ९४१५३४८४३८

कविताएँ

● राजश्री सिंह

आई.जी., क्राईम, यातायात एवं राजमार्ग, हरियाणा। १९९० में डी.एस.पी. रैंक से ज्वॉइन किया! २०१२ में प्रेसिडेंट पुलिस उत्कृष्ट सेवा के लिए।

दिल से खाकी

जी हाँ दोस्तो!
खाकी का भी दिल होता है…
जो न जाने कितनी जिम्मेदारियों
का बोझा ढोता है…
किसी से कोई शिकवा नहीं
शिकायत नहीं
फर्ज से मोहब्बत है
शिकवों की आदत ही नहीं…
अकसर कुछ कहना होता है
तो खुद से ही कह लेती है
ये खाकी दुनिया भर का दर्द
अपने आप ही सह लेती है
खाकी का दूसरा नाम है
लोगों का विश्वास
खाकी समेटे है
कुर्बानियों का अमिट इतिहास।

: दो :

ये खाकी है
ना खाती है, ना सोती है,
हर मज़लूम के मगर, ये साथ होती है।
नफरत से जो देखा खा हर एक ने इसको,
जगर आज ये जाना ये भी इंसान होती है।
खड़ी है चौक-चौराहे पे ये
ना कोई गिला ये करती है।
ना मिल पाए अपनों से ये, मन ही मन में,
अपनों को बस, याद करती है।
सलामत रहे ये मेरा देश,
बस यही फ़रियाद करती है।
मेरे सीने में भी दिल है, नब्ज़ धड़कती है।
मिल लूँ मैं बूढ़ी माँ से अपनी,
ये कामना भी होती है।
जब सारी दुनिया घर में सोती है,
ये ख़ाकी चौराहों पे मुस्तैद खड़ी होती है।

: तीन :

कोई गड्ढे में गिरे या कोई हादसे में मर जाए
कुसूरवार सब पुलिस वालों को ही ठहराएँ
छोड़ो दशहरा, होली, दीवाली, ईद पर भी
बच्चे इंतज़ार में रोते-रोते यूँ ही सो जाएँ
माँ हो पुलिसवाली तो जागते हैं पूरी रात
सर्दी, गरमी या बरसात पेट्रोलिंग में जाते हैं साथ
यूँ ही यहाँ से वहाँ, वहाँ से न जाने कहाँ-कहाँ
सरपट दौड़ते वीरान सड़कों पर न जाने कब
बिन जिए ही जिंदगी में शाम से पहले ही शाम हो जाए

: चार :

ये देश पे कुर्बान होना जिसको आता है
हँसकर फाँसी पर वो दीवाना झूल जाता है
आसां नहीं ये जज्बा शहादत का
क्या अपने, क्या पराए सब भूल जाता है
वो पागलपन, मस्ती, वो देशभक्ति
वो फाकामस्ती, जुनून और वो सरपरस्ती
दुश्मन भी जिसको देखकर सिर झुकाता है
मैदान-ए-जंग में जब जौहर दिखाता है
दुश्मन भी दुम दबाकर सरपट भाग जाता है
बहाया खून जिन्होंने जय-जयकार उनकी है
इस देश की हर पीढ़ी कर्जदार उनकी है।

औरत

बस देखती रही शून्य में
इतना कुछ सहना था भगवान! तो
औरत को तूने दिल क्यूँ दिया
क्यूँ दिमाग दिया
क्यूँ दी सोचने-समझने की ताकत
क्यूँ नहीं बिना दिल के
मांस का लोथड़ा बना के दिया धर
पर क्यूँ अत्याचार सहने के बाद
सिसकियों से भर जाती हैं साँसें
क्यूँ झर-झर बहती हैं आँखें
क्यूँ कर कोई करता है
अपनी-अपनी तरह का अत्याचार
घर या बाहर
कोई तानों से मारे तो कोई गोली से
कोई आँखों ही आँखों में निगल जाता है
कोई कर देता है इज्जत को ही तार-तार
मानसिक विकृतियों का इलाज नहीं करते
और इल्जाम धर देते हैं औरत पे ही हर बार
कोई वस्त्र, तो
कोई और वक्त का बहाना लेता है
कोई चरित्रहीन तक कह देता है
पर कुसूर औरत का ही होता है हर बार
ऐ खुदा! इतनी बड़ी मार ना मार
बस औरत बनके तो देख एक बार!

ऑफिसर्स एन्क्लेव, आर.टी.सी.
हरियाणा पुलिस कॉम्प्लेक्स
कादरपुर, गुरुग्राम
दूरभाष : ९७२९९९५०००

कहानी

पुत्रवती

● मंजू मधुकर

जानी-मानी लेखिका। अब तक तीन कहानी-संग्रह तथा प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में कहानियाँ प्रकाशित। बहरीन में हिंदी अध्यापन। मॉरीशस ब्रॉडकास्टिंग कॉरपोरेशन में ‘घर-गृहस्थी’, ‘आपकी चिट्ठी मिली’ तथा अन्य सामाजिक कार्यक्रम प्रस्तुत। बहरीन में ‘फाइन आर्ट सोसाइटी’ द्वारा सम्मानित व पुरस्कृत।

ट्रिन, ट्रिन, ट्रिन!

मीनू भागती-हाँफती किचन से लॉबी में आई, और फोन उठाया।

“हैलो! मैं मिसेज सक्सैना बोल रही हूँ जी।

“हाँ, हाँ, बोलिए!”

“बस जी एक छोटा सा आयोजन कर रहे हैं। वैसे कार्ड तो व्हाट्सऐप पर आपको मिल ही जाएगा। परंतु कल देवी जागरण है। पहले तो जी खाना-पीना है, फिर रात्रि जागरण है। फिर आगे के कार्यक्रम कार्ड में मिल जाएँगे।”

“अरे वाह! कोई खास बात?”

“हाँ जी, खुशी की बात है। छोटा ऑस्ट्रेलियन ब्याहकर ला रहा है। आज रात एक बजे की फ्लाइट से आ जाएगा। फिर इतवार को उसकी शादी का रिसेप्शन है। शनिवार को महिला संगीत व कॉकटेल है। आपको मिल जाएगी जानकारी।”

“अरे वाह! आपने तो पूरी धूमधाम कर ली।”

“हाँ भई, करनी ही है। पेट पोंछना लाड़ला बेटा है हमारा। फिर ऑस्ट्रेलिया से भी बीस लोग आ रहे हैं। बेटे के मित्र हैं, हमारी होनेवाली बहू का नाम ‘मैलिसा’ है। उसकी दो बहनें हैं, बहनोई उनके बच्चे, आंटी-अंकल हैं। माँ-बाप नहीं हैं, तो भाई, रेडसन ब्लू में ठहरने का इंतजाम है। और बेटे-बहू व बच्चे भी आ रहे हैं।”

“चलिए, रौनक हो जाएगी। सभी बहुत दिन बाद एकत्र हो रहे हैं।”

“हाँ, हाँ!” कहकर मिसेज सक्सेना ने फोन बंद कर दिया। मीनू ने भी झुककर अपने छोटे पाँव की उँगली कसकर दबाई। जो जल्दबाजी में भागने से टकराकर लग गई। अजीब बेवकूफ औरत है, मोबाइल पर फोन क्यों नहीं किया। लैंडलाइन पर कर रही है।

खैर छोड़ो! वह आराम से सोफे पर बैठ गई। कामवाली को कॉफी का ऑर्डर दिया।

और अपनी प्रिय सखी को, जो मिसेज सक्सैना की पड़ोसन है, को मोबाइल मिलाया। विषय जरा जूसी था। अत: काफी देर तक गप्पें होती रहीं, मूल विषय मिसेज सक्सैना ही थीं। दरअसल मिसेज सक्सैना का छोटा बेटा अविरल बहुत अच्छे स्वभाव एवं व्यक्तित्व का मालिक है। देखने में अति आकर्षक, स्मार्ट व पाँच फीट मुनासिब कद-काठी का युवक। पड़ोस में ही रहनेवाले जैन साहब की बेटी श्रेया व अविरल ने एक साथ ही एम.बी.ए. किया था। श्रेया व अविरल की प्रगाढ़ मित्रता के किस्से काफी मशहूर हुए। लगता था कि दोनों शीघ्र ही विवाह बंधन में बँध जाएँगे, लेकिन जैन दंपती भी कम नहीं थे। शीघ्र ही अपने पैतृक गृह जयपुर गए और श्रेया को विवाह बंधन में बाँध आए। अविरल कुछ दिन मजनू बना घूमता रहा, फिर पूर्ववत् हो गया। वह निराश प्रेमियों के समान बैठा नहीं, नौकरी वह कहीं लग कर नहीं करता था। जुगाड़ू प्रकृति का था। बड़े-बड़े नामी-गिरामी व्यक्तियों, विधायकों आदि से उसका मेलजोल था।

किसी के भी ऐसे कार्य कराना, कुछ भी कठिन कार्य वह करा देना, अत: कॉलोनी वालों में लोकप्रिय था।

पिता सक्सैना साहब पी.डब्ल्यू.डी. की नौकरी से ऊँचे पद से रिटायर्ड हुए थे। अंधाधुंध पैसा व शोहरत दोनों कमाए थे। लंबी-चौड़ी कोठी ली। नौकर-चाकर थे। घर में कमी थी नहीं। मिसेज सक्सैना हमेशा ठसके में रहतीं। घमंड से सिर ऊँचा ही रहता। पाँच-पाँच गबरू जवान सुपुत्रों की माँ थीं। चार बड़े बेटे विदेशों में ऊँची नौकरियों पर थे। बहुएँ भी ऊँचे तबके की लाई थीं।

रूप-रंग की साधारण परंतु धन-वैभव व ऊँचे तबके की थीं। अलबत्ता मिसेज सक्सैना अपने जमाने की ब्यूटी क्वीन एवं पुरानी दिल्ली के उच्च कायस्थ परिवार की थीं, सात भाईयों की एकमात्र बहन। सक्सैना साहब का भी उच्चे खानदान था। परंतु वह मिलनसार व्यक्ति थे। घमंड उन्हें छू भी नहीं गया था।

परंतु श्रीमती सक्सैना उनके विपरीत थीं, सदैव नाक ऊँची कर रहती थीं। पुत्रवती थीं और पुत्रियों से उन्हें नफरत थी। उनके मँझले देवर के भी तीन पुत्र थे, सभी दिल्ली में, एक तो नोएडा में ही था, परंतु छोटा देवर थोड़ा साधारण पद पर था। उसके तीन बेटियाँ थीं। उस देवरानी को यह पसंद नहीं करतीं और न ही उनकी बेटियों को। मँझले देवर ऊँचे पद पर थे, उनके बेटे भी उच्च पदों पर थे। उनसे ही आना-जाना था।

वह प्राय: बेटों के पास विदेश रह आई थीं। छोटे अविरल को भी विदेश भेजना चाह रही थीं, पर वह नहीं जाना चाहता था। वह चाहती थीं कि अविरल विदेश जाए तो उसका विवाह भी ऊँचे तबके में कर दें। परंतु अविरल हाथ ही नहीं आ रहा था। वह समाज-सेवा में ही लगा रहता था। सभी की वक्त पर सहायता करना। सक्सैना साहब ने ग्रेटर-नोएडा में एक

फैक्टरी डाल दी थी उसके नाम में, वहाँ भी कम ही जाता था।

मीनू के पति से उसकी काफी पटती थी। मीनू के पति आई.ए.एस. थे तथा अभी रिटायर्ड होने में दो वर्ष थे। दिल्ली में नीति आयोग में ऊँचे पद पर थे। मीनू के पति को भी उससे बात करने में आनंद आता था। अविरल को सभी तरह की नॉलेज थी। प्रत्येक विषय में उसका दखल था।

इधर मीनू एवं उनके पति भी एकाकी थे। इकलौता बेटा-बहू व एक पोता मुंबई में रहती थे। बहुत सूना रहता। परंतु इधर उन दोनों के जीवन में भी थोड़ी बहार आ गई। हुआ यों कि मीनू की एक विधवा चचेरी ननद बहुत कर्मठता से मथुरा में रहकर अपना मांटेसरी स्कूल चला रही थीं। पति पुलिस कमिश्नर थे, परंतु टैररिस्ट एनकाउंटर में मारे गए थे। दो पुत्रियाँ थीं। बड़ी स्टेट बैंक में प्रोबेशनर सलेक्ट होकर पोस्टिंग पर नोएडा आ गई थी। दूसरी आगरा से डॉक्टरी पढ़ रही थी। बड़ी बेटी मालिनी मीनू के घर ही रहने लगी। नाजुक सी खूबसूरत, स्मार्ट, गले में भी उसके सरस्वती थी। शाम को मीनू के पति, मालिनी एवं मीनू जब चाय पर बैठते तो अविरल भी आ टपकता। अब तो धीरे-धीरे उसकी शामें मीनू के घर ही बीततीं। मीनू नोटिस कर रही थी, मालिनी एवं अविरल दोनों एक-दूसरे की ओर आकर्षित हो रहे हैं। अविरल भी तबला-गिटार बजाता था। गाता भी था। दीपावली के दीपोत्सव में दोनों ने कई गाने गाकर धूम मचा दी। अनेक बार वह अपनी मोटर साइकिल पर मालिनी को बैंक से लाता या बैंक ले जाता। परंतु मिसेज सक्सैना को यह नागवार लगने लगा। हालाँकि मन ही मन वह मालिनी के रूप-सौंदर्य एवं गुणों की प्रशंसक थीं।

एक दिन मीनू के पति ने कहा, "मीनू, लगता है अविरल ने मालिनी पर डोरे डालने आरंभ कर दिए हैं।"

"जी हाँ, आपकी सीधी-सादी भानजी उन डोरों में फँस भी गई है।"

"जी हाँ, वह तो ठीक है, कहीं वह उन डोरों में उलझ न जाए।"

"अविरल की पुरानी हिस्टरी तो आप जानती ही हैं। मैडम, जरा ध्यान दीजिए, मेरी भानजी बहुत ही भावुक स्वभाव की है उसके दिल को ठेस नहीं लगनी चाहिए।"

"हाँ, मैं तो सोच रही हूँ कि मौका देखकर अविरल से बात करूँगी और फिर मिसेज सक्सैना से बात करूँगी। उनकी टोह लूँगी। यदि कुछ संकेत हाँ में मिलता है तो मथुरा से सुनीता को बुला लूँगी। यहाँ बात बन जाए तो अच्छा है। पढ़ा-लिखा सुसंस्कृत परिवार का खाता-पीता घर है। बड़े भाई भारत आने से रहे। तीन मंजिला विशाल कोठी है। फैक्टरी भी है। अब तो अविरल फैक्टरी पर भी ध्यान देने लगा है।"

एक दिन अवसर देखकर मालिनी ने अविरल को घेर लिया, "क्यों अविरल, मालिनी से तुम्हारी मित्रता के चर्चे बढ़ते जा रहे हैं, तुम्हारी मम्मी से बात करूँगी।" "हाँ आंटी, मैं मालिनी से ही शादी करूँगा। पर अभी आप रहने दीजिए, मैंने ऑस्ट्रेलिया की एक कंपनी में नौकरी व आगे की डिग्री के लिए एप्लाई किया है। एक-आध हफ्ते में पता लग जाएगा। आप तो जानती हैं, हमारी माताजी ने अपना प्रेस्टीज इशू बना रखा है कि मैं भी बाहर की डिग्री लेकर आऊँ। फिर भले ही यहीं सैटल हो जाऊँ।"

"हाँ, तुम्हारे पापा तो यही चाहते हैं कि तुम यहीं रहो। फैक्टरी चलाओ। मालिनी भी इंडिया में ही रहना चाहती है। उसकी अच्छी-भली सरकारी नौकरी है।"

अनेक लंबे-चौड़े वादे कर तथा एक वर्ष का कहकर अविरल ऑस्ट्रेलिया चला गया। वहाँ से लगातार फोन, तोहफे, कार्ड आते रहे। साहित्य पर भी बातें होतीं। लंबी दूरी भी छोटी लगने लगी। छह माह गुजर गए। आने के दिन भी नजदीक आ रहे थे।

मीनू को यही अवसर उचित लगा। और एक दिन सीधे-सीधे मालिनी के विवाह का प्रस्ताव यह कहकर रख दिया कि वह दोनों भी आपस में रुचि ले रहे हैं। काफी अच्छी दोस्ती रही है उन दोनों में। अभी भी घंटों फोन पर बातें होती हैं। परंतु मिसेज सक्सैना का चेहरा सख्त हो गया। 'दोस्तियाँ तो बच्चों में हो जाती हैं, एक तो बराबर गाने-बजाने के शैकीन हैं। वह ठीक है, शादी-ब्याह बराबर वालों में ठीक रहता है। स्कूल की मास्टरनी की बेटी से तो मैं विवाह करने से रही। भाई भी नहीं है कोई। माँ ने लड़कियाँ पैदा कीं, बेटी भी यही करेगी।

"हमारा एक रुतबा है, स्टैंडर्ड है। मेरी चारों बहुओं को तो आपने देखा ही है, उच्च संस्थानों से शिक्षा प्राप्त हैं। देश के मशहूर कॉन्वेंटों के पढ़ी-लिखी। एक सुप्रीम कोर्ट के चीफ जस्टिस की बेटी है, तो दूसरी रेलवे बोर्ड के मेंबर की बेटी। एक के पिता कैबिनेट सेक्रेटरी रह चुके हैं तो चौथी के आई.एफ.एस. अमेरिका के राजदूत। आपकी चचेरी विधवा ननद की बेटी ने देखा ही क्या है।" विद्रूपता से मिसेज सक्सैना बोलीं।

"देखा क्यों नहीं है, उसके पिता सुपरिंटेंडेंट पुलिस थे। टैररिस्ट एनकाउंटर में मारे गए। २६ जनवरी पर जब सफेद वस्त्रों में लिपटी छब्बीस वर्षीया सुतीना राष्ट्रपति से पदक लेने गई तो हर एक की आँख नम हो उठी।" "हाँ जी, वह तो हर वर्ष ही कोई-न-कोई पदक लेता ही है अब तो वह मास्टरनी की ही बेटी है। पदक को क्या हम चाटेंगे।"

मीनू के तन-बदन में आग लग गई। वह तो अविरल ही हमसे कह गया था, वरना दोनों का कोई जोड़ नहीं है। कहाँ है नामी-गिरामी बैंक अफसर और अविरल तो अभी कुछ भी नहीं है।

कहकर मीनू भी अपनी भड़ास निकालकर आ गई। मिसेज सक्सैना का मुँह जरा सा रह गया। बहुत दिनों तक दोनों में अनबोला रहा। फिर मीनू के पति ने ही समझाया कि "होश की दवा करो मैडम, कल को वह तुम्हारी समधन भी बन सकती है। क्योंकि अविरल शादी मालिनी से ही करेगा और वह उसे मना नहीं कर सकेंगी।"

मीनू ने न चाहते हुए भी पुन: मेलजोल आरंभ कर दिया। इसी बीच मालिनी ट्रेनिंग में एक माह के लिए मुंबई चली गई। मीनू एवं उसके पति भी एक विवाह में सम्मिलित होने मुंबई ही चले गए। लगभग एक माह पश्चात् वे लोग वापिस आए।

परंतु इधर अनायास ही अविरल के पत्रों की संख्या फोन एवं मैसेज नगण्य हो गए। मालिनी फोन करती तो फोन नंबर अमान्य ही आता। मीनू टोह लेने मिसेज सक्सैना के घर भी गई, परंतु उसे कोई सुराग नहीं मिला।

मीनू की दो-तीन हितैषी सखियों ने बताया कि लगता है, मिसेज सक्सैना कुछ खेल कर गई हैं। मालिनी की हालत उससे देखी नहीं जा रही थी। धीरे-धीरे उसके पति ने व उसने मालिनी को समझाया कि कोई और प्रस्ताव देखा जाए, परंतु वह भावुक लड़की तैयार ही नहीं हो रही थी।

खैर, एक अच्छा पात्र उन लोगों को मिल ही गया। मीनू की छोटी बहन का बेटा दिल्ली में आई.ए.एस. होकर आ गया। कुछ दिन मीनू के घर रहा और अब दिल्ली में रह रहा था। मालिनी की ओर आकर्षित हो उठा। मीनू ने भी अपनी ननद को बुलाया, मालिनी को मनाया और आनन-फानन में दोनों की सगाई की रस्में पूर्ण कर दीं, विवाह एक माह पश्चात् शुभ मुहूर्त में होना तय हो गया। सब सामान्य हो ही गया था कि आज के फोन ने फिर धमाका कर डाला।

शाम की चाय के साथ मालिनी एवं अपने पति को यह पेश किया गया। मालिनी अनमनी सी हो उठ गई एवं अपने कमरे में जाकर लेट गई। प्रात: उठी तो बोली, "मामी, मैं ऑफिस नहीं जा रही हूँ, आज सिर भारी है। दवा खाकर एक कप कॉफी पीकर सो रही हूँ।"

"ठीक है।"

□

उसी दिन रात्रि जागरण था। मीनू थोड़ी देर के लिए गई। घर खचाखच भरा था, विदेशी मेहमान भी स्वदेशी कपड़ों में बैठे थे। एक साढ़े छह फीट लंबी युवती थी सलवार-कुरता पहने घूम रही थी। लगता है, वही दुलहन है।

अविरल कहीं नहीं दिखा, मीनू घर जाने लगी तो मिसेज सक्सैना तपाक से आईं, 'अरे आप जा रही हैं, कल संगीत में आना न भूलिएगा, मालिनी को अवश्य लाइएगा, उसके बिना संगीत कहाँ जमेगा।"

दूसरे दिन गीत-संगीत का कार्यक्रम था। मालिनी को जिद कर जानबूझकर मीनू उन्हें अपने साथ लेकर गई। गहरे नीले रंग की शिफॉन पर सफेद मोतियों की लड़ियों का हार तथा कान में मोती के भारी टॉप्स पहनाए और स्वयं ही मुग्ध हो उठी। मिसेज सक्सैना की कोठी दुलहन सी सजी थी। बिजली के लट्टू गेंदे, मोतियों के पुष्प और कलियों से भव्य रूप से सजी थी। गेट पर ही अविरल मिल गया, तपाक से उन दोनों की ओर आया—

"नमस्ते आंटी।"

"हैलो मालिनी।"

"मुबारक हो बेटा।"

अविरल ने कुछ उत्तर नहीं दिया। और मालिनी की ओर तीखी निगाह से देखकर कटाक्ष करते हुए कहा, "शादी मुबारक हो।"

वे दोनों ही चौंक पड़ीं, बड़ा अटपटा सा लगा। जब तक जबाव देतीं, तब तक अविरल किसी की आवाज पर भीतर चला गया।

मीनू ने सबकुछ झटकारकर मालिनी के साथ गीत-संगीत में समाँ बाँध दिया। सबकी मुग्ध निगाहें मालिनी पर टिकी थीं। अविरल पलक झपकाए बगैर ही मालिनी को घूरता रहा। मिसेज सक्सैना की ललचाई निगाहें मालिनी पर पड़ती रहीं और मीनू आनंद लेती रही। एक बड़ी सी चौकी पर लंबी-चौड़ी गोरी-चिट्टी नववधु लाल भारी परिधान एवं गहनों से लिपटी होने के बावजूद कहीं से भी लालित्यपूर्ण नहीं लग रही थी।

कार्यक्रम समाप्त कर जब दोनों मामी-भानजी घर जाने लगीं तो अविरल बाहर तक छोड़ने आया। बोला, "आंटी, कल सुबह क्या आपके घर मिलने आ सकता हूँ।"

"हाँ-हाँ, कल रविवार है, सुबह की चाय हमारे साथ ही पीना।"

दूसरे दिन रविवार था, मीनू ने प्रात: का विशेष नाश्ता तैयार किया, मेज सजाई। दोनों मियाँ-बीबी अविरल की प्रतीक्षा कर रहे थे। मालिनी अपने कमरे में लैपटॉप लेकर बैठी थी कि तभी अविरल आ गया। नाश्ता हल्की-फुल्की बातचीत के साथ समाप्त हुआ। मालिनी भी नाश्ता करा रही थी।

अविरल ने कहा, "आंटी, कुछ गलतफहमी का शिकार लगता है, मैं हो गया हूँ। मुझे कुछ गलत इन्फार्मेशन मिली है। क्या मालिनी से मैं अकेले में बात कर सकता हूँ।"

"हाँ, यदि मालिनी चाहे तो।"

"क्या कहना है, मामी के सामने ही कहा।"

"नहीं-नहीं, तुम दोनों बात करो।" कहकर मीनू दोनों को कमरे में छोड़कर चली गई।

उन दोनों की क्या बातचीत हुई, परंतु घंटे बाद जब मीनू कमरे में गई तो दोनों गमगीन बैठे थे। और फिर अविरल यह कहकर कि शादी के रिसेप्शन में अवश्य आइएगा। अविरल चला गया।

मालिनी यों ही गरदन झुकाए बैठी रही। मीनू एवं उसके पति ने कुछ नहीं पूछा। दोपहर का खाना खाने से मालिनी ने मना कर दिया तो दोनों ही लोग कॉफी लेकर मालिनी ने कमरे में गए और पूछा, "आखिर तुम्हारी अविरल से क्या बातचीत हुई?"

सारी बातों का सार यही था कि मिसेज सक्सैना ने गेम खेला, अविरल को गलत सूचना दी कि मालिनी का विवाह करने वे लोग मुंबई गए हैं।

इधर मालिनी का मोबाइल चोरी हो गया। वह अविरल से संपर्क भी नहीं कर पाई। कुदरत ने दोनों को एक नहीं होने दिया। अविरल टूटा दिल लेकर अपनी कंपनी की मालकिन की ओर आकर्षित होकर विवाह बंधन में बँध गया। इंडिया लौटने की इच्छा उसकी समाप्त हो गई। मिसेज सक्सैना अपने बेटे की विषादपूर्ण छवि देख पछतावे की आग में जलती रहीं। विवाह की रस्मों के पश्चात् अविरल सपत्नीक ऑस्ट्रेलिया चला गया। उसके दूसरे चारों भाई भी सपरिवार विदेश चले गए।

लंबी-चौड़ी कोठी भाँय-भाँय करती रही। मिसेज सक्सैना यही सोचतीं कि काश, वह उन दोनों को अलग नहीं करती एवं अपनी महत्त्वाकांक्षाओं को रोक लेतीं तो उनकी कोठी भी आबाद होती।

कुछ महीनों पश्चात् मालिनी का विवाह भी धूमधाम से हो गया। राम सीता सी जोड़ी देखकर सभी अभिभूत हो रहे थे।

मीने ने अपने पास से ही विवाह किया था। मिसेज सक्सैना बराबर कहती रहीं कि वह ऑस्ट्रेलिया जाएँगे बेटे की नवीन गृहस्थी देखने। परंतु अनायास ही सारा विश्व एक विचित्र वायरस की चपेट में घिर गया। सब अपने-अपने घरों में बंद हो गए। नौकर-नौकरानी का आना बंद। हर ओर से भयानक खबरें मिलती रहतीं, बहुत बुरा समय आ गया। आठ-नौ माह बीत गए, एक दिन मिसेज सक्सैना ने फोन पर सूचना दी कि अविरल एक

गोल-मटोल गोरे-चिट्टे बेटे का बाप बन गया है।

सुनकर अच्छा लगा, इस मनहूसियत के माहौल में एक खुश खबर। यह उनके लिए गर्व का विषय है कि पाँच सपूतों ने उन्हें नौ पोते दे दिए।

बेटियों तथा बेटीवालों को वह हिकारत की दृष्टि से देखती हैं। उनके छोटे देवर के चार-चार बेटियाँ हैं। मँझला देवर उन्हें अतिप्रिय है, क्योंकि तीन बेटों के बाप हैं। बेटे भी एक से एक ऊँचे पदों पर है। एक तो उनकी कोठी के चार कोठी बाद ही रहता है, इनकम टैक्स कमिश्नर है। उसकी पत्नी से उनकी काफी पटती है, उसका इकलौता पुत्र सदैव इनके यहाँ ही बना रहता है। छोटे देवरों की बेटियाँ भी डॉक्टर, इंजीनियर, प्रोफेसर वकील बन गई थीं, परंतु मिसेज सक्सैना को वे कतई नहीं भाती थीं।

पहली लहर अभी निपटी ही थी कि मिसेज सक्सैना ने विदेश जाने का प्रयत्न आरंभ कर दिया। परंतु तभी महामारी की दूसरी भयानक ऐसी टूटी कि कई जवान मौतें हो गईं। सारे दिन एंबुलेंस की गाड़ियाँ घूमती रहती थीं। बच्चे, युवा घरों से ही पढ़ने का कार्य करने लगे, वर्क फ्रॉम होम हो रहे थे। घरों का कार्य कर औरतों की कमर टूट गई थी। फोन पर बातचीत हो जाती।

मिसेज सक्सैना अविरल के बच्च को देखने को तरस रही थीं। बता रही थीं कि बच्चे वहाँ से बराबर हिदायतें देते रहते। घर में किसी को घुसने मत दीजिए। फल-सब्जी सब धोकर रखिएगा। स्काईप पर बातचीत होती है। अब बताइए, राय सिंह अपने परिवार के संग नेपाल चला गया। मैं क्या करूँ, नई नौकरानी रख नहीं सकती। बच्चों का सख्त निर्देश है। हम दोनों ही मिल-जुलकर काम कर रहे हैं।

कमर दर्द हो उठा है, सक्सैना साहब की टाँगों में भयंकर दर्द है। "हे भगवान्! कब यह चाइना का कहर समाप्त होगा।"

फिर कई दिन बाद सक्सैना को फोन मिलाया, कोई प्रत्युत्तर नहीं मिला। दो-तीन बार किया तो उसे चिंता हुई तो पड़ोस के बंगाली दंपती को फोन किया, "पता नहीं जी, हमारी तो खिड़कियाँ-दरवाजे सब बंद हैं। कुछ पता नहीं जी। बड़ा डर लगता है।" कहकर उन्होंने फोन बंद कर दिया।

हारकर सक्सेना साहब ने भतीजे को फोन किया तो मालूम हुआ दोनों अस्पताल में भरती हैं। आगे कुछ पूछने की उसकी हिम्मत नहीं हुई, क्योंकि वह भतीजे की बहू जरा कम ही मिलनसार थी।

मीनू के मन में उथल-पुथल मच रही थी कि आखिर क्या वे लोग चपेट में आ गए। एक दिन वह बालकनी में खड़ी थी कि उसने दो नौकरानियों को जाते देखा तो पूछा, "रामी, क्या सक्सैना साहब के कोई बीमार है?"

"आंटीजी हमें तो पूरी तरह पता नहीं है। आप प्रियंका दीदी से पूछ लजिएगा।"

अब मीनू सोच में पड़ गई। प्रियंका तो उन्हें एक आँख नहीं भाती थी। उसके पति एक डिग्री कॉलेज में प्रोफेसर हैं। दो छोटी बेटियाँ हैं। उत्तराखंड की रहनेवाली खूबसूरत, मिलनसार, सुघड़ युवती है। मिसेज सक्सैना उसे कमतर समझती थीं। उनके हिसाब से उसका स्टैंडर्ड इस सेक्टर में रहने लायक नहीं है।

मीनू प्रियंका को बहुत पसंद करती थी, प्रियंका सेक्टर के मंदिर में अपने सुरीले कंठ से भजन गाती, सुंदरकांड का पाठ करती तो कितने ही उसके मुरीद थे। मीनू ने प्रियंका को फोन मिलाया तो सारे हाल-चाल मालूम हुए।

ज्ञात हुआ कि सक्सैना साहब झाड़ू-पोंछा करने में फिसल गए। मिसेज सक्सैना उठाने आईं तो वह भी फिसल गईं। सुबह के दस बजे थे। किसी भी प्रकार वे लोग उठ नहीं पा रहे थे। किसी प्रकार मिसेज सक्सेना खिसक-खिसककर फोन तक पहुँचीं, अपने भतीजे को फोन मिलाया, परंतु उन्होंने हाथ झाड़ दिए। चौधरी साहब को फोन किया, वह भी असमर्थता जताते रहे। परंतु उन्होंने प्रियंका एवं उसके पति को भेज दिया। उन्होंने आकर एक कमरे की खिड़की का शीशा तोड़ा अंदर घुसे, उन्हें एंबुलेंस बुलाकर अस्पताल ले गए।

और फिर सक्सैना साहब से पूछकर उनकी भतीजियों को फोन मिलाया। दिल्ली से दोनों भतीजियाँ आ गईं, एक मेरठ में थी, वह भी आ गई। आगरा में छोटीवाली का नर्सिंग होम था, वह और उसके पति दोनों डॉक्टर थे। वह आई और अपने साथ आगरा ले गई।

अपने ताऊ-ताई का भरपूर इलाज किया। मिसेज सक्सैना की छोटी देवरानी उसी के पास रहती थी। देवर की तो मृत्यु हो गई थी। जिस देवरानी को वह हीन समझती थीं, वही तन-मन से उन दोनों की सेवा कर रही थी। कहीं अस्पतालों में जगह नहीं थी, वह तो आगरा आकर अपने को धन्य समझ रहे थे।

सक्सैना साहब की कूल्हे की हड्डी टूटी थी और मिसेज सक्सैना की कंधे की हड्डी। दोनों को कष्ट बहुत था। परंतु जिन बेटियों को वह कुछ नहीं समझती थीं, वही इस मुश्किल घड़ी में मसीहा बन बैठीं। उनके पाँच-पाँच सपूत, होनहार बहुएँ और नौ-नौ पोते कोई काम नहीं आए। फोन पर तो बीमारी और कष्ट दूर नहीं हो सकते थे। समय गुजरता गया, छह माह बीत गए।

कोविड समाप्त हो चुका था। दोनों के वैक्सीन लग गई थी। मिसेज सक्सैना का फोन आ जाता था, बहुत प्रसन्न थीं। बता रही थीं कि वी.आई.पी. ट्रीटमेंट चल रहा है, देवर की चारों बेटियाँ, एक देवरानी सेवा-शुश्रूषा में लगी रहती हैं। बीच-बीच में घर जाकर साफ-सफाई भी करवा रही हैं।"

उनकी देवरानी व उनकी बेटियों ने साफ कह दिया कि जब तक रामसिंह नहीं आ जाएगा। वह उन दोनों को नोएडा नहीं जाने देंगी।

अमरीका वगैरह से लोग-बाग आ-जा रहे थे। वह सोचतीं कि शायद कोई तो उन्हें देखने आएगा और उन्हें अपने साथ ले जाएगा। परंतु बच्चों के हिसाब से इंडिया आना-जाना खतरे से खाली नहीं है। वह दोनों मियाँ-बीबी अकेले में बैठे सोचते रहते कि पुत्रवती कौन है? सुयोग्य बेटों की माँ या होनहार बेटियों की माँ?

आज मिसेज सक्सैना की देवरानी की बेटी ने उन दोनों को सोने के सिंहासन पर बैठा रखा था। इसका दावा तो उनके पुत्र किया करते थे। आज वह यह सोचने पर बाध्य हो गई कि पुत्रियाँ पुत्रों से किसी तरह भी कमतर नहीं हैं। पुत्रियों की माँ भी 'पुत्रवती' हैं।

इ-११५, सेक्टर-५२
नोएडा-२०१३०१
दूरभाष : ८०७६३३०७४५

कर्तव्यपरायण उत्कलमणि गोपबंधु

• चक्रधर त्रिपाठी

गोपबंधु देशप्राण थे। वे देश की जनता के लिए ही जीवित रहे, इसमें दो मत नहीं है। वे ओडिशा में एक नए युग के प्रवर्तक होने के साथ-साथ एक खास परंपरा के प्रतीक-स्वरूप थे। बचपन से ही वे अच्छे वक्ता थे। शिक्षक तथा साधारण वर्ग के लोग उनकी युवा काव्य-प्रतिभा से मुग्ध और प्रभावित रहते थे। वे अपने कॉलेज की पढ़ाई के दौरान लोकसेवा संगठन तैयार कर उसमें कर्मनिष्ठ रहते थे। वे साहसी और स्वाधीनता के सिपाही भी थे। ओडिशा में बाढ़ और सूखा के दौरान उनकी तत्परता, सक्रियता, निष्ठा देशवासियों का ध्यान आकृष्ट करती थी। वे अपने कॉलेज के दिनों से देश में नए राष्ट्रीय आदर्श और दृष्टि लेकर नए शिक्षा संस्थान तैयार करना चाहते थे। प्रचारक अनंत मिश्र, आचार्य हरिहर दास और पंडित नीलकंठ दास सर्वप्रथम उनसे दीक्षित हुए थे। इसके पश्चात् सिर्फ ओडिशा में ही नहीं, पूरे देश में पहला वन विद्यालय पुरी के निकटवर्ती स्थान सत्यवादी में स्थापित हुआ।

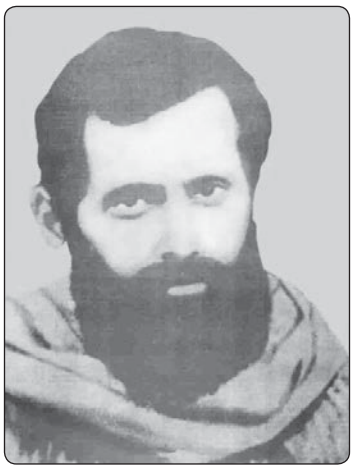

उत्कलमणि गोपबंधु

बाढ़ और अकाल के संकट के समय गोपबंधु प्रेरणा-पुरुष बन जाते थे। एक बार ज्वर ग्रस्त रहने पर भी उन्होंने केंद्रापाड़ा, जाजपुर जैसे बाढ़ प्रभावित क्षेत्रों में अपने सहयोगियों के साथ राहत की सामग्री वितरण करने और पीड़ितों को संकट से निकालने का कार्य किया था।

ओड़िया साहित्य में गोपबंधु नए युग के प्रतीक पुरुष थे। सन् १९१३ में 'सत्यवादी' नाम से एक साहित्यिक पत्रिका उनके संपादन में निकली थी। सत्यवादी विद्यालय, राष्ट्रीय विद्यालय बनने से पहले 'समाज' समाचार-पत्र में उसके नाना विषयक साहित्य-ग्रंथ प्रकाशित हुए थे। अभी ओड़िया साहित्य में सत्यवादी अभियान सर्वत्र सुविदित है। इस प्रकार विभिन्न रूपों में गोपबंधु ने ओड़िया साहित्य और भाषा के पथ प्रदर्शक के रूप में भी सराहनीय कार्य किया।

अगर हम राजनीति की बात करें तो ओडिशा में गोपबंधु के समय कांग्रेस नहीं थी। ओड़िशा की राजनीति में मधुसूदन दास उत्कल सम्मेलनी आंदोलन छेड़ चुके थे। सन् १९३० में गोपबंधु पूरे मनोयोग से उससे जुड़े। लेकिन इससे उनका राष्ट्रीय चरित्र कभी भी मलिन नहीं हुआ। राष्ट्रीय कांग्रेस महासभा के प्रति उनकी भक्ति अटूट थी। उत्कल सम्मेलन जैसे संस्थान में भाषाई आधार पर प्रदेश गठन के लिए तत्पर रहने पर भी वे इसे कभी भी उद्देश्य नहीं मानते थे, वे वस्तुतः राष्ट्रीय चरित्र का ही इसे एक अंग मानते थे और उसी हिसाब से सन् १९१७ में अखिल भारतीय राष्ट्रीय सभा में भाग लिया था। गांधीजी द्वारा चलाए गए सन् १९२० के आंदोलन में उन्होंने पूरे मनोयोग से भाग लिया था। सन् १९२४ में हजारीबाग जेल से छूटकर गोपबंधु कटक आए और प्रादेशिक कांग्रेस मेला में योगदान किया। उस मेले में कोलकाता के सर प्रफुल्ल चंद्र राय अध्यक्ष थे। गोपबंधु को देखने मात्र से 'उत्कलमणि' बोलकर उन्हें संबोधित किया था, तबसे गोपबंधु दास 'उत्कलमणि' के रूप में प्रख्यात हो गए। स्वतंत्र ओड़िशा प्रदेश गठन में उत्कल सम्मेलनी के संस्थापक मधुसूदन दास की भूमिका महत्त्वपूर्ण रही। गोपबंधु इस प्रदेश गठन के लक्ष्य से जुड़े।

गोपबंधु के वक्तव्य में वाग्मिता रहने के साथ-साथ सरसता भी रहती थी। इसलिए वे काफी लोकप्रिय बन गए। गोपबंधु ने ही ठीक से समझा था कि भाषा और साहित्य के बिना किसी जाति का अथवा राष्ट्र का विकास संभव नहीं है। एक बार वे रोते हुए बोले थे कि खरसुआं (आज यह बिहार प्रांत में है) से ओड़िया भाषा को लुप्त कर दिया गया। पंडित गोपबंधु कांग्रेस को ओडिशा लाए थे। इसलिए उन्हें ओडिशा कांग्रेस का भगीरथ माना जाता है। पर वे अधिक दिनों तक प्रदेश अध्यक्ष के पद पर नहीं रह सके। कुछ उप नेताओं के द्वारा बार-बार असहयोग और साजिश करते रहने के कारण वे उदास रहते हुए कांग्रेस से दूरी बना ली और कटक छोड़कर सत्यवादी चल दिए। जनसेवा, राजनीति, समाजसेवा, पत्रकारिता, वकालत, स्वतंत्र प्रदेश गठन, शिक्षा, साहित्य सेवा, भाषा संरक्षण आदि जनजीवन के विविध क्षेत्रों में उन्होंने काम करना उचित समझा। उनमें एक मधुर और सुदृढ़ व्यक्तित्व ही नहीं था, बल्कि उसमें चरित्र गठन के साथ-साथ भविष्य की साधना और बलवती देशसेवा का भाव भी था। पंडित गोपबंधु ने सत्याग्रह आंदोलन में सक्रिय रहते हुए पूरे ओडिशा का भ्रमण किया। ३१ मार्च, १९२२ को गोपबंधु को गिरफ्तार किया गया। जेल से निकलने के बाद गोपबंधु टायफाइड बुखार से पीड़ित होकर काफी कमजोर हो गए थे। अचानक कोलकाता से खबर आई कि

ओडिशा का कुली समाज दिन-रात मेहनत करने पर भी उसे भरपेट भोजन नहीं मिल पा रहा है। इस खबर को सुनते ही गोपबंधु की आँखों में आँसू की धारा प्रवाहित होने लगी। उसके बाद वे कलकत्ते की ओर चल पड़े। डॉक्टरों के रोकने पर भी उन्होंने डॉक्टरों की बात नहीं सुनी। वे कोलकाता चले गए और वहाँ के श्रमिकों की समस्याओं को सुलझाते हुए उसी महीने ११ तारीख को सत्यवादी लौट आए। उस समय भी उन्हें प्रबल ज्वर था। सत्यवादी की एक छोटी-सी कुटिया में वे रहते थे। उन्हें बुखार इतना तेज हो गया था कि बिस्तर से खाट के नीचे उतरना उनके लिए संभव नहीं था। दोपहर में उनकी तबीयत खराब होती चली गई। गोपबंधु का शरीर ठंडा पड़ने लगा, हाथ-पैर ठंडे हो गए, मुँह से बोलना संभव नहीं था। अपने निकट उपस्थित बंधु को इशारे से ईश्वर की प्रार्थना करने का निर्देश दिया। लोगों ने पूरी निष्ठा से प्रार्थना की। भगवान् के उद्देश्य दोनों हाथ जोड़कर प्रार्थना करते हुए चिरनिद्रा में वे सो गए। १७ जून, १९२८ को वे हमेशा के लिए चले गए। उनकी मृत्यु से उड़ीसा तथा राष्ट्र जीवन से एक उज्ज्वल नक्षत्र हमेशा के लिए अस्त हो गया।

गोपबंधु के महाप्रयाण पर लाला लाजपत राय, दीनबंधु सी.एफ. एंड्रूज, नेताजी सुभाष चंद्र बोस के अतिरिक्त मद्रास के 'द हिंदू', दिल्ली से 'हिंदुस्तान टाइम्स', लाहौर से 'द ट्रिब्यून', पुणे से 'मराठा', पटना से 'सर्च लाइट', ब्रह्मपुर से 'ईस्ट कोस्ट', कोलकाता से 'स्टेट्समैन' जैसे समाचार-पत्रों में उनके प्रति श्रद्धांजलि व्यक्त की गई। बीपी फिल्म डीपी पर 'द टिप्स' समाचार-पत्र में लाला लाजपत राय ने लिखा कि देश में सादा जीवन जीनेवालों में गांधीजी के बाद उत्कलमणि का नाम लिया जाता है।

गोपबंधु के महाप्रयाण पर लाला लाजपत राय, दीनबंधु सी.एफ. एंड्रूज, नेताजी सुभाष चंद्र बोस के अतिरिक्त मद्रास के 'द हिंदू', दिल्ली से 'हिंदुस्तान टाइम्स', लाहौर से 'द ट्रिब्यून', पुणे से 'मराठा', पटना से 'सर्च लाइट', ब्रह्मपुर से 'ईस्ट कोस्ट', कोलकाता से 'स्टेट्समैन' जैसे समाचार-पत्रों में उनके प्रति श्रद्धांजलि व्यक्त की गई। बीपी फिल्म डीपी पर 'द टिप्स' समाचार-पत्र में लाला लाजपत राय ने लिखा कि देश में सादा जीवन जीनेवालों में गांधीजी के बाद उत्कलमणि का नाम लिया जाता है। गोपबंधु के चारित्रिक वैशिष्ट्य के संबंध में अपने विचार प्रस्तुत करते हुए यह कहते हैं कि 'अपनी समस्त जायदाद, जीवन की सारी पूँजी, विद्या, शक्ति, सामर्थ्य और यहाँ तक कि अपनी आत्मा को भी जनता को सौंप दिया था। वे जनता को जो उपदेश देते थे, स्वयं उसे पहले जीते थे। वे ओडिशा के बेताज बादशाह थे। हमेशा वे जनता के प्रति समर्पित होकर देश के लिए लड़ना चाहते थे, ऐसे व्यक्ति के निधन से देश सचमुच दरिद्र हो गया और 'लोक सेवक मंडल' उनकी सेवाओं से वंचित रह गया।"

दीनबंधु सी.एफ. एंड्रूज ने अपनी श्रद्धांजलि में यह कहा कि ओडिशा से एक बार बिहार छात्र सम्मेलन में भाग लेने के लिए गोपबंधु ओडिशा से एक छात्र दल लेकर पहुँचे थे, जिससे सम्मेलन का महत्त्व काफी बढ़ गया था। वे 'समाज' समाचार-पत्र चलाते थे; इसलिए उन्हें नित्य कटक जैसे शहर में रहना पड़ता था; किंतु उनका हृदय हमेशा गाँव के लोगों में बिखरा हुआ रहता था। वे स्वयं एक ग्रामीण की भाँति जीते थे। वैसी ही वेशभूषा धारण करते थे। तनिक भी आडंबर नहीं था। ईश्वर के प्रति वे सरल और प्रगाढ़ भक्ति रखते थे।

नेताजी सुभाष चंद्र बोस ने गोपबंधु की मृत्यु का समाचार पाकर जो वार्त्ता भेजी थी, उसका संक्षिप्त अंश इस प्रकार है—'पंडित गोपबंधु दास ओडिशा में राष्ट्रीय आंदोलन के जनक के रूप में जाने जाते हैं। यद्यपि मिस्टर मधुसूदन दास के समय से ओडिशा में जन-जागरण देखने को मिलता था, पर मधुसूदन पाश्चात्य विचारधारा से काफी प्रभावित थे। दूसरी ओर पंडित गोपबंधु दास अपने दृष्टिकोण और चिंतन में पूरी तरह भारतीय थे। सादा जीवन और उच्च चिंतन उनके जीवन का व्रत था। उन्होंने अपना अधिकांश समय साक्षी गोपाल स्थित तीर्थक्षेत्र में अपने राज्य के गरीब श्रेणी के लोगों के बीच रहकर व्यतीत किया था। उनके जीवन में आडंबर नहीं था। दीन-दरिद्र लोगों की सेवा उनका व्रत था। वहाँ पर उन्होंने एक स्कूल आरंभ किया, असहयोग आंदोलन के बहुत पहले से राज्यवासियों की सहायता से यह स्कूल स्थापित हुआ। यह स्कूल राष्ट्रीय रीति से परिचालित होता था और राष्ट्रीय विचारधारा और कार्यकलाप का प्राण केंद्र था। पंडित गोपबंधु के साहस और त्याग के परिणामस्वरूप ओडिशा के युवा समाज में त्याग और निर्भयता का आदर्श पैदा हुआ। राष्ट्रीय आंदोलन और सेवा के माध्यम से उन्होंने ओडिशा की उन्नति को अपना लक्ष्य बनाया था। एकांत में रहते हुए कार्य करना और सेवा करना उन्हें पसंद था। यशोकांक्षा से वे दूर ही रहते थे, राज्य जब अकाल और बाढ़ का शिकार होता था, उस समय वे राष्ट्रीय कार्यकर्ताओं में, राहत कर्मियों में और सेवादलों में अग्रगामी रहते थे।' मद्रास के 'हिंदु समाचार-पत्र ने लिखा कि महात्मा गोपबंधु के तिरोधान से ओडिशा ने एक अतुलनीय कर्मी और मानव प्रेमी को तथा इस देश ने एक सच्चे देशप्रेमी को खो दिया है। दिल्ली से प्रकाशित 'हिंदुस्तान टाइम्स' में लिखा गया कि राष्ट्र निर्माण के कार्य में गोपबंधु बिना थके अनवरत कार्य करते थे। अपनी छोटी-सी उम्र में ओडिशा प्रदेश के अवहेलित पीड़ित, पद-दलित वर्ग के विकास के लिए उन्होंने बहुत कुछ किया जिससे वे जनसेवक तथा जनबंधु के रूप में स्थापित हो गए। पुणे के अखबार मराठा में श्रद्धांजलि की शब्दावली इस प्रकार थी—सत्यवादी समाज के निर्माता बिहार-ओडिशा की विधानसभा के सदस्य के रूप में तथा असहयोग आंदोलन के नेता के रूप में वे अपने प्रदेश की जनता में तथा भारत के शेष क्षेत्रों में देश के अन्यतम स्वदेशप्रेमी तथा त्याग वीर संतान के रूप में जाने जाते थे। उनके निधन से बिहार और ओडिशा ने अपने एक सर्वाधिक प्रभावशाली और जनप्रिय नेता को खो दिया। पटना के 'सर्चलाइट' समाचार-पत्र में लिखा गया कि गोपबंधु

ओडिशा में त्याग और देशभक्ति के प्राणवंत प्रतीक थे। ब्रह्मपुर के 'ईस्ट कोस्ट' अखबार में बताया गया कि ओडिशा ने गोपबंधु के निधन से एक राष्ट्रीय नेता को खो दिया। अपनी छात्र-अवस्था में गोपबंधु ने कोलकाता विश्वविद्यालय की कुछ विसंगतिपूर्ण गतिविधियों का विरोध संगठित होकर किया और उस संगठन का नाम 'कर्तव्य बोधिनी समिति' रखा। मूलत: ओड़िया भाषा और संस्कृति के संदर्भ में उन्होंने आवाज उठाई थी। यह 'कर्तव्य बोधिनी समिति' धीरे-धीरे विद्यालय और महाविद्यालय के स्तर तक पहुँच गई। गोपबंधु ने कई बार स्वयं छात्र-छात्राओं को इसमें शपथ दिलाई थी। इसमें छात्रों के अतिरिक्त कुछ अध्यापक भी आग्रह के साथ शामिल हुए थे। कर्तव्य बोधिनी समिति का कार्य क्षेत्र धीरे-धीरे बढ़ता गया और संकटग्रस्त जनता की सेवा करना, गरीब और निराश्रित लोगों की सहायता करना तथा विपन्न लोगों में राहत की सामग्री पहुँचाना आदि कार्य इसके अंतर्गत आ गए।

सच्ची सेवा ही गोपबंधु की मूल प्रवृत्ति थी और उत्तम चिंतन तथा सत्कर्म उनके जीवन का मंत्र था। सोच में, ध्यान में और कर्म में सेवा ही उनका एकमात्र मंत्र जाप था।

गोपबंधु ने बहुत से संस्थान बनाकर अनेक रचनात्मक कार्य किए थे। वे भगीरथ बनकर ओडिशा में कांग्रेस को लाए और इस दल के प्रथम प्रदेश अध्यक्ष बने थे। समाज सेवा और समाज संस्कार करनेवाली संस्थाएँ उन्होंने बनाई थीं। 'सत्यवादी' पत्रिका का प्रारंभ कर ओड़िया साहित्य के क्षेत्र में नवजागरण लाए थे। वस्तुत: वे ओड़िया पत्रकारिता के जनक थे। सत्यवादी वन विद्यालय और सत्यवादी विहार की स्थापना कर शिक्षा के क्षेत्र में उन्होंने क्रांति ला दी थी। संकटग्रस्त जनता की सेवा, स्वाधीनता आंदोलन, स्वतंत्र ओडिशा प्रदेश-गठन, गांधी विचार का संप्रेषण, एक आत्मनिर्भर सशक्त और समृद्ध ओडिशा के गठन का उन्होंने प्रयास किया था। उत्कल के नारी-समाज, कन्या वर्ग, युवा वर्ग, कृषक और मजदूर सब की उन्नति के लिए उन्होंने प्रयास किया था। बाढ़ से स्थायी रूप से मुक्ति मिले इसका प्रयास उन्होंने किया था। दैनिक समाचार-पत्र 'समाज' का प्रसारण भी शुरू किया। देश के प्रति लोगों में कर्तव्य-बोध की भावना जगाई। जातिभेद, कुसंस्कार और सांप्रदायिक सोच के खिलाफ एक शोषण-मुक्त समाज-गठन का सपना गोपबंधु ने देखा था। सामंतवाद और राजतंत्र का अंत करते हुए एक स्वाधीन आत्मनिर्भर युक्त राष्ट्र व्यवस्था में वे विश्वास रखते थे। सन् १९०९ में उन्होंने वन विद्यालय की, सन् १९२० में ओडिशा कांग्रेस की, सन् १९२५ में दरिद्रनारायण सेवा संघ की, सन् १९२६ में लोकसेवक मंडल की विशेष शाखा की, सन् १९२७ में ओडिशा बाढ़ सहायता समिति की, सन् १९२७ में सत्यवादी प्रौढ़ शिक्षा केंद्र की स्थापना की थी।

गोपबंधु ने ओडिशा में राष्ट्रीय जीवन गठन के लिए और शिक्षा विकास के उद्देश्य से जगन्नाथपुरी के निकटस्थ स्थान पर सन् १९०९ में सत्यवादी वन विद्यालय की स्थापना मनुष्य-निर्माण-कारखाने के रूप में किया था। इस वन विद्यालय रूपी कारखाने में देश के विभिन्न स्थानों से प्रख्यात लोगों का आगमन होता था। इनमें बिहार-ओडिशा के लाट सर एडवर्ड गेट, सर कृष्ण गोविंद गुप्त, सर देव प्रसाद सर्वाधिकारी, सर आशुतोष मुखर्जी, सी.एफ. एंड्रूज, मधुसूदन दास, महात्मा गांधी, फकीर मोहन सेनापति आदि प्रमुख हैं। उक्त विद्यालय के छात्रों में अनुशासनबोध और पेड़ के नीचे मुक्त परिवेश में शिक्षकों के आदर्शोन्मुख शिक्षा दान से प्रभावित होकर इसे बहुतों ने विश्वविख्यात नालंदा विश्वविद्यालय के अनुरूप बताकर प्रशंसा की थी। यह किसी भी दृष्टि से शांतिनिकेतन से कमतर नहीं था—ऐसा तत्कालीन शिक्षाविदों ने बताया।

जब नेताजी सुभाष चंद्र बोस बर्मा (म्याँमार) के मांडले जेल में थे, उस समय ओडिशा के अनन्य जननायक पंडित गोपबंधु दास को अंग्रेजी में उन्होंने ऐतिहासिक गुरुत्व रखनेवाले तीन पत्र लिखे थे। इन पत्रों से दोनों महापुरुषों के बीच पलनेवाली श्रद्धा और सम्मान तथा संकटग्रस्त ओडिशा के प्रति दोनों की असीम ममता दिखाई पड़ती है। गांधीजी ने गोपबंधु के संबंध में कहा था कि उनमें मनुष्य के प्रति अनंत श्रद्धा और सम्मान था। उसी श्रद्धा और सम्मान के पुनर्जागरण के लिए हम गोपबंधु को स्मरण करते हैं। वे बोले थे, हम लोग सबसे पहले मनुष्य हैं, फिर भारतीय और अंत में ओड़िया। कोई किसी जाति का क्यों न हो, यह सर्वप्रथम मनुष्य है। ईश्वर की संतान है।

तत्कालीन अखंड ओडिशा प्रदेश के स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों में गोपबंधु दास का नाम सर्वोत्कृष्ट एवं सर्वोच्च स्थान रखता है। वे प्राक् उन्नीसवीं शती के महानायक थे। दुर्भाग्य से हम उनका मूल्यांकन नहीं कर पाए, न उनके द्वारा किए गए राष्ट्रोत्थान के कार्यों को समझ पाए। हम अपनी अल्पज्ञता एवं संकीर्णता के कारण उनके हृदय के विशाल भाव समुद्र और वैचारिक उत्कर्ष को समझने में असमर्थ रहे। जो कार्य स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हो जाना चाहिए था, वह पचहत्तर वर्ष बाद भी नहीं हो पाया है। उनके संपूर्ण वाङ्मय का प्रकाशन हिंदी-अंग्रेजी में हो जाना था, वह आज केवल एक प्रांतीय भाषा तक सीमित होकर रह गया अर्थात् एक आंचलिक भाषा के पिंजरे में ही उस राष्ट्रनायक को हमने कैद कर दिया। गोपबंधु राष्ट्रीय गौरव के प्रति समर्पित पुरोधा व्यक्तित्व थे। राष्ट्रीय स्वाभिमान की भावना और राष्ट्रीय चेतना का भाव उनमें कूट-कूटकर भरा हुआ था। एक महान् उभरते राष्ट्रनायक का असमय चला जाना दुर्भाग्यपूर्ण था। जब हम गोपबंधु के व्यक्तित्व का आकलन करते हैं, तब हमें उनके व्यक्तित्व में अब्राहम लिंकन की छवि दिखाई देती है—

'मिशु मोर देह ए देश माटिरे।
देशबासी चालि जाआंतु पिठिरे।
देश र स्वराज्य पथे येते गाड़ पुरु ताहिं पड़ि मोर मांस-हाड़।'

अर्थात् देश की स्वराज्य-प्राप्ति के मार्ग पर जितने भी गड्ढे हों, वे मेरे शरीर के मांस और अस्थि से भर जाएँ। इस प्रकार मेरी देह इस देश की माटी में मिल जाए और मेरे देशवासी उस महान् उद्देश्य के लिए मेरी पीठ पर चलकर जाएँ।

ओडिशा केंद्रीय विश्वविद्यालय
सनाबेड़ा, कोरापुट-७६३००५
दूरभाष : ९४३४२१०१५५

अँजुरी भर गीत

● चेतन आनंद

गीत

जैसे बिन उन्वान कहानी आधी होती है।
वैसे अनुभवहीन जवानी आधी होती है॥

बिना चंद्रमा रात अधूरी,
तारों की बारात अधूरी,
सूरज के बिन दिवस अधूरा,
सूरज हो तो तमस अधूरा,
राह नहीं तो सफर अधूरा,
बिन मानव के नगर अधूरा,
साँस नहीं तो जीवन क्या है,
बिना चेहरे दरपन क्या है,
जैसे जल के बिना रवानी आधी होती है।
वैसे अनुभवहीन जवानी आधी होती है॥

बिन प्रियतम के प्रीत अधूरी,
संकल्पों बिन रीत अधूरी,
शब्दों के बिन भाव अधूरे,
बिन साजन के चाव अधूरे,
नींद नहीं तो सपन अधूरे,
वाक्य नहीं तो कथन अधूरे,
आँसू बिन आँखें आधी हैं,
खुशियों की पाँखें आधी हैं,
बिना धूप के शाम सुहानी आधी होती है।
वैसे अनुभवहीन जवानी आधी होती है॥

बिना विरह के प्यार अधूरा,
प्यार बिना संसार अधूरा,
बिन दु:ख के सुख पूरा कैसे,
सुख के बिन दुख पूरा कैसे,
प्रीत नहीं तो याद अधूरी,
इसकी हर बुनियाद अधूरी,
कसक नहीं तो प्रीत अधूरी,
हार नहीं तो जीत अधूरी,
लिखे बिना ज्यूँ बात जबानी आधी होती है।
वैसे अनुभवहीन जवानी आधी होती है॥

साँस और बुलबुला

बोली ये साँस इकदिन,
पानी के बुलबुले से,
अंदर घुटे-घुटे हम,
बाहर खुले-खुले से।

तुम भी हो पल दो पल के,
हम भी हैं पल दो पल के,
फिर लौटते नहीं हैं,
घर से कभी निकलके,
सब तौलते हैं हमको,
पर, हम हैं अंतुले से,
बोली ये साँस इकदिन,
पानी के बुलबुले से।

दोनों जुदा-जुदा हैं,
लेकिन है एक कुनबा,
जीवन सभी को देना,
रखते हैं हम ये जज्बा,
आकार हो अलग, पर
हम हैं घुले-घुले से,
बोली ये साँस इकदिन,
पानी के बुलबुले से।

कोई नहीं समझता,
क्या पीर है हमारी,
जाना है किसने, कैसी
तासीर है हमारी,
हम हैं तटस्थ लेकिन
दिखते हिले-डुले से,
बोली ये साँस इकदिन,
पानी के बुलबुले से।

भारत देश

मैं नहीं समुंदर, मत समझो,
मैं नहीं हिमालय के जैसा,

सुपरिचित कवि। देश की विभिन्न पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित। संप्रति सहायक निदेशक, मेवाड़ ग्रुप ऑफ इंस्टीट्यूशंस। हिंदी साहित्य साधना सम्मान।

मैं नहीं लोभ का अनुयायी,
मैं नहीं स्वर्ण, रुपया-पैसा,
पाषाणों के दिल से निकली,
अविरल बहती जलधार हूँ मैं,
मैं ऊँचाई का परिचायक,
गहराई का आधार हूँ मैं।

नफरत की तलवारों से यूँ,
मुझको कितना तुम काटोगे,
मैं कट-कटकर जुड़ जाऊँगा,
कितने हिस्सों में बाँटोगे
मैं नहीं कहीं घटनेवाला,
मैं नहीं कहीं रुकनेवाला,
मैं जहाँ-जहाँ मुड़ जाऊँगा,
मेरा पथ खुद बन जाएगा,
संघर्ष सहेगा अंतर तो,
यह अधरों पर मुसकाएगा,
मैं नवजीवन का अभिनंदन,
युग-युग का नया विचार हूँ मैं,
मैं ऊँचाई का परिचायक,
गहराई का आधार हूँ मैं।

मैं मुक्त गगन का पंछी हूँ,
कोई रोके न प्रभाव मुझे,
मैं प्यार-प्यार में मनता हूँ,

भाता ही नहीं दबाव मुझे,
मैं नहीं क्षणिक-सी दुर्घटना,
मैं नहीं जानता हूँ बँटना,
मैं सुखद पलों का संकेतक,
मैं खुशियोंवाला मौसम हूँ,
मैं वीणा की झंकार नई,
मैं नई नवेली सरगम हूँ,
मैं नई सदी का इकतारा,
नवभाव-सुभाव सितार हूँ मैं,
मैं ऊँचाई का परिचायक,
गहराई का आधार हूँ मैं।

मुझको कब तक ठुकराओगे,
यूँ मन ही मन मुसकाओगे,
मैं गीत नए विश्वासों का,
तुम जिसे हमेशा गाओगे,
मैं ताक़त हूँ चट्टानों की,
मैं अंगारा हूँ राहों का,
दिल से आँखों तक जो टहले,
मैं संवाहक उन चाहों का,
मैं झर-झर झरनों का नर्तन,
मैं सपना हूँ नितदिन नूतन,
मैं कर्तव्यों की छाया हूँ,
दिनकर जैसा विस्तार हूँ मैं।
मैं ऊँचाई का परिचायक,
गहराई का आधार हूँ मैं।

फ्लैट नं.-जी-५०, ई-ब्लॉक,
गौड़ होम्स, गोविंदपुरम्,
गाजियाबाद-२०१०१३ (उ.प्र.)
दूरभाष : ०८५८६०५३९५६

बापजी की दुकान

• विजय कुमार

छात्र जीवन से ही लेखन-संपादन एवं सामाजिक कार्यों में रुचि। सहायक संपादक 'राष्ट्रधर्म' (मासिक) लखनऊ। छोटी-बड़ी ९५ पुस्तकें प्रकाशित। ६०० से अधिक लेख, व्यंग्य, निबंध, कहानी आदि अनेक पत्र-पत्रिकाओं तथा अंतरजाल पर प्रकाशित। साहित्य की अनेक विधाओं में नियमित लेखन।

यों तो हर गाँव और नगर में चौक होते हैं; पर लखनऊ के चौक की बात ही कुछ और है। यह केवल एक चौराहा नहीं, बल्कि २०० साल पुराना बाजार और घनी आबादी वाला क्षेत्र भी है, इसलिए इसे 'पुराना शहर' भी कहते हैं। लखनऊ के प्रसिद्ध चिकन की कढ़ाईवाले कपड़े यहाँ सबसे अच्छे और सस्ते मिलते हैं।

बात लगभग दस साल पुरानी है। मैं जिस बैंक में काम करता हूँ, उसने मुझे लखनऊ के चौक बाजार स्थित अपनी शाखा के निरीक्षण की जिम्मेदारी दी। अत: मैंने रेलगाड़ी से आरक्षण कराया और लखनऊ पहुँच गया। मेरे आने की सूचना वहाँ थी, इसलिए एक बैंककर्मी मुझे लेने आए हुए थे। बाहर निकलकर उन्होंने एक ऑटो ले लिया। चौक बाजार में पहुँचकर ऑटोवाले ने उनसे पूछा, "बाबूजी, कहाँ चलना है?"

"बापजी की दुकान के सामने रोक देना।"

यह नाम सुनकर मैं चौंका। कपड़े, राशन या किताबों आदि की दुकान का नाम तो मैंने सुना था; पर 'बापजी की दुकान' जैसा नाम पहली बार ही मेरे कान में पड़ा था; लेकिन उस समय कुछ पूछना मैंने उचित नहीं समझा।

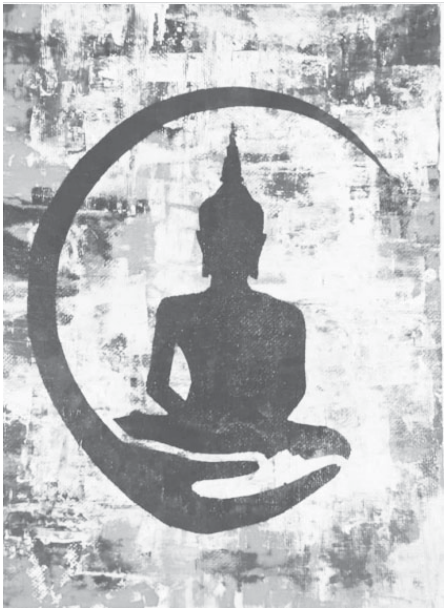

ऑटो से उतरकर मैंने देखा कि बैंक का भवन तो छोटा था; पर मुख्य बाजार में होने से उसका कारोबार काफी अच्छा था। बैंक का अपना अतिथिगृह भी था। वहीं मेरे ठहरने की व्यवस्था थी। बैंक के एक कर्मचारी महेश को मेरे साथ लगा दिया गया, जिससे मुझे कोई असुविधा न हो। सामान रखकर मैंने भोजन और विश्राम किया। शाम को बैंक के प्रबंधक आ गए। उनसे परिचय के बाद तय हुआ कि कल से निरीक्षण शुरू होगा।

शाम को मैं टहलने निकला। यह सारा क्षेत्र गोमती नदी के तट पर बसा है। महेश ने बताया कि लखनऊ का मूल नाम श्रीराम के छोटे भाई लक्ष्मणजी के नाम पर 'लक्ष्मणपुर' पड़ा। फिर वह लखनपुर होते हुए लखनऊ हो गया। अंग्रेजों के विरुद्ध १८५७ में हुए स्वाधीनता संग्राम में इस अवध क्षेत्र की बड़ी भूमिका रही। यद्यपि भोग-विलासी नवाब दिन भर शराब, शबाब और कबाब के साथ ही शतरंज और मुरगेबाजी में लगे रहते थे। नवाब वाजिदअली शाह भी राग और रंग का प्रेमी था; पर उसकी बेगम हजरत महल बहुत दिलेर थी। अवध के छोटे-छोटे राजा और जमींदार अपनी रियासतें बचाने के लिए जब अंग्रेजों से लड़ रहे थे, तब बेगम ने भी उन सबका पूरा साथ दिया। यद्यपि उस संघर्ष में उन्हें सफलता नहीं मिली। उन्हीं बेगम की स्मृति में लखनऊ का सबसे प्रमुख बाजार 'हजरतगंज' बना है।

घूमते हुए हम लोग गोमती के तट पर स्थित 'कुड़िया घाट' तक चले गए। वहाँ एक सुंदर मंदिर भी है, जहाँ सैकड़ों लोग एकत्र थे। बुजुर्ग टहलते हुए ताजी हवा खा रहे थे, तो बच्चे खेलकूद में मस्त थे। महेश ने बताया कि किसी समय यहाँ 'कौंडिन्य ऋषि' का आश्रम था। 'कुड़िया' उन्हीं के नाम का अपभ्रंश है।

अगले दिन भर मैं बैंक के निरीक्षण में व्यस्त रहा। शाम को हम फिर टहलने निकले। आज चर्चा 'बापजी की दुकान' की होने लगी। महेश ने बताया कि हमारे बैंक के सामने जो दुकान है, उसके मालिक हरिनाथजी को ही सब 'बापजी'

कहते हैं। वे बड़े समाजसेवी व्यक्ति हैं। हर वसंत पंचमी पर वे गरीब और अनाथ लड़कियों की शादी करवाते हैं। पिछले २० साल में उन्होंने ३०० से अधिक बेटियों को ससुराल भेजा है।

"शादी में तो बहुत खर्चा होता है। इतनी आमदनी है उनकी?" मैंने आश्चर्य से पूछा।

"यह सब वे समाज के सहयोग से करते हैं। हर साल १०-१२ लड़कियों की शादी तो होती ही है। उस दिन पुराने शहर का हर व्यापारी ही नहीं, रिक्शा और ताँगेवाले भी वहाँ जाकर कन्यादान के रूप में कुछ-न-कुछ देकर आता है। कई लोग तो अपनी उस दिन की पूरी कमाई इसी शुभ काम में दे देते हैं। 'बापजी' की इतनी साख है कि कोई उनके हिसाब-किताब पर उँगली नहीं उठा सकता।"

मेरी घरवाली बहुत समझदार थी। उसने कहा कि दूसरों को दोष देने से पहले अपने गिरेबान में भी तो झाँको। अब तो लड़के बड़े हो गए हैं। उन्होंने दुकान भी सँभाल ली है। सब बच्चों की शादियाँ भी हो चुकी हैं। तुम नाना भी बन चुके हो और दादा भी। फिर अब दुकान से क्यों चिपके हो; यदि तुम्हारे मन में गरीबों की बेटियों के लिए दर्द है, तो फिर आगे बढ़कर यह काम तुम ही क्यों नहीं करते?

"लेकिन शादी में तो और भी कई खर्चे होते हैं?"

"जी हाँ। बाजार में हर तरह के व्यापार की अलग-अलग संस्थाएँ हैं। होटलवाले खाने का प्रबंध कर देते हैं, तो कपड़ेवाले कपड़े का। ऐसे ही सर्राफ और फर्नीचरवाले हैं। बैंडवाले भी पैसे नहीं लेते। सबको लगता है कि उनकी अपनी बेटी की शादी हो रही है। सब धर्म और जातियों की लड़कियों की शादी बापजी कराते हैं। पूरे साल वे इसके प्रबंध के लिए घूमते रहते हैं।"

"तो फिर वे कारोबार कब करते हैं?"

"कारोबार तो उनके बच्चों ने सँभाल लिया है। बापजी जबसे इस सेवा में लगे हैं, तबसे उन्होंने दुकान जाना बंद कर दिया है। उनकी दुकान के ऊपर ही 'सीताराम सेवा समिति' का कार्यालय है। इसके माध्यम से ही शादियाँ होती हैं। वे शाम को वहीं मिलते हैं। आप मिलना चाहें, तो चलिए।"

"हाँ, जरूर।"

महेश मुझे समिति के कार्यालय में ले गया। बापजी के साथ कई लोग वहाँ बैठे थे। बापजी की आयु लगभग ८० वर्ष रही होगी। महेश ने मेरा परिचय कराया, तो बुजुर्ग होते हुए भी उन्होंने खड़े होकर मेरा स्वागत किया। मैं उनके काम को समझना चाहता था, इसलिए वहीं रुक गया। कुछ देर बाद उन्हें फुरसत मिली। मैंने उनसे पूछा कि इतने श्रेष्ठ काम की प्रेरणा उन्हें कैसे मिली? बापजी ने गहरी साँस ली और बताने लगे।

"लगभग २० साल पुरानी बात है। मैं दिनभर अपने कारोबार में व्यस्त रहता था। मेरे जीवन का लक्ष्य कारोबार को बढ़ाना ही था। मैं चाहता था कि मेरा काम बाजार में सबसे ऊपर हो। इस मेहनत से मुझे बहुत लाभ हुआ; लेकिन इस चक्कर में अपने पास-पड़ोस को मैं बिल्कुल भूल गया।

मेरी दुकान के पीछे एक धोबी बाबूराम रहता है। एक दिन सुबह मैं दुकान पर पहुँचा, तो वहाँ से रोने-धोने की आवाजें आ रही थीं। दुकान खोलने का समय था, इसलिए वहाँ जाने की इच्छा तो नहीं थी, पर पड़ोस की बात थी, इसलिए जाना पड़ा। मैं वहाँ गया, तो मेरी आँखें फट गईं। बाबूराम की तीनों लड़कियों ने एक साथ जहर खाकर आत्महत्या कर ली थी।

मैंने पूछा, तो पता लगा कि उन तीनों की आयु क्रमशः २८, २५ और २३ साल थी। गरीबी के कारण उनकी शादी नहीं हो पा रही थी। मोहल्ले या रिश्तेदारी में जब किसी लड़की की शादी होती, तो उनके दिल पर छुरियाँ चलती थीं; पर वे बेचारी क्या करतीं? इतने साल हो गए उन्हें यह सब देखते और सहते हुए। आखिर उनका धैर्य जवाब दे गया। कल बाबूराम और उसकी पत्नी अपने गाँव गए थे। उनके न होने का लाभ उठाकर तीनों ने जहर खा लिया।

लोगों ने बताया कि बड़ी लड़की ने कई बार अपने माता-पिता से कहा कि मेरी तो उमर निकल गई है; पर दोनों छोटी बहिनों का तो कुछ करो; पर असल समस्या तो गरीबी थी। एक बार सबसे छोटी का रिश्ता आया भी, पर उसने साफ कह दिया कि दोनों दीदियों से पहले वह शादी नहीं करेगी।

मुझे अपने ऊपर बड़ी ग्लानि हुई। मेरे पड़ोस में इतना गरीब परिवार रह रहा है और मुझे खबर तक नहीं। मैंने अपने बच्चों की शादी में लाखों रुपए खरचे थे। यदि मैं दस-बीस हजार रुपए खरचकर इनमें से किसी एक लड़की की शादी भी करा देता, तो मेरा क्या घट जाता? लेकिन मैं पैसे के पीछे इतना पागल हो गया कि आसपास में लोग कैसे रह रहे हैं, इसका कुछ पता ही नहीं।

इस खबर ने पूरे बाजार को झकझोर दिया। सब व्यापारियों ने मिलकर बाबूराम के लिए पचास हजार रुपए जमा किए; पर अब इससे क्या होना था? यही पैसा यदि पहले दिया होता, तो शायद किसी एक बेटी की शादी हो जाती। एक की होती, तो बाकी के लिए भी रास्ता खुलता। दिनभर मेरा मन दुकान पर नहीं लगा। मैं यही सोचता रहा कि पहले तो किसी एक की बेटी पूरे गाँव और बिरादरी की बेटी होती थी। इसलिए लड़की एक हो या चार, कुछ फरक नहीं पड़ता था; पर शहरीकरण, आधुनिक शिक्षा और महँगाई ने सबको इतना आत्मकेंद्रित बना दिया कि अपने परिवार और कारोबार से आगे किसी को कुछ दिखाई नहीं देता।

रात में घर पहुँचने पर भी मेरा मन उदास था। पत्नी ने पूछा तो मैंने सारी बात बताई। मुझे अपने बाजार और समाज के लोगों पर बड़ा गुस्सा आ रहा था। क्या इन गरीबों को जीने का हक नहीं है; कोई इनके लिए कुछ करता क्यों नहीं है?

मेरी घरवाली बहुत समझदार थी। उसने कहा कि दूसरों को दोष देने से पहले अपने गिरेबान में भी तो झाँको। अब तो लड़के बड़े हो गए हैं।

उन्होंने दुकान भी सँभाल ली है। सब बच्चों की शादियाँ भी हो चुकी हैं। तुम नाना भी बन चुके हो और दादा भी। फिर अब दुकान से क्यों चिपके हो; यदि तुम्हारे मन में गरीबों की बेटियों के लिए दर्द है, तो फिर आगे बढ़कर यह काम तुम ही क्यों नहीं करते?

पत्नी की बात मेरे दिल को लग गई। उसने ठीक ही कहा था कि लोग दूसरों को तो दोष देते हैं; पर अपनी ओर नहीं देखते। अगले कई दिन तक मैं इस विषय पर सोचता रहा। अंतत: मैंने तय कर लिया कि अब कारोबार से हाथ खींचकर इसी सेवा में लगना है। मेरे दो लड़के हैं। दोनों दुकान पर ही बैठते हैं। मैंने उनसे बात की। उन्होंने भी मुझे प्रोत्साहित किया। दो महीने बाद मेरी साठवीं सालगिरह थी। मैंने उस दिन घर पर एक यज्ञ किया। सब परिचित लोगों को बुलाया और सबके सामने घोषणा कर दी कि कारोबार से अलग होकर अब मैं समाज सेवा में लग रहा हूँ। मेरी कोशिश होगी कि कोई गरीब बेटी पैसे के अभाव में कुँवारी न रह जाए।

कुछ दिन बाद मैंने बाजार के लोगों की एक बैठक रखी। सबने मिलकर 'सीताराम सेवा समिति' का गठन किया और मुझे ही उसका अध्यक्ष बना दिया। तबसे हम इस काम में लगे हैं।"

"लेकिन आपको लोग 'बापजी' कैसे कहने लगे?"

इस पर वे जोर से हँसे, "हमारी समिति की ओर से जिस पहली बेटी का विवाह हुआ, वह गरीब तो थी ही, पर उसके जन्म के अगले ही दिन एक दुर्घटना में उसके पिताजी का निधन हो गया था। लोग उसे मनहूस समझते थे; पर हमारी समिति के प्रयास से उसका विवाह हो गया। जब पहली बार वह अपने पति के साथ यहाँ आई, तब उसने मुझे 'बापजी' कहा। बस तब से सब लोग मुझे बापजी ही कहने लगे।"

मैंने पूछा कि अब तक इस समिति के माध्यम से कितनी बेटियों के विवाह हुए हैं। इस पर बापजी ने सामने लगे बोर्ड की तरफ इशारा किया। वहाँ हर साल का ब्योरा लिखा हुआ था। पिछले २० साल में लगभग ३०० बेटियों के विवाह इस समिति के माध्यम से हुए हैं। अगले दिन शाम को मैं फिर उनके कार्यालय में आ बैठा। कुछ ही देर में एक व्यक्ति वहाँ आया। वह बापजी को नमस्ते कर जमीन पर बैठने लगा; लेकिन उन्होंने आग्रहपूर्वक उसे कुरसी पर बैठाया। फिर उनमें बात होने लगीं।

"बापजी, हमारी बिटिया २१ साल की हो गई है। हम कई साल से उसकी शादी करना चाहते हैं; पर···।"

"कोई बात नहीं। आप कहाँ रहते हो?"

"मेरा नाम दुर्गादास है बापजी। लक्कड़ मंडी में मेरा एक खोखा है। वहीं कुछ कपड़े सिल लेता हूँ।"

बापजी ने उसे एक फार्म दिया, "आप इसमें अपनी और बेटी की सारी जानकारी लिख दो। वसंत पंचमी पर हमारी संस्था की ओर से बेटियों की शादियाँ होंगी; पर अपनी जाति-बिरादरी और घर-परिवार देखकर बेटी का रिश्ता तय करना तुम्हारा काम है। जब यह हो जाए, तो हमें बताना। वसंत पंचमी से एक महीना पहले यदि आपकी पक्की सूचना हमारे पास आ गई, तो इस बार की सूची में आपका नाम भी लिख लिया जाएगा। वरना एक साल के लिए बात टल जाएगी।"

"जी, रिश्ता तो तय हो चुका है।"

"यह तो बहुत अच्छी बात है। आप फार्म में ये सब बातें लिख दो। सीतारामजी चाहेंगे, तो सब बहुत अच्छे से होगा।"

दुर्गादास के चेहरे से लग रहा था, मानो उसके सिर का कुछ बोझ हल्का हो गया है। उसने बापजी को प्रणाम किया और नीचे उतर गया।

मेरे पूछने पर बापजी ने बताया कि रिश्ता तय करने में हम कोई दखल नहीं देते। हमारा काम तो उसके बाद शुरू होता है। शादी में दोनों तरफ से ५० लोग शामिल होते हैं। सीतारामजी की कृपा से सब बहुत अच्छे से संपन्न हो जाता है। अगली वसंत पंचमी को समय निकालकर आप भी आइए और बच्चों को आशीर्वाद दीजिए।

मैं बापजी के इस सेवा कार्य से बहुत प्रभावित हुआ। मैंने चैकबुक निकाली और ५,१०० का एक चैक उन्हें दिया, "वसंत पंचमी तो जब आएगी, तब देखा जाएगा। फिलहाल तो आप मेरी ओर से यह छोटा सा योगदान स्वीकार करें।"

बापजी ने खड़े होकर बड़े आदर से मेरा चैक लिया और तुरंत ही उसकी रसीद बनाकर दे दी। उन्हें प्रणाम कर मैं वापस लौट आया।

अगले दिन बैंक का निरीक्षण पूरा हो गया। अत: मैंने रात की गाड़ी से वापसी का टिकट बनवा लिया। ऑटो में बैठते समय मैंने देखा, बापजी अपने सेवक का सहारा लेकर धीरे-धीरे 'सीताराम सेवा समिति' के कार्यालय से उतर रहे थे। ऑटोवाला बोला, "बाबूजी, इन जैसे भले लोगों के कारण ही यह दुनिया टिकी हुई है। वरना यह तो कब की नष्ट हो गई होती।"

मुझे लगा कि ऑटोवाला सचमुच ठीक ही कह रहा है।

सुदर्शन कुंज, सुमन नगर,
धर्मपुर, देहरादून-२४८००१ (उत्तराखंड)
दूरभाष : ९१४९३९८०७७

इस अंक की चित्रकार

पूजा महाजन

नवोदित चित्रकार। 'पूजालेख' नाम से व्यक्तिगत ब्लॉग। बच्चों के लिए कहानियाँ व प्रेरणात्मक लेख लिखने में रुचि। संप्रति साहित्य की अग्रणी पत्रिका 'प्रेम सुधा पहल' में संपादन कार्य। लेखन व संपादन कार्य में संलग्न।

संपर्क : ए-ब्लॉक, म.नं. २५७, टॉप फ्लोर
विकास पुरी, दिल्ली-११००१८
दूरभाष : ७९८२४९१८८४

कविताएँ

• प्रमिला दीक्षित

दो दशक से पत्रकारिता में सक्रिय प्रमिला दीक्षित कश्मीर से केदारनाथ तक अपराध से आतंकवाद तक दंगों की क्रूरता से दरियादिली का कहानी तक राजनीति से साहित्य की रवानी तक तथ्य तर्क और संवेदना के साथ हर ख़बर को हर विषय पर रिपोर्टिंग करती रही हैं। ब्लॉग, रेडियो, मॉडरेशन, कविता और लेख उनकी अभिव्यक्ति के माध्यम है।

ये कैसा सभ्य समाज?

पद, पैसे रुतबे के अहंकार में कूटो
गरीब गाड्र्स को तुम सरेबाजार कूटो
तुम्हारे पैसों से ही तो वो गरीब पलता है,
अपनी पूरी सभ्यता दिखा के कूटो

बच्चे तुम्हारे पूछें तो बोलो—
दो कौड़ी का इंसान है
सिखाओ दिखाओ बच्चों को अपने
कि पद-पैसा ही भगवान है।

लॉकडाउन जैसी नौबत जो आए
हाथ जोड़ के इनको घर से लाना
श्रमेव जयते मेहनत की जय
सोशल मीडिया पर ढोल बजाना

याद करो तुम,
घर पर जब दुबके पड़े थे
ये गार्ड हमारे ड्यूटी पे ही खड़े थे
तुम तक बीमारी न आने पाए
इसलिए ये अपनी जान पर
खेलकर लड़े थे

तुमसे कम तनख्वाह होगी
लेकिन अपने हिस्से की खाता है
कभी खुद से तुलना भी कर लेना
ज्यादा ईमानदारी से ड्यूटी निभाता है

ना ये गाड्र्स तुम्हारे गुलाम हैं,
ना इन श्रमजीवियों के तुम मालिक हो
हाथ उठाते शर्म नहीं आती
तुम एक नंबर के अहंकारी हो

सैनिक इन्हें भले ही ना समझो
श्रम का कुछ सम्मान करो
पढ़े-लिखे सभ्य समाज में रहते हो,
मानवीयता का यूँ ना अपमान करो।

कर्तव्यपथ

देश पर जो हुआ न्योछावर
वो ही सुभाष कहलाता है।
नेताजी की जहाँ निगाह ताकती
वह स्वयं कर्तव्यपथ हो जाता है

गुलामी से मुक्ति तो पा ली थी,
गुलाम सोच से मुक्ति बाकी थी,
बदल रहा है मेरा भारत
पुरानी बेड़ियाँ तोड़नी बाकी थी।

रेसकोर्स नहीं था साथियो
वो नाम हमपर चस्पा बाय फोर्स था
सड़क जहाँ जाकर है वो मिलती
उसे होना लोक कल्याण का सोर्स था।

अब देखो गणतंत्र ने स्वदेशी धुन है पकड़ी
स्व संस्कृति का अभिमान किया।
नौसेना के ध्वज ने देखो
वीर शिवाजी के शौर्य को प्रणाम किया

बजट हमारा हम तब सुनते थे
जब लंदन में सुबहो होती थी
शिक्षा नीति भी हमारी
विदेशी सपनों को ढोती थी।

अंडमान के द्वीपों को भी
हमने आजाद ही नाम दिया।
ये आत्मनिर्भर भारत है।
विश्व को पैगाम दिया

अब नीति भी हम
निर्णायक भी हम
नए भारत के
नायक भी हम
संकल्प की सिद्धि कैसे ना होगी
पंच प्राण के धारक भी हम
पंच प्राण के वाहक भी हम।

टी.वी-९ डिजिटल
५वीं मंजिल, जे.ए.एस.के. बिल्डिंग
सेक्टर-१२५
नोएडा-२०१३०१

कहानी

इनकलाब

● रत्ना श्रीवास्तव

कमरे में सन्नाटा छाया हुआ था। विश्वनाथजी को यकीन नहीं हो रहा था कि जिस गुड़िया जैसी बेटी को उन्होंने नाजों से पाला, आज वही उनकी मर्जी के खिलाफ अंतरजातीय विवाह करने की बात कह रही है। वह अपने प्यार-दुलार, पालन-पोषण, संस्कार, उसके फिजूल के नखरे उठाने की दुहाई देते रहे, लेकिन नेहा का साफ-साफ कहना था, "इसलिए तो पापा, मैं उसी लड़के से शादी करना चाहती हूँ, जो मुझे जानता है, आपकी तरह प्यार करता है, मेरे नखरे उठाता है, पापा प्लीज!"

विश्वनाथजी को अपने सीधे-सादे, आज्ञाकारी बेटे पर पूरा विश्वास था। नेहा तो बचपन से ही जिद्दी थी। वह किसी की न तो सुनती थी, न समझती थी। विश्वनाथजी ने आशाभरी नजरों से बेटे की तरफ देखा, शायद उनका बुद्धिमान और आज्ञाकारी बेटा नेहा को समाज की ऊँच-नीच समझा सके। लेकिन बेटे ने जब मुँह खोला तो विश्वनाथजी सकते में आ गए। बेटे का कहना था, "नेहा ठीक ही तो कह रही है, पापा। नेहा और अमर एक-दूसरे को प्यार करते हैं। वे दोनों एक-दूसरे की भावनाओं को समझते हैं, एक-दूसरे के लिए मान-सम्मान की भावना है तथा दोनों एक-दूसरे के लिए महत्त्वपूर्ण हैं। सबसे बड़ी बात दोनों एक-दूसरे की अच्छाइयों के साथ-साथ बुराइयों को भी स्वीकार करते हुए साथ रहने का फैसला ले रहे हैं। और यही उनके खुशहाल जीवन की मजबूत नींव का आधार है। दो अजनबी जब विवाह बंधन में बँधते हैं, तो उनकी आधी जिंदगी एक-दूसरे को समझने में ही लग जाती है। अगर विचार न मिले तो पूरी जिंदगी समझौता करते ही बीतती है। अगर धैर्य का अभाव हो फिर तो जिंदगी लड़ते-झगड़ते, एक-दूसरे को इग्नोर करते और अपमानित करते ही बीतती है, इस तरह वे खुश नहीं रह पाते।"

विश्वनाथजी का सिर घूमने लगा। वह अपनी पत्नी की तरफ मुखातिब होकर बोले, "देख रही हो अपनी औलादों को। हमने इनकी परवरिश में क्या कमी रखी, जो आज ये ऐसी बहकी-बहकी बातें कर रहे हैं। हमारी भी तो अरेंज मैरेज हुई है। क्या मैंने तुम्हें और तुम्हारी भावनाओं को नहीं समझा? तुम्हें इज्जत व मान-सम्मान नहीं दिया? क्या तुम मेरे साथ खुश नहीं हो?"

सरोजिनी ने बहुत उदास व भेदपूर्ण नजरों से विश्वनाथजी की तरफ देखा और कँपकँपाते लबों से हिम्मत जुटाकर बोलीं, "खुश···खुश तो मैं हूँ, लेकिन आपकी खुशी के साथ, आपने जो चाहा, उसमें मैंने साथ दिया, तब तो खुशियाँ हैं, लेकिन मैंने कभी किसी बात का विरोध किया तो न तो आपने कभी मेरी बात सुनी, न मानी और न कभी महत्त्व दिया। आप हर वक्त मुझे मेरे फर्ज और कर्तव्य की याद दिलाते रहे, लेकिन कभी यह जानने की जरूरत नहीं समझी कि मुझे क्या चाहिए, किस बात से मुझे खुशी मिलती है। छोटी-छोटी गलतियों पर 'दिमाग तो है नहीं', 'कुछ करने का ढंग नहीं है' जैसे ताने सुनकर मेरा भी दिल तार-तार हो जाता है, क्या कभी आपने महसूस किया? कभी आपको यह लगा कि मेरे पास भी एक दिल है, जिसे बुरा लगता है और जो निस्स्वार्थ प्यार ढूँढ़ता है, जो मेरी अच्छाइयों के साथ-साथ मेरी बुराइयों को भी हँसते-हँसते स्वीकार करे। कम-से-कम नेहा के साथ तो ऐसा नहीं होगा। जिंदगी उसके लिए सिकुड़ी, सिमटी, सहमी-सहमी सी नहीं, बल्कि खुले आसमान की तरह होगी। जिंदगी उसके लिए जिंदगी होगी···प्यार, अपनापन, मान-सम्मान और जिंदादिली से भरी हुई जिंदगी, उसको समझनेवाला, उसकी कद्र करनेवाला उसका हमसफर उसका पति होगा।"

सुपरिचित लेखिका। बिहार विश्वविद्यालय से राजनीति शास्त्र (प्रतिष्ठा) में स्नातक। किशोरावस्था से ही लेखन-कार्य में रुचि अबतक विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में कविताएँ, कहानियाँ व लेख प्रकाशित।

सरोजिनी की साँस फूलने लगी, गला रुँध गया। रुँधे गले से वह बोली, "मैं नेहा के साथ हूँ", कहते-कहते वह फफक पड़ीं।

विश्वनाथजी आसमान से गिरे तो खजूर पर भी नहीं अटके, सीधे धरा पर धराशायी हो गए। उन्होंने कल्पना भी नहीं की थी कि सीधी-सादी दिखनेवाली पत्नी के अंदर इतना व्यथित हृदय और इतना आक्रोश उनके प्रति होगा। उन्हें महसूस हुआ कि जैसा वे सोचते हैं, वही सही नहीं है। कहीं-न-कहीं कुछ गलत है, तभी तो इतना बड़ा इनकलाब उनके घर आया है।

विश्वनाथजी की दूरदर्शिता ने उन्हें यह सोचने पर मजबूर किया कि इस इनकलाब (परिवर्तन) की आँधी के सामने अगर वे तनकर खड़े होते हैं तो सबकुछ बिखर जाएगा। हवा के रुख के साथ चलने से ही जिंदगी आगे बढ़ सकती है।

उन्होंने पत्नी को प्यार से अपने पास बिठाते हुए कहा, "अब तक तुम मेरे द्वारा लिये गए फैसलों को सिर झुकाकर मानती आई हो, आज मैं तुम्हारे फैसले के आगे नत-मस्तक हूँ।"

"पापा, आप कितने अच्छे हैं!" कहते हुए दोनों बच्चे उनसे लिपट गए।

साई सदन, प्लॉट नं. ६६१, फ्लैट नं. ५००
एक्सटेंशन-१, शालीमार गार्डन
साहिबाबाद, गाजियाबाद-२०१००५ (उ.प्र.)
दूरभाष : ९९११२१४५८५

कविताएँ

• राकेश पांडेय

सुपरिचित रचनाकार। पत्रिका 'प्रवासी संसार' के संपादक। हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार के क्षेत्र में एक जाने माने व्यक्तित्व हैं। प्रवासी हिंदी लेखन, गांधी दर्शन और चिंतन, भारतीय लोक साहित्य के एक गंभीर अध्येता। अनेक पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित। दूरदर्शन व आकाशवाणी के अनेक कार्यक्रमों में सहभागिता।

सुंदर लड़कियाँ

अपने बेटों के लिए
सबको चाहिए सुंदर लड़कियाँ
सुंदर लड़कियाँ उगती हैं
पिता के आँगन में

पिता के आँगन में
सब लड़कियाँ सुंदर ही होती हैं
पिता सीप सा होता है
सब लड़कियाँ मोती होती हैं

सीप से अलग होते ही
निर्जीव हो जाती हैं लड़कियाँ

दुनिया के आँगन में
एक-एक कर
आँखों के सूप से
पछोरी जा रही हैं लड़कियाँ
साँवला रंग
मोटी गरदन
छोटा कद
छोटी आँखें
और न जाने कितनी
छननी के
बारीक छेदों से
छन रही हैं लड़कियाँ

ये छनी हुई लड़कियाँ
ही कहलाती हैं सुंदर लड़कियाँ

समाज की निगाहों से आज भी
बार-बार छन रही हैं सुंदर लड़कियाँ

कंधे का दर्द

आज
मेरे कंधे पर दर्द है,
मैंने देखा कि
कंधे की
चमड़ी भी लाल है।
वैसे ही
जैसे आँसुओं से
आँखें लाल होती हैं।
कंधे डगमगा भी रहे हैं
जैसे भरी तराजू के
दोनों पलड़े।
लेकिन
इस दर्द में
पीड़ा नहीं है,
भविष्य के बोझ
का अहसास है।
क्योंकि
मैंने पिता की अर्थी को
कंधा दिया है।

गरमी

गाँव में था
तो पेड़ की छाँव से
मिट जाती थी गरमी,

पढ़ने कस्बे में आया
तो पंखे से
मिट जाती थी गरमी,

कमाने शहर आया
तो कूलर से
मिट जाती थी गरमी,

आज दिल्ली में
ए.सी. से भी नहीं मिटती है
मेरी गरमी,
ज्यों-ज्यों
मेरा विकास हुआ
मैं और गरम होता चला गया।

एक सड़क मेरे गाँव आई

एक सड़क
मेरे गाँव आई,
और
विकास के स्वप्न दे गई,
किंतु
बहाकर सारा गाँव
अपने साथ
शहर ले गई।
अब
गाँव में बचे हैं
ठूँठ होते पेड़
बंजर होते खेत
खँडहर होते मकान
और
कुछ झुर्रीदार आदमी।

बहुत समय से
गाँव में
नहीं रोपी गई कोई गर्भनाल,
और
न हीं मिट्टी में दाबे गए दूधवाले दाँत।
श्मशान भी सूने हैं
नहीं है कोई रोनेवाला,
कुत्ते तक को
नहीं मिलता निवाला
कभी-कभी
इस सन्नाटे में भी शोर होता है
पर बँटवारे का,
दुआर और मोहारे का।

कुछ परदेसी लौटते हैं
उसी सड़क से
दिल्ली से दुबई
तक का पैसा लेकर
लेकिन
नहीं रोक पाता
उन्हें अब गाँव,
नहीं सुहाती
पेड़ की छाँव।
फिर लौट जाते हैं
कंकरीट के जंगलों की ओर
उसी सड़क से।

मुझे उम्मीद है
एक दिन
ये सड़क
महानगर को बहाकर
हमारे गाँव लाएगी
शहर और गाँव की
दूरी मिट जाएगी।

५/२३, गीता कॉलोनी,
दिल्ली-११००३१

बाढ़ में···एक संवाद-कथा

● हरीश नवल

'क्या यार, यह एडीटर बहुत बोर करता है, बाढ़ समाप्त होने को आ रही है और हुक्म दे दिया कि फोटो बनाकर लाओ, अब कोई प्रभावशाली सीन बचा ही नहीं है, जिसके ज्यादा पैसे मिल पाएँ···तेरे मजे हैं यार, तुझे रिपोर्ट तैयार करनी है, वो तुझे अखबारों में आराम से मिल जाएगी, घसीट लेगा और जाकर सुनीता से करा लेगा टाइप, बड़ी ऐश है तेरी, यार, हमें भी कभी ढंग से मिला न उससे; क्या फिगर है, क्या फोटोजिनिक फेस है, साइड पोज डिम लाइट में लिया जाए तो हजार रुपए मिलें!"

"छोड़ गुरु, छोड़, क्या मुझे पता नहीं कि वीकली के लास्ट ईशू में जो बाढ़ के तेरे खींचे फोटो छपे थे, वह तूने पिछले साल कहीं और भी छपवाए थे। हो सकता है, उससे पहले साल भी···देख गुरु, वो टीले पर पाँच-सात घर बने हैं, गाएँ बँधी हैं और देख, कितने लोग एक तरफ खड़े हैं, उनके हाथ में क्या है, डबल रोटियाँ हैं गुरु, बड़ीवाली, थोड़ी देर पहले हेलीकॉप्टर गया था, उसी ने फेंकी होंगी। बहुत फेंक गया, तभी तो बड़ी ब्रेड बाजार में मिलती नहीं है, छोटी में अपने को टेस्ट नहीं आता, इन्हें छोटी क्यों नहीं फेंकते, इन लोगों को क्या अंतर पड़ेगा? अच्छा गुरु, तू खा-पीकर आया है कि नहीं, अपने को तो भूख लग रही है, दो घंटे बाद तो यहाँ पहुँचे हैं, पहले ट्रक में धक्के खाए, फिर नाव में यहाँ डोल रहे हैं, एक-एक बोतल बियर यहीं ले आते तो मूड भी अच्छा रहता, अच्छा, सिगरेट तो निकाल।"

"यार, तुझे सिगरेट की लगी है, यहाँ कोई अच्छी बैक-ग्राउंड नहीं मिल रही, तीस खींचूँगा, तब कहीं जाके एडिटर उसमें से चार छाँटेगा, फोटोज तो अपने पास कई हैं, पर ब्लैक ऐंड व्हाइट होंगी तो आर्टिस्टिक लगेगी,···यार, तू कुछ नोट भी कर रहा है? वो देख, गाँव का सिर्फ बोर्ड ही नजर आ रहा है। उसके नीचे सब डूब गया। जल्दी से नोट कर इसका नाम।"

"लिखूँ तो सही, पर पढ़ा ही नहीं जा रहा, साला गाँव के साथ-साथ खुद भी धुल गया, बारिश भी तो ऐसी पड़ी है कि क्या कहें, नाववाले से पूछ लेते हैं कि कौन गाँव है? इसकी भी चाँदी हो रही है, दो सौ हम देंगे, बाकी शाम तक बाढ़ देखनेवाले लोग बड़ी संख्या में आते ही हैं, तीन-चार हजार रुपए एक दिन के झाड़ लेते होंगे ये नाववाले? क्यों गुरु, सुन नहीं रहे तुम?"

सुपरिचित व्यंग्यकार। अब तक छह व्यंग्य-संकलन, तीन आलोचनात्मक पुस्तकें, नौ संपादित ग्रंथ और बावन ग्रंथों में सहयोगी रचनाकार के रूप में रचनाएँ प्रकाशित। एक हजार से अधिक रचनाएँ पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित। 'बागपत के खरबूजे' पर युवा ज्ञानपीठ पुरस्कार तथा तेरह राष्ट्रीय पुरस्कारों से सम्मानित। अनेक व्यंग्य अंग्रेजी, बल्गारियन, मराठी, उर्दू, बँगला, पंजाबी और गुजराती में भी अनूदित।

"यार, क्या गुरु-गुरु करके ध्यान बँटा दिया, कैमरे में से देख, वहाँ, वह वहाँ खाली छत नजर आ रही है न, वहाँ पर एक बछड़ा खड़ा था, अभी-अभी पानी में कूद गया, व्यू सेट किया ही था कि तूने 'गुरु-गुरु' शुरू कर दिया, क्या फर्स्ट क्लास फोटो मिस हो गया। काली-सफेद मुँड़ेर के पीछे खड़ा सहमा सा गोरा बछड़ा। ब्लैक ऐंड व्हाइट भी बनाता और कलर भी, कवर पेज का फोटो था यार, कवर पेज का, छत के नीचे का भवन का नाम पढ़ 'भारत मंदिर'। क्या सिंबोलिक अर्थ देता, भारत-मंदिर पर बछड़ा चढ़ा है। सब गुड़गोबर हो गया, भारत मंदिर पर चढ़ा बछड़ा पानी में चला गया। तीन-तीन कैमरे लाद रखे हैं, पर अभी तक फायदा ही नहीं हुआ, ले-देकर बीस शाट्स खींचे हैं।"

"गुरु, एक्स्ट्रीमली सॉरी। अच्छा देख लो पानी की धार कितनी तेज है। तेजी से आता पानी, वो देख, वहाँ पेड़ों के पास हठात् रुकने पर कैसी लहरें बना रहा है, लहरों के ही कुछ शॉट्स ले ले और सिन्हा के अखबार में छपवा देना, उसे पसंद ही दो चीजें हैं, पानी और बतखें। बतखें और मिल जाएँ तो मजा आ जाए।···कहाँ-कहाँ से तुम लोग तसवीरें नहीं लाते हो? याद है, मिसेज ओनाएसिस अपने टापू पर निर्वस्त्र तैर रही थीं, जनाब फोटोग्राफर साहब, गोताखोरी की पोशाक पहन समुद्र में घुस गए और खींच लिये दर्जनों फोटो और कमा लिए हजारों डॉलर।"

"क्यों जुबान खुलवा रहा है? तुम लोग कौन कम हो, अमरीकी प्रेजीडेंट की पार्टी की गुप्त बैठकें चल रही थीं और जनाब पत्रकार जासूसी करते रहे और फिर सारा भंडा फोड़ दिया, पुस्तकें बेचीं, फिल्में बनीं और डॉलर पर डॉलर बनते गए। अपने हिंदुस्तान में ही देखो, कल तक पत्रकार उनकी जी-हजूरी में लिख रहे थे, आज लेख छपवा रहे हैं, किताबों पर

किताबें छाप रहे हैं उनके खिलाफ, उनकी साजिशों की पोल खोल रहे हैं, तब क्यों चुप थे? जी विवश थे, जुबान पर गोदरेज लटका रखे थे, आज रसीले संवादों में अंदरूनी गुप्त बातें ऐसे लिख रहे हैं, मानो साथ बैठकर ही षड्यंत्र की योजनाएँ बनाते रहे हों। एडीशन पर एडीशन बेच रहे हैं।"

"गुरु, तुम लोग कौन पीछे हो। पहले उनकी तसवीरों पर तसवीरें खींचते रहे, छपवाते रहे, 'वन मैन शो' करते रहे, जिसमें तसवीरें भी 'वन मैन की ही खींच रखी थीं और आज तुम लोग बने हुए हो नए लोगों की दुम, चुनाव विशेषांक में छह चित्र तो केवल तुम्हारे ही खींचे हुए थे। खैर, छोड़ो गुरु, बेकार मूड क्यों खराब करें···ये पता लगाते हैं कि यह कौन-सा एरिया है। कोई अच्छी कॉलोनी लगती है, ट्यूब लाइटें लगी हुई हैं, बिजली के तार गिरे हुए हैं, सँभल के चलना नाववाले भाई···वाह, क्या शानदार ओपन कार खड़ी है, बाहर भी पानी भीतर भी पानी, एक बात है गुरु, बढ़िया कॉलोनी में बाढ़ भी कितनी बढ़िया लग रही है, पानी में बसी हुई शानदार कोठियाँ, वेनिस भी ऐसा ही लगता होगा, तुम तो यूरोप घूमे हो···एक बात है, यहाँ लोग डरकर क्यों भागे? यहीं रहते और कारों के बदले मोटर बोट रखते, देश में विदेश का मजा हो जाता। अरे, ये फायर ब्रिगेडवाले यहाँ क्यों जमा हैं? इधर का रास्ता भी रोक दिया है।"

"यार, ये वही जगह होगी, जहाँ कल राहत-कार्य में लगी नाव उलट गई थी, ये लोग लाशें ढूँढ़ रहे होंगे, वहीं चलते हैं, उस मोड़ से लाशों का व्यू बड़ा खूबसूरत होगा, कुछ देर रुकना तो पड़ेगा, पर मेहनत वसूल हो जाएगी, फूली नीली सफेद पड़ गई लाशों को निकालते हुए फायर ब्रिगेड वालों की तसवीरें भी ले लेते हैं।"

"गुरु, तुम तो ऐसे फोटो खींचोगे कि लाशों में भी जान पड़ जाएगी, चलो, मैं भी मृतकों की सूची बना लेता हूँ, फिर दो-चार रिश्तेदारों को ढूँढ़कर उनसे बातचीत कर लेता हूँ, एक लेख अलग से तैयार हो जाएगा, वाइफ के नाम से कहीं छपवा लूँगा।"

"यार, बादल छाने लगे हैं, सूरत की छनती हुई सुनहरी रोशनी की बैक ग्राउंड में कुछ फोटोज बना ही लूँ। काश, बिन्नी डिसूजा भी साथ होती तो बिकनी में माडलिंग कर लेती। 'एडव्यू' वालों के ऑर्डर भी कवर हो जाते। नदी में, झील में, समुद्र में तो सैकड़ों मॉडल्स की तसवीरें खींची हैं, पर पानी में डूबी शहरी बैक ग्राउंड में किसी की भी तसवीर नहीं होगी। खैर, कोई बात नहीं, उससे कॉण्टेक्ट करूँगा, भगवान् करे, पानी अभी सप्ताह से पहले नहीं निकले, किस्मत से इस बीच और वर्षा हो जाए तो ताजगी भरे चित्र आ जाएँगे।"

"गुरु, यहाँ से अब बातचीत करके कल का टाइम ले लेते हैं, अपन तो थक गए और पानी को देखते-देखते सी-सीक्नेस हो रही है। दो से पहले-पहले निकल लेंगे तो 'खा-पीकर' रिवोली में 'ए लवर्ज रोमांस' भी देख लेते हैं, उसका रिव्यू भी करना है। सूद साहब को बोल देंगे कि शाम के सात वहीं बाढ़ में बज गए थे, कुछ एक्स्ट्रा भी दिला देगा, क्यों? प्रोग्राम जँचा?"

६५ साक्षरा अपार्टमेंट्स
ए-३, पश्चिम विहार, नई दिल्ली-११००६३
दूरभाष : ९८१८९९९२२५

नाखूनों की रिहर्सल

लघुकथा

● सत्य शुचि

उस सुनसान जगह में उन दोनों युवतियों को आपस में मिलने की एकबारगी बदमाशों ने किंचित् ढील दी। तिस पर उनमें थोड़ी गुफ्तगू चली थी और फटाक वे पलटी लड़खड़ाते कदमों से चलकर खँडहरनुमा घर में बदमाशों के आगे गुमसुम सी मन-मारकर आँखें झुकाए काँपती सी खड़ी हो गईं।

साँझ ढलने लगी थी। जमीन पर चित्त लैटी युवतियों के जिस्म के इर्द-गिर्द दोनों बदमाश मंडराने लगे थे। लेकिन युवतियों के मुँह से उफ तक नहीं निकली थी।

दरअसल, वातावरण में मदहोशी छितराई थी और यकायक युवतियों ने कोठरी में पसरते-छाए अँधेरे का फायदा उठाने की त्वरित सोची।

'अरे···बाप रे!' युवती संकेत की कोड भाषा में फूटी और दूसरी झट से समझ चुकी थी उस संकेत अर्थ को?

देखते-ही-देखते, खुद के तीखे-तीखे नाखूनों से अँधेरे में अपनी क्षमता-शक्ति से उन बदमाशों के गुप्तांगों को नोंचकर-छीलकर रख दिया युवतियों ने। अब उनके गुप्तांग लहुलूहान हो चुके थे। वे अवश हो गए और चीखते-चिल्लाते छटपटाते हुए वहीं कोठरी में जमीन पर बिलख रहे थे।

वस्तुस्थिति का नजारा यह है कि जल्दी-जल्दी युवतियों ने गिरते-पड़ते मोबाइल की क्षीण रोशनी में गाड़ी की चाबी बदमाशों से छीनी और तत्काल विजयी भाव से वाहन में बैठकर अल्पकाल में उसे थाने की ओर मोड़ दिया।

"···इन नाखूनों से आज उनका जीवन-संकट टला है!" एक ने रफ्ता-रफ्ता स्वयं की हँफनी को थामते हुए कहा।

"और तो और, अपनी इज्जत-आबरू भी तो बची है नाखूनों से।" दूसरी ने भी जरा नॉर्मल होते जोड़ा।

साकेत नगर, ब्यावर-३०५९०१
(राजस्थान)
दूरभाष : ९४१३६८५८२०

प्रेम-गीत

• सुधा शुक्ला

निखिल को इतना उदास किसी ने कभी नहीं देखा। वह तो सदा चुहुल करता, धमा-चैकड़ी मचाता और अपनी शरारतों से सबकी नाक में दम कर देता। डाँट खाकर भी हँसता रहता। उसकी दूधिया हँसी किसी निर्झर-सी झरझर बहती, जिसके प्रवाह में सामनेवाले का सारा रोष-ताप बह जाता।

आज वही निखिल 'धूप न भाए छाँव न भाए, हँसी खुशी कुछ नहीं सुहाए' की मुद्रा में उदास बैठा खिड़की से बाहर आकाश में तैरते मेघ-खंडों के पार कहीं शून्य में देख रहा है। उसे ऐसे बैठा देखकर दादाजी ने बड़े स्नेह से उसके सिर पर हाथ रखते हुए पूछा, "क्या हुआ निखिल, ऐसे क्यों बैठा है बेटा?"

कोई और दिन होता तो निखिल दादाजी के गले में अपनी दोनों बाँहें डालकर, उनके गाल से अपना गाल सटाकर 'दादू, मेरे अच्छे दादू' की रट लगा देता और मचलकर उनसे लिपट जाता, लेकिन आज भर्राए कंठ से 'कुछ नहीं दादाजी' कहते हुए वह कमरे से बाहर निकल गया।

जाते हुए निखिल को चुपके से कमीज की आस्तीन से आँसू पोंछते देख दादाजी हतप्रभ रह गए। उसके इस अनचीन्हे रूप को देख वह यह समझ नहीं पाए कि जिस निखिल के कहकहों से, मीठी बातों से सारा घर गूँजता है, जिसकी आँखों से भी हँसी झरती है और जो डाँट खाकर भी परम प्रसन्न रहता है, वह इतना उदास क्यों है? कौन सी ऐसी बात है, जो वह बता नहीं पा रहा और आँखें चुरा रहा है?

"ब्रेकअप हो गया निखिल भैया का।" सुम्मी, निखिल की छोटी बहन ने दादाजी को कान में बताया।

"निखिल का ब्रेकअप हो गया!" यह सुनते ही दादाजी का दिल धक् से रह गया, देह में कँपकँपी दौड़ गई। 'ब्रेकअप!'

अर्थात् दिल टूटना, मीठा प्रेम-संबंध टूटना। 'यह तो परम विकट स्थिति है,' दादाजी ने सोचा, 'ब्रेकअप होने पर लोग बहुधा अपने आप को सँभाल नहीं पाते। अवसाद में घिर जाते हैं, दुःख से पागल हो जाते हैं, कितने लोग आत्महत्या कर लेते हैं। हे भगवान्! निखिल कैसे इन झमेलों में पड़ गया? अभी तो उसके दूध के दाँत भी ठीक से नहीं टूटे। कल तक तो वह बड़े चाव से पंचतंत्र, सिंदबाद जहाजी, अलादीन इत्यादि की कहानियाँ सुनता था, चाचा चौधरी के कॉमिक्स पढ़ता था। फूल सा सुकुमार प्यारा बच्चा एकाएक इतना बड़ा हो गया कि प्रेम कर बैठा और साथ रहते हुए भी दादाजी जान न पाए कि कब निखिल को प्रेम हुआ और कब उसका ब्रेकअप हो गया।'

निखिल के ब्रेकअप की पीड़ा को रगों में महसूसते दादाजी के अनायास पुराने घाव ताजा हो गए और यादों के झरोखों से उनकी बूढ़ी, धुँधली आँखों में अतीत के खट्टे-मीठे प्रसंगों के पन्ने फड़फड़ा उठे।

दादाजी आज वयोवृद्ध हैं, असहाय-अशक्त हैं और एक कोने में बैठे हैं, लेकिन एक समय था, जब वह भी युवा थे। उनमें भी उमंगें थीं, जोश था और बड़ी-बड़ी चुनौतियों का सामना करने का साहस था। आज वह मूँग की दाल, दलिया और लौकी, परवल पर जी रहे हैं और खुराक से अधिक दवाएँ खाते हैं। लेकिन हॉस्टल में बाल्टी भर चाय वह अकेले पी जाते और सर्वाधिक समोसे और गुलाबजामुन इत्यादि खाने की शर्त भी वही जीतते। तब जीवन तेज उफनती नदी-सा उद्दाम और ऊपर से गिरते झरने-सा निर्बंध था, मन में जोश था, तन में जोर था और आँधी के भी विरुद्ध खड़े होने का साहस था। तब अप्सरा सी सुंदर स्त्रियाँ उनके आगे-पीछे डोला करती थीं और अब तो सारी स्त्रियाँ उन्हें ऐसे 'दादा' कहकर संबोधित करती हैं, जैसे वह सारे जगत् के दादा हों।

दादाजी आज वयोवृद्ध हैं, असहाय-अशक्त हैं और एक कोने में बैठे हैं, लेकिन एक समय था, जब वह भी युवा थे। उनमें भी उमंगें थीं, जोश था और बड़ी-बड़ी चुनौतियों का सामना करने का साहस था। आज वह मूँग की दाल, दलिया और लौकी, परवल पर जी रहे हैं और खुराक से अधिक दवाएँ खाते हैं। लेकिन हॉस्टल में बाल्टी भर चाय वह अकेले पी जाते और सर्वाधिक समोसे और गुलाबजामुन इत्यादि खाने की शर्त भी वही जीतते।

दादाजी अपनी तरुणाई में बहुत सुंदर थे। गोरा दमकता रंग, प्रशस्त ललाट, भूरी आँखें, घने घुँघराले बाल और सुगठित देह।

स्त्रियाँ उन्हें देख-देख निहाल हुआ करतीं, उन्हें रिझाने के सौ-सौ जतन करतीं, लेकिन रूखे स्वभाव के दादाजी अपने में ही रहते। स्त्रियों के प्रति एक कड़वाहट सी भरी रहती उनके मन में।

उनकी माँ नहीं थी। घर में भाभियों का राज था, जो उन्हें भाँति-भाँति से सताया करतीं। इसी कारण पतंग की तरह डोलते, उड़ते, कभी इधर-कभी उधर। यद्यपि खूब बड़ा घर था उनके पिता का। बड़े-बड़े दालान, कुएँ, तीन-तीन आँगन, द्वार पर स्वस्थ चितकबरी गायें, इस पर भी वह बहुधा खेत में बनी मड़ैया में भूखे पेट सोए।

स्त्री की परछाईं से भी दूर भागनेवाले दादाजी एक दिन रूपा की काली कजरारी आँखों के सम्मोहन के जाल में उलझ गए। रूपा सुंदर थी, अल्हड़ और साहसी भी। वह उन्हें इतना प्यार करती थी कि उनके लिए हिमालय पर्वत पर भी चढ़ सकती थी, अमावस की अँधेरी काली रात में गाँव के बाहर लगे पीपल के वृक्ष पर दीया जला सकती थी।

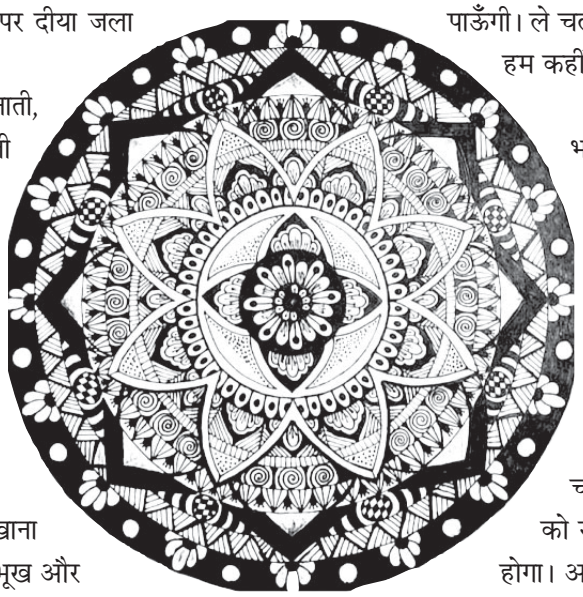

काँच की रंग-बिरंगी चूड़ियाँ छनछनाती, अपनी नागिन-सी वेणी हाथ में लेकर नचाती रूपा उनके आगे-पीछे घूमती रहती।

बार-बार दुरदुराने पर भी वह पालतू बिल्ली की भाँति उनके पीछे लगी रहती। जिस पथ से गुजरते, वहीं बाट जोहती मिलती। प्रेम पगी बातें करती। न जाने किस जनम का नेह था कि उनके मन की बात वह झट से समझ जाती। उसने अपने प्यार-मनुहार से उनका हृदय जीत लिया।

घर में उन्हें बचा-खुचा, ठंडा-बासी खाना मिलता और कई बार वह भी नहीं मिलता। भूख और उपेक्षा से व्याकुल हो वह पुराने मंदिर के पीछे की टूटी सीढ़ियों पर आकर बैठ जाते और अपनी गोलोकवासी माँ का स्मरण किया करते। रूपा न जाने कैसे उनके कष्ट जान जाती और उनके लिए खाने की सामग्री लेकर प्रकट हो जाती। कभी आँचल में बेर, कभी गुड़-चना लाती। कभी-कभी बेसन की सोंधी रोटी और भरवाँ करेले या आटे का हलुवा ले आती। दादाजी के लाख ना-नुकुर करने पर, गुस्सा होने पर भी वह उन्हें खिलाए बिना नहीं मानती। वह प्राय: अपने हिस्से का खाना उनके लिए बचाकर रख लेती और स्वयं झरबेरी के बेर, जंगल जलेबी, करौंदे इत्यादि खाकर अपना पेट भर लेती।

रूपा की इतनी परवाह से दादाजी को असार लगनेवाला संसार मधुमय लगने लगा। धीरे-धीरे उनके मन की कड़वाहट कम होती गई और रूपा की प्रेम-अपनत्व पगी बातों में वह अपने जीवन के घोर अभाव भूलने लगे, उनका रूखा चित्त सरस हो उठा और काली मतवाली आँखोंवाली के सम्मोहन में पड़कर उससे प्रेम कर बैठे।

लेकिन परवान नहीं चढ़ सका यह प्रेम।

रूपा अपने घर में कैद कर दी गई। आनन-फानन उसका विवाह भी तय कर दिया गया। विवाह के पूर्व रूपा उस कैद से किसी तरह छूटकर दादाजी के पास आई थी। वह बावली उनके लिए अपने सारे रिश्ते-नाते पीछे छोड़ आई थी।

दादाजी पुराने मंदिर की टूटी सीढ़ियों पर उदास बैठे थे। दिन ढल रहा था। सूर्य अपनी किरणें समेट रहा था। रूपा की स्मृतियों से घिरे, उसे देखने को आकंठ व्याकुल दादाजी के समक्ष जब एकाएक वह प्राणाधिक प्रिय छवि आ खड़ी हुई तो वह स्तब्ध रह गए। रूपा के पीले मुख और पत्ते की तरह काँपती देह को वह आज तक नहीं भुला पाए।

रूपा आते ही उनके पैरों से लिपट गई। उसके मेहँदी रचे हाथों से अपने पैरों को छुड़ाते हुए वह हड़बड़ाते हुए उठ खड़े हुए थे। रूपा उन्हें झिंझोड़ते हुए बोली थी, "चलो कहीं दूर चलते हैं। मैं तुम्हारे बिना नहीं रह पाऊँगी। ले चलो, मुझे यहाँ से कहीं दूर ले चलो। चलो न, हम कहीं दूर भाग चलें।"

चाहते तो दादाजी भी यही थे, लेकिन भावनाओं की आँधी में भी उन्होंने अपना विवेक और संयम नहीं खोया। मन से संस्कारी लेकिन ढोंग-आडंबर के घोर विरोधी दादाजी साहसी थे। रूपा के लिए कुछ भी कर सकते थे, लेकिन वह उसे कलंकित नहीं होने देना चाहते थे। इसके अलावा माँ के प्यार को तरसते दादाजी किसी और की माँ को दु:ख देना नहीं चाहते थे। उन्होंने रूपा से कहा, "हमें अपने को साधना होगा रूपा। हमें अलग-अलग जीना होगा। अपने सुख के लिए अपनों को कष्ट नहीं दे सकते। हो सके तो तुम मुझे भूल जाना।"

यह कहते हुए उनका हृदय चीत्कार कर उठा था। जिसकी मोहिनी मूर्ति मन में बसी थी, जिसे आत्मा की अतल गहराइयों से प्रेम किया, अपने पास आए, उसी परम सौभाग्य को बड़ी निर्ममता से उन्होंने लौटा दिया। रूपा के विवाह के मंगल गीत और ढोलक की थापें सुन पूरी रात वह खिड़की के पास खड़े रहकर काट देते। उनकी यह राम कहानी आँसुओं से भरी है।

एक पक्षी बड़ी विकलता से आकाश में चक्कर काट रहा था।

दादाजी भी विकल हो रहे हैं। वह निखिल से बात करना चाहते हैं, उसे बहुत कुछ समझाना चाहते हैं। अपने जीवन के सत्त्व, रंग और दर्द बाँटना चाहते हैं, लेकिन कैसे बाँटें? कैसे बताएँ कि स्त्री-पुरुष का आकर्षण सनातन है, इसे कौन नकार सकता है। पुरुष अपनी दुर्बलता और स्त्री अपने अल्हड़पन कहाँ ले जाए। जेनरेशन गैप अर्थात् पीढ़ी का अंतराल जितना भी हो, प्रेम और ब्रेकअप तो जब से सृष्टि बनी है, होता ही आया है। अंतर बस इतना-सा है कि पहले के युग में प्रेम-मोहब्बत हो

जाती थी, की नहीं जाती थी। शायर मखमूर देहलवी के शब्दों में, मोहब्बत के लिए कुछ खास दिल मखसूस होते हैं। यह वह नगमा है, जो हर साज पर गाया नहीं जाता।

लेकिन अब ऐसा नहीं है। अब समानता का युग है। सभी प्रेमगीत गा रहे हैं। भले प्रेम हो न हो, फिर भी प्रेम किया जा रहा है। ब्रेकअप भी इसीलिए हो रहे हैं, क्योंकि सच्चा प्रेम वास्तव में दुर्लभ होता जा रहा है, कुछ तो मोबाइल इत्यादि गैजेट्स की कृपा से, कुछ 'पीअर प्रेशर' अर्थात् औरों को देख उनके अनुसरण के कारण भी प्रेम करने (कुएँ में कूदने) का प्रचलन बढ़ता जा रहा है।

यह कहते हुए उनका हृदय चीत्कार कर उठा था। जिसकी मोहिनी मूर्ति मन में बसी थी, जिसे आत्मा की अतल गहराइयों से प्रेम किया, अपने पास आए, उसी परम सौभाग्य को बड़ी निर्ममता से उन्होंने लौटा दिया। रूपा के विवाह के मंगल गीत और ढोलक की थापें सुन पूरी रात वह खिड़की के पास खड़े रहकर काट देते। उनकी यह राम कहानी आँसुओं से भरी है।

'उसकी साड़ी मेरी साड़ी से सफेद कैसे' वाली प्रतियोगी मानसिकता भी लोगों को भरमाकर इस राह पर ले जा रही है। इसीलिए 'चट प्रेम और पट ब्रेकअप' एक फैशन बन गया है।

यद्यपि निखिल दादाजी को सबकुछ बता नहीं रहा, इस पर भी वह उसकी मन:स्थिति भी समझ रहे हैं। निखिल अपने मित्रों से बात कर रहा है। उनसे अपनी व्यथा साझा कर रहा है और ये सारी बातें वह फोन पर दादाजी के कमरे में ही कर रहा है। दादाजी के कमरे से निरापद स्थान कोई और हो नहीं सकता, घर में भी और घरवालों से दूर भी। दादाजी तो ऊँचा सुनते हैं, लगभग बहरे हो गए हैं, सो उनके सामने धीमे स्वर में बात करने में कोई भय नहीं। निखिल यह नहीं जानता कि भाव-भंगिमा से तो पशु-पक्षी भी बात समझ लेते हैं, फिर दादाजी तो उसके दादाजी हैं।

दादाजी डरे हुए हैं, सोच रहे हैं कि इतने लाड़-दुलार में पला-बढ़ा निखिल इस कच्ची उम्र में ब्रेकअप होने की घनीभूत पीड़ा कैसे सह पाएगा। वह तो कठिन-कठोर और स्नेहहीन जीवन के अभ्यस्त थे, फिर भी ब्रेकअप होने पर जल से निकली मछली की भाँति तड़पे, अंगारों पर लोटते रहे, कितनी रातों तक सो नहीं सके। अपना जीवन समाप्त करना चाहा। आज तक वे इसी टूटे हृदय के साथ जीते आए, लेकिन निखिल को हर्गिज टूटने नहीं देंगे। भले ही वह उन्हें कुछ न बताए, इस पर भी दादाजी उसे बहुत कुछ बताना चाहते हैं। बताना चाहते हैं कि उसके माँ-पिता उसे कितना प्यार करते हैं। उसकी सौ-सौ मनुहारें करते हैं। एक दोस्त, एक हमदर्द की भाँति बताएँगे कि इस जग में ऐसा ही होता है। पलक झपकते सबकुछ बदल जाता है। यहाँ कुछ भी स्थिर नहीं, कुछ भी स्थायी नहीं। इसलिए पराजित मनोवृत्ति लेकर मत जीयो, जीवन की चुनौतियों का सामना करो। जो हो गया, उसे भूल जाओ। कवि अंबिका प्रसाद 'दिव्य' के शब्दों में समझाएँगे—

जो है प्राण वही जीवन में,
बन जाता है बाण कभी।

और यह बाण कभी-कभी बड़ा घातक हो जाता है, समूचे व्यक्तित्व को ग्रहण लगा देता है। नहीं, वे निखिल को ग्रहण नहीं लगने देंगे। अपने अगाध स्नेह से उसके घाव को ठीक कर उसे इस कठिन दौर से बाहर निकालेंगे, कहेंगे, "कुछ सपनों के मर जाने से जीवन नहीं मरा करता है", कहेंगे, "अब इससे बाहर आना ही होगा।" दृढ़ संकल्प से, आत्मबल से अपने को सँवारना ही होगा, कहेंगे, "मुश्किल नहीं है कुछ भी अगर ठान लीजिए।"

ऐसा निश्चय करते ही दादाजी कविवर बच्चनजी की पंक्तियाँ, 'जो बीत गई सो बात गई' गुनगुनाते हुए निखिल से कुछ कहने को तत्पर हुए, तभी निखिल के फोन की घंटी बज उठी। फिर तो एक के बाद एक उसके फोन आते गए। संवेदनाओं के संदेशों का अजब-गजब सिलसिला चलता रहा। निखिल उन्हीं सबमें रमा रहा। दादाजी सोचने लगे कि उनका ब्रेकअप तो कितने गहरे आत्मिक संबंध का ब्रेकअप था, उस ब्रेकअप के कारण भी कितने अलग थे, फिर भी वह कभी किसी से अपनी व्यथा-पीड़ा न कह सके, लेकिन निखिल निरंतर सबको अपनी व्यथा बताए जा रहा है। उसके मोबाइल फोन पर ढेरों 'कॉल्स' आ रही हैं। लोग संवेदना प्रकट कर रहे हैं और वह भी सबकी सच्ची-झूठी सहानुभूति बटोर रहा है।

दादाजी का मन किया कि निखिल के हाथ से फोन लेकर 'स्विच ऑफ' कर उसे कहीं छिपाकर रख दें, शायद तभी निखिल इन कटु प्रसंगों से उबर पाएगा। यह सोचते हुए दादाजी ने करुणा-विगलित दृष्टि से निखिल की ओर दृष्टिपात किया तो उन्हें आघात सा लगा। अपने संपूर्ण अनुभव के सहारे दादाजी को निखिल के चेहरे पर आए भावों से समझते देर न लगी कि अब फोन पर उसकी बात किसी लड़की से हो रही थी और दोनों के हृदय के तार से तार जुड़ते नजर आ रहे थे। निखिल उस लड़की से बातें करते-करते अनायास खिलखिलाने लगा था। उसकी हँसी में आह्लाद के झरने फूट रहे थे। उदासी के मेघ छँट चुके थे।

दादाजी जान गए कि निखिल को अब कोई और मिल गई है। उसे फिर से प्रेम हो गया है। दादाजी को अनायास बशीर बद्र की पंक्तियाँ याद आईं—

दूसरी कोई लड़की जिंदगी में आएगी
कितनी देर लगती है उसको भूल जाने में।

अब दादाजी उदास हैं और खिड़की से बाहर आकाश में तैरते मेघ-खंडों के पार कहीं शून्य में देख रहे हैं। वे समझ नहीं पा रहे कि हँसे या रोएँ, क्योंकि दादाजी तो इतने वर्षों पश्चात् भी रूपा की मधुर स्मृतियों से मुक्त नहीं हो सके।

३/४१७ विशाल खंड-३
गोमती नगर, लखनऊ-२२६०१०
दूरभाष : ९४५४४१४००६

अपना युद्ध

• मंजु गुप्ता

अलग तरह की लड़ाई

लड़की की लड़ाई
बिल्कुल अलग तरह की होती है
हथियार भी अलग
दुश्मन भी
जन्म के साथ ही
शुरू हो जाता है उसका युद्ध
यहाँ सब तरफ हैं मोर्चे
और उसे लड़ना होता है आजीवन
सप्त महारथियों से घिरे चक्रव्यूह में
एकाकी

नहीं हैं उसके हाथों में शस्त्र
बस कहीं भीतर है
खदबदाती जिजीविषा
जो उसे
न मरने देती है
न जीने

कितनी ही दुर्बल
या कोमल हो लड़की
लड़ना होता है उसे
अपना युद्ध
स्वयमेव
निशस्त्र

गुलामी का अहसास

गुलामी का अहसास हो जाना ही
मुक्ति की ओर बढ़ा
पहला कदम है
और शिक्षा ने कराया है मुझे
युगों पुरानी इस गुलामी का अहसास
इससे पहले कहाँ जानती थी
कितने-कितने बंधनों में जकड़ी हूँ?
मेरी देह ही नहीं, आत्मा तक बंदी है
संस्कारों के पिंजरे में
मैं तो थी ऐसी पंछी जो भूल गया था उड़ना
भूल बैठा था उड़ने की चाहत तक
धर्म, नैतिकता और संस्कृति का यह पिंजरा
जिसमें कैद है स्त्री
कितनी सावधानी, होशियारी और चालाकी से
बुना गया था

शिक्षा ने दिया मुझे, पहली बार
गुलामी का यह अहसास
और मैं मचल उठी उड़ने के लिए
जान गई कि देह के कारण ही स्त्री
भिन्न है पुरुष से
लेकिन कमजोर या हीन नहीं कदापि
प्रकृति ने बनाया है दोनों को समान
लेकिन समाज ने बना दिया मादा को स्त्री
धर्म ने जकड़ दिया उसे
सेवा, त्याग, समर्पण की लौह-शृंखलाओं में
कभी देवी कह मंदिर में बिठा दिया
कभी पैर की जूती मान
कुचल दिया पैरों से
मिटा दिया उसका समूचा वजूद
कभी वस्तु समझ बेचा, खरीदा, भोगा मनचाहा

लेकिन पढ़-लिखकर ही जाना मैंने
औरत पैदा नहीं होती
ढाली जाती है सामाजिक वातावरण के साँचों में
समाज गढ़ता है स्त्रियाँ, पीढ़ी-दर-पीढ़ी
और अब स्त्री जान गई है
धर्म के इस बेहूदा छल को
नैतिकता के इस ढोंग को

सुपरिचित लेखिका। प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में अनेक समीक्षात्मक लेख एवं कविताएँ प्रकाशित। लेखिकाओं की सुप्रसिद्ध अखिल भारतीय संस्था 'लेखिका संघ' की उपाध्यक्षा। आकाशवाणी एवं दूरदर्शन पर अनेक साहित्यिक कार्यक्रम प्रसारित। 'कल्पतरु' संस्था द्वारा 'कविता विदुषी' सम्मान से सम्मानित।

जो स्त्री और पुरुष के लिए
बनाता है अलग-अलग मापदंड
कहता तो है अर्ध-नारीश्वर
लेकिन नहीं होता जिसका अर्थ
आधी स्त्री, आधा पुरुष, वरन्
आधी स्त्री, आधा ईश्वर यानी पति-परमेश्वर
आज मैं स्त्री, ईश्वर बनाम पुरुष की
इस सत्ता को देती हूँ चुनौती
और करती हूँ ऐलान अपनी आजादी का
नारी मुक्ति का
ऐहिक और पारलौकिक सब बंधनों से मुक्ति
यानी अब आप
पुरुष की सामंती मानसिकता और अहं को त्याग
कीजिए खुले मन से स्वीकार
कि स्त्रियाँ भी मनुष्य होती हैं
और वे हैं आधी आबादी
इसे स्वीकार करके ही
आप रोक सकते हैं मनुष्य की बरबादी।

जे-३६, साकेत
नई दिल्ली-११००१७
दूरभाष : ९७११०८०२१९

अरुणिमा

• रीता कौशल

अध्याय १५ से...

हर चीज में छोटा-बड़ा, अनावश्यक वर्गीकरण! कैसी संस्कृति है यह? जहाँ विज्ञान पढ़नेवाले उच्च श्रेणी के माने जाते हैं, आर्ट्स पढ़नेवाले उनसे हेय। जब उसके अपने बच्चे होंगे तो वह कभी उनके साथ ऐसा नहीं करेगी। जो पढ़ना चाहें, पढ़ने देगी, करना चाहें, करने देगी। ये संस्कृति नहीं, मानसिक रोग है—किसी ने हिंदी में स्नातकोत्तर किया है तो वह ऐवई समझा जाता है और अंग्रेजी में किया है तो वह लाट साहब माना जाता है। फिर चाहे वह तृतीय श्रेणी लेकर जैसे-तैसे पास हो पाया हो। हिंदुस्तान से अंग्रेज चले गए, अंग्रेजियत छोड़ गए। हिंदुस्तान आजाद हो गया किंतु हिंदुस्तानियों की सोच ब्रिटेन में गिरवी पड़ी है। भारतीयों ने पश्चिम से वह सीखा, जो नहीं सीखना चाहिए था। वह नहीं सीखा, जो पाश्चात्य संस्कृति में सचमुच अनुकरणीय है।

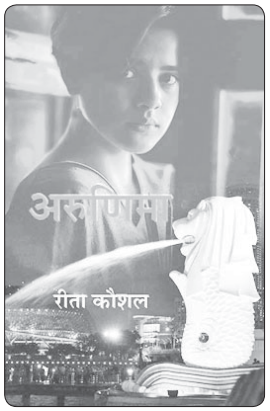

क्या गलत था अगर वह मीडिया के क्षेत्र में जाना चाहती थी। टी.वी. एंकर, न्यूज रीडर बनना चाहती थी। हिंदी साहित्य में उच्च शिक्षा लेना चाहती थी। क्या मिला किसी को उस पर विज्ञान के विषय थोपकर? उसे डॉक्टर बनाने की व्यर्थ कोशिश में एक अधकचरा असफल व्यक्तित्व तैयार हो गया। ऐसे ही डॉक्टर तो पेट में कैंची-तौलिया भूलते हैं। जरूर उन्हें इस व्यवसाय में माता-पिता द्वारा जबरदस्ती भेजा जाता होगा। जिंदगी का यह अध्याय ऐसा नहीं है, जिसे वह बार-बार खोलकर पढ़े। पूरी ताकत से अपनी याददाश्त के सबसे निचले तले में दबाकर रखती है वह इस अध्याय को। आज निराली नाम की आँधी में अटक यह अध्याय स्वत: ही फड़फड़ा उठा। जबरदस्ती विज्ञान विषय दिलाने से और अतिरिक्त ट्यूशन लगाने से कोई डॉक्टर बन सकता है क्या? और धीरे-धीरे उन अवांछित थोपे विषयों के बोझ तले उसका व्यक्तित्व ध्वस्त हो गया। इस हद तक ध्वस्त कि उसे खुद की क्षमताओं पर ही नहीं, अपने होने पर भी शक रहने लगा।

जीवन के स्वर्णिम साल जो कि रचनात्मक रूप से विशेष हो सकते थे, बायोलॉजी से जूझने में व्यर्थ हो गए। क्या हासिल किया मेढक और केंचुए के उत्सर्जन तंत्र को रटकर। उसे क्या उनके लिए डायपर या हाजमोला बनाने की फैक्टरी खोलनी थी? जो दिन-दिनभर बैठकर वह जानवरों के पाचन-तंत्र और उत्सर्जन-तंत्र का रट्टा लगाती रही थी!

ट्रेन रुकी, बुकिट बटोक आ गया था। रिया झटके के साथ वर्तमान में लौट आई। रिया के चेहरे की अजब इबारत पढ़ अर्णव भी चुप बना रहा था। बुकिट बटोक एम.आर.टी. से उनके ब्लॉक तक का पैदल रास्ता मात्र सात मिनट का था। धीमे कदमों से इसे तय करते, दोनों अपनी-अपनी सोच में गुम बने रहे।

अध्याय ३८ से...

बरसात की झड़ी लगी थी। अरुणिमा मुनमुन को स्कूल छोड़कर वापस आ रही थी। बिजली रह-रहकर तड़क रही थी। लगता था, अब गिरी तब गिरी। अरुणिमा हाल ही में फ्लू से उबरी थी। बरसात में भीगने से कहीं फिर से बीमार न पड़ जाऊँ, यह सोचकर वह एम.आर.टी. पर शेड में खड़ी हो बारिश की झड़ी के कम होने का इंतजार करने लगी।

वह पत्थर की एक बेंच पर बैठकर एम.आर.टी. के बगल से जाती सड़क पर से गुजरते वाहनों को देख समय काटने की कोशिश कर रही थी। इस बेंच की सामने की दिशा में एम.आर.टी. से जुड़े हुए टैक्सी स्टैंड पर बड़ा सा साइनेज लगा था। जिस पर स्पष्ट शब्दों में चारों आधिकारिक भाषाओं में लिखा था, 'सीट बेल्ट न बाँधने पर सौ डॉलर का फाइन'। टैक्सी स्टैंड के ठीक सामने सड़क पर एक मेटाडोर में बांग्लादेशी व भारतीय मजदूर ट्रांसपोर्ट किए जा रहे थे। ऐसे दृश्य यहाँ बिल्कुल दुर्लभ नहीं थे। ओपन मेटाडोर में बैठे इन मजदूरों

के चेहरे देख बरबस ही कट्टी खाने को ले जाए जाते मवेशियों का संस्मरण हो आता था।

इनके बैठने के लिए तो वाहन में पर्याप्त सीट भी नहीं होती थीं, फिर सीट बेल्ट का होना तो विलासिता थी। एक क्षण को भी उन्हें उनकी औकात भूलने नहीं दी जाती थी। हर कदम पर उन्हें जताया जाता था कि वह गरीब देशों से आए मामूली सी तनखा पर काम करनेवाले मजदूर हैं, वास्तविक सिंगापोरियंस नहीं। ये उन कामों को करने के लिए आते हैं, जिन्हें करने में स्थानीय नागरिक अपनी हेठी समझते हैं। भुक्तभोगी ही समझ सकता है कि गुलाम प्रथा आज भी अपने बदले स्वरूप में यत्र-तत्र-सर्वत्र मौजूद है। सीट बेल्ट न बाँधने पर पैनल्टी का प्रावधान तो कीमती जान की हिफाजत के लिए है। कीड़े-मकोड़ों के लिए तो कफन भी जरूरी नहीं होता।

एम.आर.टी. के दूसरे छोर की तरफ स्थित डॉग पार्लर से दो चाइनीज युवतियाँ मैंडरिन में कुछ 'चिंगचांग···चिंगचांग' करती चली आ रही थीं। पहली ने एक झब्बेदार सफेद रंग की पामेरियन डॉगी (कुतिया नहीं कह सकते, क्योंकि वह तो गाली जैसा होता है) को गोद में बड़ी नजाकत से उठा रखा था। डॉगी के सिर के सामने के शैंपू से धुले लंबे-रेशमी-चमकीले बाल दोनों कानों के ऊपर बड़े सलीके से लाल तितली की आकृतिवाली हेयर क्लिप से बँधे हुए थे। उसके छोटे से तन पर गुलाबी रंग की झालरदार डॉगी ड्रेस शोभायमान थी।

दूसरी युवती ने अपनी एक बालिश्त की डॉगी को अपने बड़े से हैंडबेग में बिठा रखा था। वह डॉगी हैंडबेग से बाहर थूथनी निकाले अपनी किस्मत पर इतरा रही थी। अरुणिमा के पास से गुजरते हुए मालकिन व डॉगी ने कुछ ऐसे मुँह बनाए, जैसे जता रही हों, 'इनसानों की ही नहीं जानवरों की भी किस्मत होती है और किसने दुनिया के किस हिस्से में जन्म लिया, इससे भी निर्धारित होती है।'

'स्वर्ग-नरक सब यहीं पर है।' अरुणिमा के मस्तिष्क में आज एक बार फिर ये कटु सत्य अपनी कड़वाहट उलीच रहा था। रोकने के लाख जतन के बाद भी उसकी आँखों से आँसू लुढ़क गए। जाने-पहचाने आफ्टर शेव की महक और अपने कंधे पर किसी का स्पर्श महसूस कर उसने झट से खुद को सँभाल लिया।

सी-५३००, सेक्टर-१२
राजाजीपुरम्, लखनऊ-२२६०१७
दूरभाष : ७३१८२१३९४३

किस्मत के धनी

लघुकथा

• सत्य शुचि

बाबूजी बेकद्री का जीवन जी रहे थे। जहाँ घर के एक कमरे में उपेक्षा झेलते-पीते, हिदायतें-नसीहतें सुनते-सहते उनकी जिंदगी वीरान सी बन चुकी थी।

अचानक एक रोज विगत दिनों की याद करते-कराते उन्हें ख्याल आया, पेशावर में उनका हँसता-खेलता रिटायरमेंट कितना मजेदार था। परंतु शनैः-शनैः उनका अस्तित्व, पूछ, मान-सम्मान सबकुछ गोया उनसे किसी ने हर लिया हो! और वह घर में एकदम हाशिए पर चले गए थे। इसी बात की एक गहरी यातना उन्हें सताने लगी थी।

फिर भी आज की एक खास बात यह रही कि घर में जाने-अनजाने में अखबार का शोर उन्हें विचलित कर गया, तत्पश्चात् उनको बड़ा अजीब सा लगा। बड़े-बड़े हेडिंग में छपी एक खबर से अनजान से बाबूजी बने रहे।

'आखिर, मामला-माजरा क्या है!' तनिक हैरत में उन्होंने सोचा।

बहरहाल, बेटे-बहू सपाटे में बाबूजी के सामने मन-ही-मन द्रव्य लाभ की आस लिये हाजिर हुए और बगैर भूमिका के बाबूजी को उनका यह तौर-तरीका रास नहीं आया। थोड़ी देर में जब बाबूजी सारा किस्सा समझ पाए, उसी दम वह दोनों को गुस्से से घूरने लगे। सच में, बेटे-बहू की योजना बेअसर साबित हुई, और अविलंब ही बाबूजी ने उनके पसरते-बिछते जाल को कुतर दिया।

"अच्छा! अच्छा! तो ऐसी बात है!" पलक झपकते बाबूजी की भौंहें तन गई थीं।

हठात् बेटे-बहू का चेहरा राख हो गया और मुँह कसैला! तभी नाउम्मीदी से निराश से वह भीतर की तरफ बढ़े।

मगर बाबूजी के वास्ते वह खबर अच्छी जरूर थी। और वह अभी ताजा ऊर्जा से भरे-भरे बुदबुदाए, "अपने मृतप्रायः जीवन में उस खबर ने उनके तईं संजीवनी की माफिक काम किया है और इस हेतु वह ऊपरवाले के सदा कृतज्ञ रहेंगे।" बाबूजी को संतोष था। और खुशी से उनके नेत्र छलक पड़े।

अंततः सार-सारांश, बाबूजी की पुरानी बंद पेंशन की बहाली ने उनके जीवन की खुशियाँ वापस लौटा दीं।

साकेत नगर, ब्यावर-३०५९०१
(राजस्थान)

एक कामकाजी लेखक की डायरी

• सुधा कुमारी

जुलाई, २०२१, सुबह ५:०० बजे

इतना अँधेरा कि यकीन ही नहीं होता। ब्राह्ममुहूर्त बीत गया और सवेरा हो गया। चूँकि देखना मतलब यकीन करना होता है, अत: उजाला दिखने के बाद ही दिन होने का यकीन करना पड़ेगा। अब देश की राजधानी कोई पूर्वांचल तो है नहीं कि ५ बजते ही सुबह की धक्का-मुक्की शुरू हो जाए। आखिर राष्ट्रीय राजधानी है तो सूर्यदेव भी बेड-टी वगैरह लेने के बाद ही अँधेरे के लिहाफ से बाहर आएँगे। फिर मैं क्यों बेमतलब अँधेरे में खिड़कियाँ आदि खोलकर सूर्यदेव पर बाहर आने के लिए मानसिक दवाब डालूँ? मगर आँखें खुल ही गईं तो कुछ स्वाध्याय कर लिया जाए।

बरसाती ठंड को चुनौती देते हुए उठने की लचर सी बेकार कोशिश···चेतन मस्तिष्क जड़-शरीर को समझाता है—'अजगर करे न चाकरी, पंछी करे न काम···' मलूकदास का यह दोहा निठल्लों को समर्पित है और हम जैसे कामकाजी कर्मठ लोगों पर सटीक नहीं बैठता। इसलिए ग्यारह नंबर की अपनी पैरगाड़ी 'स्टार्ट' कर···।

मगर मस्तिष्क को टका सा जवाब मिलता है, "माइंड योर बिजनेस··· इस ठंड में जबतक सुस्ता रहा हूँ, तू भी ठंडक से अपना काम कर ले··· एक बार दौड़ना शुरू करूँगा तो दाएँ-बाएँ देखता ही रह जाएगा!"

इति जड़-चेतन संवाद।

६:०० बजे

इतनी देर से कर्मचारियों के लिए एक प्रशिक्षण कार्यक्रम के लिए 'पॉवर पॉइंट प्रेजेंटेशन' की रूपरेखा बनाने में दिमाग व्यस्त रहा। फिर 'केस स्टडी' बनाना है। कानूनी-तकनीकी विषयों पर ग्रंथ बहुत हैं, मगर उन्हें समझ पाना अच्छे-अच्छों के लिए आसान नहीं। कानूनी विषयों का अपना शब्दकोश, व्याकरण और साहित्य होता है। अंग्रेजी की सुमधुर गहन गंभीर भाषा में जटित जटिल लैटिन-ग्रीक शब्द-खंडों के बहुमूल्य रत्न कानूनी साहित्य का लुभावना नजारा पेश करते हैं। ऊपर से बहुत सारे न्यायिक आदेशों के सैकड़ों पन्नों को उलटना-पलटना-पढ़ना-समझना किसी प्रकांड और उबाऊ हिंदी कवि को सुनने से कम रोमांचक नहीं।

सुपरिचित लेखिका। अंग्रेजी कविता-संग्रह 'द टाइड' एमेजॉन सहित विश्व की ४५ वेबसाइट पर उपलब्ध हैं। हिंदी लेख-व्यंग्य-कहानी संग्रह—'परिष्कृत और सुखी वातावरण'। '२१वीं सदी के १३१ श्रेष्ठ व्यंग्यकार' में व्यंग्य संकलित। छोटे-बड़े अनेक सम्मानों से सम्मानित।

और फिर उसी ज्ञान को स्वयं किसी प्रकांड और उबाऊ हिंदी कवि की तरह एक समूह को जबरदस्ती सुनाना-समझाना सचमुच एक गंभीर चुनौती ही नहीं बल्कि एक खतरनाक समस्या है।

विधायिका यानी संसद् कानून बनाकर अपना परम पुनीत कर्तव्य पूरा कर देती है। अब कार्यपालिका वाले इन्हें लागू करते हैं, तो जनता की ओर से न्यायपालिका में याचिका (रिट) दायर हो जाती है···१९० पृष्ठ के मोटे-थुलथुल संलग्नक के साथ जबरन संलग्न की गई २० पृष्ठ की याचिका···जिसके ३०-३५ अनुच्छेदों में निहायत उबाऊ, अधकचरी और निरर्थक सामग्री भरी हुई···जिसका कोई औचित्य नहीं। फिर भी बेचारे भन्नाए हुए बाबू के लिए मोटा चश्मा लगाकर पूरा पढ़ना अति आवश्यक होता है वरना उसे पता कैसे लगेगा कि वह याचिका व्यर्थ थी? और फिर पूरा न पढ़ पाने पर यह डर है कि याचिका के हर अनुच्छेद पर अपनी टिप्पणी देने वक्त कहीं कोई जरूरी तथ्य छूट गया तो गंजे सिर पर भारी मुसीबत!

कूड़े के ढेर से कुछ बीनते हुए एक मैले-कुचैले व्यक्ति से भी अधिक घंटों की मेहनत के बाद याचिका में से दो-चार पंक्तियाँ ही काम की निकलती हैं—और वह भी निचली अदालत के लिए। उनपर उसे बड़े-बड़े उत्तर लिखने होते हैं, जैसे इतिहास-दर्शनशास्त्र की स्नातकोत्तर परीक्षा के उत्तर लिखे जाते हैं। उसके बिना वह जीरो समझा जाएगा।

न्यायालयों में ऐसे अनावश्यक मामलों की बाढ़ को देख अभी-अभी मेरे दिल में खयाल आया है कि न्यायपालिका के साथ भी न्याय नहीं हो पा रहा। एक तो निर्णायकों की संख्या कम है, ऊपर से धरती पर संभव

सारे संगत-असंगत विषय उच्च अदालतों में 'रिट' नामक बाढ़ बनकर भर जाते हैं, जिन्हें दाखिल करने की फीस, वकील की फीस खर्च होने और दीर्घकालिक न्यायिक जाँच-प्रक्रिया से गुजरने के बाद ही इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि वे सब मामले व्यर्थ थे और उनके ऊपर ध्यान देने की कोई आवश्यकता नहीं थी। मगर इतने समय की बरबादी के बाद न्यायपालिका और कार्यपालिका के साथ क्या न्याय हुआ? उधर जनता से मोटी-तगड़ी फीस तो काले लबादेवाले 'अधिक' वक्ता ने वसूल ही ली। सच कहते हैं, ऊपरवाले की चक्की धीमी मगर पीसती अवश्य है···और कानून की चक्की भी। यदि कानून की पढ़ाई को विज्ञान और गणित की भाँति साफ-साफ और कम शब्दों में पढ़ाया जाता तो अदालत में मामले जल्दी सुलझ जाते और तारीख पे तारीख नहीं पड़ती। धरती पर जीवन जीने लायक होता।

७:३० बजे

अब कहीं जाकर प्रशिक्षण की कुछ सामग्री तैयार हुई है। अरे! यह क्या···अबतक मैंने नाश्ता भी नहीं लिया! हे भगवान्, महान् योगगुरु कहते हैं सुबह जागने पर कुछ खाने को। मगर घड़ी देखते ही याद आता है कि अभी कचरेवाला लड़का बजर देकर 'डिस्टर्ब' करेगा। जल्दी से उसका बास्केट बाहर रखवा दूँ···इसके बाद निश्चिंत होकर नाश्ता करूँ। नाश्ता करते समय दिमाग में अचानक यह सवाल कौंधा कि कचरेवाले लड़के को 'भाई' और कचरेवाली लड़की को 'बाई' क्यों कहते हैं? और हो गई दिमाग की बत्ती गुल!

७:५० बजे

अब तक घर में रोशनी आ चुकी है, मगर धूप नहीं आई···महरी का नाम रोशनी है। उसके साथ एक सहायक भी है। मैंने घर में अंत्योदय कार्यक्रम चला रखा है। अर्थशास्त्री की भांति सलाह दी है, "दो हाथ की जगह चार हाथ काम करें तो सेवाओं के उत्पादन की मात्रा और कार्य गति बढ़ने के साथ-साथ आय में भी निश्चित रूप से बढ़त होगी।"···

'म्हारी घणी समझवाली' महरी मान गई है—अर्थशास्त्र के सिद्धांत की वजह से नहीं, काम छूटने के डर से। एक असिस्टेंट ले आई है। अच्छा है, वरना दो हाथ नजाकत और नफासत के साथ धीमी गति से काम करते हुए और दो आँखें पूरे घर का और मेरा मुआयना करते हुए ही १० बजा देते। उसकी आँखें मेरी गहरी पड़ताल करती हैं गोया कि पढ़ा-लिखा होना किसी खतरे का सिग्नल हो···पता नहीं, किस रंग के विचारधारा की है?

८.१५ बजे

घन्न···घन्न···मोबाइल का बजर-ओफ!···दर्जनों व्हाट्सएप समूह पर रोज सैकड़ों संदेशे···एक समूह में एक रट्टू तोता हर दिन सिर्फ 'ॐ साईराम' लिखता है, इसके सिवा कुछ नहीं···जैसे अदालतों में सच के सिवा कुछ नहीं बोलते! पता नहीं, वह साईं बाबा को बुलाता है या राम को? मगर हमारी इस दिमागी उलझन में उसकी सामाजिक सुरक्षा की समस्या अवश्य सुलझ जाती है। उसकी रणनीति के कारण उसकी नेकनीयती और देशभक्ति संदेह से सर्वथा परे हो जाती है। पता नहीं, बचपन में पढ़ी पुस्तकों में यह मुहावरा किसके लिए होता था, 'मुँह में राम, बगल में छुरी'?

दूसरे सरकारी कॉलोनी समूह में पार्किंग को लेकर कल से ही झगड़ा-फसाद चल रहा है। एक कार की फोटो डाल दी गई है। ताने-उलाहने-धमकी से शुरुआत होकर थाने-पुलिस तक की नौबत आ गई है। इसी बीच न जाने कैसे किसी ने संदेश डाल दिया है, "गलत जगह पर पोस्ट हो गया···अमुक जगह पर पोस्टिंग को प्राथमिकता देनी थी···'एप्रोच' करना है···"। कई सिर घूम जाते हैं, बड़ी-बड़ी आँखोंवाले 'इमोजी' भौंहें चढ़ाए यत्र-तत्र निकल आते हैं। बड़े-बड़े प्रश्न-चिह्न लगा दिए जाते हैं। घबराया हुआ उत्तर आता है, "सॉरी, गलत जगह पर पोस्ट हो गया।" और गधे के सर से सींग की तरह संदेश भी गायब।

इस वक्त तक मोबाइल के सफाई अभियान के तहत अनगिनत समूहों की काफी झाड़-फूँक हो चुकी है···इसमें कॉलोनी, कार्यालय, साहित्य के समूहों के अनेक पुष्प-गुच्छों के साथ सहकर्मी-संबंधी-मित्र भी सुंदर लता-वितान की तरह सजे हुए हैं···इनमें से किसी को भी डिलीट करना मतलब अपने जीवन पर खतरा। मगर उन समूहों तथा स्वयं के संदेशों के कारण मोबाइल में उत्सर्जित इतना कार्बन फुटप्रिंट (संक्षेप में सिर्फ 'कचरा' पढ़ें) को साफ करने के लिए अब एक और महरी चाहिए!

९:०० बजे

"अरे, तुम अब तक गई नहीं?···मुझे दफ्तर की तैयारी···!"

"अरे, आप अबतक तैयार नहीं हुईं?" रोशनी की हाजिरजवाबी का जवाब नहीं।

महरी के घर में होते हुए तैयार होना और लिखना-पढ़ना कठिन है। पता नहीं, कब किस चीज के लिए हाँक लगा दे या निकल जाए। स्वामी के पीछे चलना सेवक की नियति है, मगर आजकल सेविका के पीछे-पीछे चलकर पर्यवेक्षण करते रहना स्वामिनी की नियति है। अंग्रेजी की कहावत पर यकीन करें तो मालिक की दो आँखें और सेवक के दो हाथ बराबर होते हैं। इस चक्कर में इतने दिनों में कई सौ किलोमीटर चल चुकी है, ग्यारह नंबर की पैरगाड़ी!

९:४५ बजे

अब जाकर रोशनी निकली है घर से बाहर और धूप निखर आई है घर के आँगन में। कार्यालय के लिए तैयार होने का एक सुनहरा मौका,

जिसे गँवाने पर निराशा और खीझ ही हाथ लगेगी। दरअसल सुबह चाय की चुस्की लेते ही 'कबड्डी-कबड्डी' करते हुए कबाड़ियों के झुंड और फटे बाँस सी आवाज निकालते झाड़ूवाले दर्जनों जत्थे प्रभातफेरी में चिल्ल-पों मचाते घूमा करते हैं। सुबह पौने आठ बजे उनकी मर्मांतक चीख सुनते ही यदि चाय का कप आपके हाथ-मुँह से छूट न जाए तो कहना । मगर मेरे ऐन दफ्तर को निकलने के वक्त तक इनके जत्थे और फल-फूल के ठेले अति सक्रिय हो जाते हैं। कम-से-कम ३०-३५ प्रकार की चीख-पुकारें दोपहर-शाम तक जारी रहती हैं—कभी मर्मांतक चीख किसी कटते हुए जानवर-सी, कभी डॉन की तरह भारी-भरकम धमकी भरी चिल्लाहट के रूप में। घर में रुके रहने से भी साहित्य-लेखन का कोई रास्ता नहीं दिखता। शीघ्रतापूर्वक यहाँ से निकल लेना ही श्रेयस्कर है।

ये ठेलेवाले सुबह-सुबह कभी सिक्योरिटी गार्ड के सामने मास्क लगाकर, कभी गार्ड की अनुपस्थिति में बिना मास्क लगाए धड़ल्ले से कॉलोनी के पार्क के पास अपना ठेला 'पार्क' करते हैं और कनखियों से पी.जी. हॉस्टल के दर पर या बालकनी में सुबह में निकले चाँद-सितारों की तरफ देखकर अनेक प्रकार की अजीबो-गरीब आवाजें निकाला करते हैं। अब लो, आपकी तो भौंहें चढ़ गईं···अरे, आपसे किसने कहा कि चाँद-सितारों की तमन्ना सिर्फ अमीरों को हो सकती है? सबको सपने देखने की और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता है या नहीं? क्या कभी राजकुमारी और गरीब लड़के की कहानी नहीं सुनी?

उनकी प्राणघातक चीख गरीबी-रेखा के नीचे रहनेवाले की करुण पुकार नहीं, ऊँचा मुनाफा काटनेवाले लुटेरे की ललकार सी हवेलियों के कंगूरों को थर्रा देती है। गला फाड़कर इतना ऊँचा चिल्लाने के बाद भी उनके गले और फेफड़े तो सलामत हैं अलबत्ता सुननेवाले कई संभ्रांत लोगों के कान के परदे अवश्य खराब हो रहे हैं। कॉलोनी की कमिटी को शिकायत की जाए तो उल्टा सवाल दाग दिया जाता है—

"आप खुश नहीं? यहाँ रहने का निर्णय क्यों किया था?···जाने दो, बेचारे गरीब आदमी हैं···उनकी कोई आमदनी नहीं, कोई बचत नहीं, महामारी में बेचारे भूखों मर जाएँगे।"

'आटो में घाटो और मैदो में फैदो' देखनेवाले ये बिजनेसमैन अचानक इतने दयालु, परदु:खकातर कब से और कैसे हो गए? अचानक मेरी याददाश्त (मेमोरी) रिफ्रेश होती है, किसी कवि की लिखी पंक्तियाँ याद आती हैं—

"डूब-डूबकर पानी पीते, हमको जैसे नहीं पता···"

कम ही लोग जानते हैं कि कुछ चुनिंदा घरों में रोज सुबह-सुबह ढेर सारी फल-सब्जी की थैलियाँ क्यों पहुँच जाती हैं? बाजार-संस्कृति अपने चरम पर है, जिसमें बाजार तो दिखाई देता है, संस्कृति कहीं दिखती ही नहीं! जबसे अमृता प्रीतम की 'पिंजर' पढ़ी है, फेरीवालों के काम-धाम के बारे में काफी ज्ञान मिला है। कुछ तथाकथित 'गरीब' फेरीवाले इस कॉलोनी के निर्माण-कार्य, गाड़ियों और तमाम आर्थिक-सामाजिक गतिविधियों पर लगातार गिद्ध-दृष्टि लगाए रखते हैं। आए दिन गाड़ियों या उसके कल-पुर्जों की चोरी की रिपोर्ट होती रहती है, जिसका पता 'आजतक' जैसे सबसे तेज समाचार चैनल को भी नहीं लगता तो पुलिस को कैसे लगे?

इसके अलावा कुछ 'गरीब' खबरियों का इशारा मिलते ही सुबह-सुबह किन्नरों का गैंग गाड़ी में सवार होकर अपने शिकार को उसकी माँद में ही धर दबोचता है और गृह-निर्माण, शादी या बच्चे का जन्मदिन जैसे मौके के अनुसार पचास हजार, एक लाख, दो लाख रुपए झटककर ले जाता है और अपना गरीबी-उन्मूलन कार्यक्रम चलाता है। पता नहीं, इन पर एंटी-करप्शन, टैक्स विभाग, सी.बी.आई. या विजिलेंस की बाज-नजर क्यों नहीं पड़ती? सिर्फ बाबुओं और व्यवसायियों तक ही इनका रथ क्यों रुक जाता है?

ये किन्नर पुलिस से भी नहीं डरते, बल्कि पुलिस इनसे हिचकती है। हमारे हिंदी शब्दकोश ने तो पुलिस जैसे पौरुषवाले शक्तिशाली महकमे को भी स्त्रीलिंग शब्द बना रखा है! सुना है, मुगलों के समय में इन किन्नरों को रनिवास पर कड़ा पहरा देने की नौकरी पर लगाया जाता था। पता नहीं, पुलिस में इन वीर-बाँकुरों को क्यों नहीं तैनात किया जाता? इन अभागों का अभिशप्त जीवन भी चैन से कट जाए और समाज को भी सुरक्षा मिले। मगर एक लंबी साँस···और घड़ी पर नजर चली जाती है। १०.०० बजे

"किर्र-किर्र" दरवाजे के वीडियोफोन पर एक नक्शा उभरता है। मेरे कार्य-रथ का सारथी है।

"हाँ, ठीक है," छोटा-सा जवाब···'रुटीन नेचर' का···कार्यालय जाने के लिए लंच बॉक्स भी रखना है···लगता है, आज कोई भी नया साहित्य सृजन नहीं हो पाएगा। अपनी ही लिखी कुछ पुरानी पंक्तियाँ याद आती हैं—

"बेनूर, बेलौस,
फिर भी कर दे,
दो क्षण को मदहोश
छोटा-सा कागज एक,
मोटे वेतन का पतला चेक···

प्रशासन की मिट्टी में
ऑक्सीजन कम है
इसलिए कविता की
आँखें भी पुरनम हैं।"

डी-१७ ए प्रथम तल
कैलाश कॉलोनी
नई दिल्ली-११००४८
dr.skumari2019@outlook.com

गजलें

● तेज नारायण शर्मा 'बेचैन'

सुपरिचित रचनाकार। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित। टेलिविजन एवं आकाशवाणी से रचनाएँ प्रसारित। संप्रति अधिवक्ता जिला एवं सत्र न्यायालय।

: एक :

पहले तो हमको मुनासिब अनबनें बेची गईं
अनबनों के साथ पिस्टल और गनें बेची गईं

उँगलियों के बाद, धड़ से हाथ कर डाले अलग
फिर उसी बेजान धड़ को, धड़कनें बेची गईं

हम तो मसले हल कराने की तलब लेकर गए
पर हमें तो इस बहाने उलझनें बेची गईं

भूख ने ऐसा सताया आज फिर से गाँव को
आज फिर गिरजाघरों को, गरदनें बेची गईं

शयरों की भीड़ थी, पर शायरी की शक्ल में
रातभर अखबार की ही, कतरनें बेची गईं

: दो :

सोचिए, किनके इशारों पर प्रभाती गा रही है
ये हवा जो सामने से सिर उठाकर आ रही है

मैं इसी आबो-हवा का रुख बदलना चाहता हूँ
रोज जिसमें सभ्यता की, नथ उतारी जा रही है

देखिएगा उन घरों को, टूटकर बिखरे हुए हैं
एकता जिन-जिन घरों में, एकताएँ ला रही हैं

आप जिन रंगीनियों की सोच में डूबे हुए हैं
वो हमारी नस्ल की खुद्दारियों को खा रही हैं

मैं नशेमन में अकेला बैठकर ये सोचता हूँ
ये हवा इस अंजुमन को क्यों नवाजी जा रही है

: तीन :

जिस जगह नायाब कोठी बेहिचक तानी गई है
वो जगह मुझ झोंपड़े की, मिल्कियत मानी गई है

मैं सितमगर की मुनासिब फितरतों को जानता हूँ
ये गलतफहमी नहीं है, दुश्मनी ठानी गई है

इस कदर हिस्से किए हैं इस नुमाया जिस्म के
खून की तासीर से ही, लाश पहचानी गई है

तू समुंदर के सितम की अर्जियाँ देकर गया था
पर अभागे! जाँच में तो, ये नदी छानी गई है

आदमी मैं तल्ख हूँ, पर बा-अदब किरदार भी हूँ
शुक्र है इस मुल्क में ये कैफियत जानी गई है।

: चार :

क्या करेंगे इस नुमाइश में दुकानें हम लगाकर
अपने तौहीन कर दी दाम इतने कम लगाकर

आपको उपचार की तालीम किसने दी बताएँ
आपने तो घाव गहरे कर दिए मरहम लगाकर

भाईचारे की वकालत आप कैसे कर रहे हैं
आप तो खुद घूमते हैं मजहबी परचम लगाकर

भक्तजन उन साधुओं के वास्ते बैठे हुए है
जो अभी लौटे नहीं हैं, जंगलों से दम लगाकर

मुल्क की तकदीर जिनकी कोठियों में सड़ रही है
जी में आता है सभी को, मैं उड़ा दूँ बम लगाकर

बज्म ने मदहोश समझा, जब मैं पूरे होश में था
होश में समझा गया मैं, जब गया था रम लगाकर

: पाँच :

रक्षको! इस चौकसी में ढील कैसे आ गई
ये तो हंसों की सभा थी, चील कैसे आ गई

जिन जमीनों को मयस्सर बूँद भर पानी न था
उन जमीनों पर अचानक झील कैसे आ गई

जो अँधेरों की मुसलसल रहबरी करते रहे
आज उनके हाथ में कंदील कैसे आ गई

आपने तो मामले को आपसी मसला कहा
आपसी मसले में फिर तहसील कैसे आ गई

आपने चाबुक चलाया, आप भी क्या खूब हैं
आप ही अब पूछते हैं, नील कैसे आ गई

बज्म को हैरत हुई है, आपकी इस नज्म पर
बात इसमें बे-अदब, अश्लील कैसे आ गई

कृष्णा निलय, जौरा
जिला-मुरैना (म.प्र.)
दूरभाष : ०९४२५४५६२२६

हरसिंगार के फूलों से मेरा रिश्ता

● ऊषा निगम

हम गोंडा आ गए। उसी गोंडा शहर में, हरसिंगार के फूलों से कैसे पहली बार मेरा रिश्ता बना, कैसे ये सुगंधित पुष्प सदा के लिए मेरे जीवन में समा गए, इसे समझने के लिए अतीत को छोड़कर कुछ पल के लिए वर्तमान में आना होगा।

सवेरा होते ही मैं सबसे पहले अपने घर के उस द्वार को खोलती हूँ, जिसके बाहर पारिजात का वृक्ष लगा है। सितंबर के अंत से लेकर नवंबर के आरंभ तक यह प्रतिदिन का नियम बन जाता है। द्वार खोलते ही फूलों की भीनी सुगंध मेरा स्वागत करती है। मैं धरती पर बिछे हरसिंगार (पारिजात) के पुष्पों पर मोहित हो स्वत: उस ओर खिंची चली जाती हूँ, थोड़े से फूल चुनकर अपनी मेज पर रख लेती हूँ।

वर्ष २०१६ में एक विचित्र अनुभव हुआ। जून का महीना रहा होगा। हरसिंगार के वृक्ष के नीचे कुछ फूल दिखाई दिए। देखकर बड़ी हैरानी हुई! मैंने अपने इतने लंबे जीवन में इन फूलों को कभी बेमौसम खिलते नहीं देखा था। ये नन्हे-नन्हे फूल उतने सुंदर भी नहीं थे, फिर भी अपनी आदत से विवश उन्हें उठाने लगी थी। तभी पहली बार खयाल आया कि इन फूलों से मेरा कितना पुराना रिश्ता है।

तीन वर्ष की एक छोटी सी बालिका आँख खुलते ही घर से बाहर इन्हीं फूलों के बीच दौड़ी चली जाती थी। अपनी फ्रॉक की झोली को हरसिंगार के फूलों से भरकर दादी के पास वापस भागती चली आती थी। ये सफेद-नारंगी पुष्प न जाने क्यों उस बालिका को अपनी ओर आकर्षित किया करते थे। हाँ, वह बालिका मैं ही थी और वह शहर था—गोंडा।

मेरे मन में गोंडा शहर में व्यतीत किए दो वर्षों की स्पष्ट स्मृतियाँ हैं। आज यह तो याद नहीं कि जहाँ हम रहते थे, वह शहर का कौन सा इलाका था। संभवत: वह सिविल लाइंस ही रहा होगा। चारों ओर सन्नाटा ही सन्नाटा, बस तरह-तरह के फूल-पौधों से दोस्ती की जा सकती थी। आज भी जब मैं उन दिनों को याद करती हूँ तो फ्रॉक पहने एक छोटी सी बालिका याद आती है, जिसके पास पापा, मम्मी और दादी के अतिरिक्त

सुपरिचित लेखिका। स्वतंत्रता सेनानियों पर विशेष लेखन। पत्र-पत्रिकाओं में लेख आदि निरंतर प्रकाशित। 'कानपुर : एक सिंहावलोकन' स्मारिका भी। सन् १९७०-७२ में पी.पी.एन. कॉलेज में अध्यापन कार्य किया। संप्रति लेखन में रत।

और कोई नहीं था। समय-असमय वह वृक्षों से घिरे उस विशाल परिसर में उन्हीं के बीच घूमा करती थी। वृक्ष ही उसके संगी-साथी थे। कुछ फालसे के वृक्ष थे, जिन पर उसके मामा चढ़ जाते थे और उसे चिढ़ाने के लिए पके-पके फासले स्वयं खाते तथा अधपके फालसे उसके लिए नीचे डालते जाते थे। उनकी इस शरारत पर वह बालिका (मैं) पैर पटक-पटककर रोती-चिल्लाती रहती थी।

इन्हीं फालसे के वृक्षों के आस-पास एक झाड़ पर घुघची की लता छाई हुई थी। मैंने उसी उम्र में प्रथम और अंतिम बार घुघची की लता देखी थी। मटर समान पतली-पतली फलियों के बीच घुघची के दाने होते थे, जो पकने पर लाल हो जाते थे। वह छोटी सी बालिका घुघची की उस लता और दानों के लिए पागल रहती थी। दो वर्ष बाद जब उसके पापा का स्थानांतरण हुआ, उसके पास ढेर सारी घुघचियाँ थीं। फिर पता नहीं कहाँ खो गईं!

वर्ष ऋतु में मैं अपने आवास से दूर निकल जाती थी, जहाँ करौंदे का एक विशाल झाड़ हुआ करता था। वर्षा ऋतु में वह झाड़ करौंदों से भर जाता था। कच्चे-पके ताम करौंदे उसे बहुत आकर्षित करते थे। वह झाड़ कुछ इस प्रकार फैला हुआ था कि उसके मध्य अच्छा-खासा रिक्त स्थान बन गया था। चारों ओर झाड़ से घिरा हुआ वह छोटा सा मैदान था, जो मेरा क्रीड़ा स्थल बन जाता था। मैं घंटों वहाँ अकेली खेला करती थी। तब न तो बच्चों के अपहरण होते थे, न ही उन पर आज की भाँति चौकसी

बरती जाती थी। हाँ, आज मुझे इस उम्र में भी उस बालिका की याद डरा देती है। वर्षा ऋतु में गोंडा के उस आवास-परिसर में प्राय: बड़े-बड़े काले बिच्छु डंक उठाए पास से निकल जाते थे। प्राय: लंबे-लंबे साँपों से भी आमना-सामना हो जाया करता था। उस झाड़ के नीचे इन साँप-बिच्छुओं के मिलने की पूरी संभावना रहती थी। पर उन दिनों न तो मुझे डर लगा और न ही इस झाड़ में किसी साँप-बिच्छू से मुलाकात हुई।

बिच्छू की चर्चा आई तो एक और विचित्र चीज याद आ रही है। डंक मारना बिच्छू का स्वभाव है। हमारे परिसर में रहनेवाले चपरासियों एवं उनके पारिवारिक सदस्यों को प्राय: इस मुसीबत का सामना करना पड़ता था। डंक के भीषण दर्द से उनका चीखना-चिल्लाना आज भी मुझे याद है। इसी के साथ एक विचित्र दर्द निवारक औषधि भी याद आ रही है। बँगले के पोर्च में स्प्रिट से भरी एक शीशी रखी रहती थी, जिसमें एक मरा हुआ बिच्छू डाल दिया जाता था। जिस व्यक्ति को बिच्छू डंक मारता था, उसे यही स्प्रिट लगाई जाती थी। सब कहते थे कि इससे बिच्छू का जहर उतर जाता था। अब मुझे यह तो याद नहीं कि इस दवा का पीड़ित व्यक्ति पर कितना असर होता था, लेकिन वह शीशी स्थायी रूप से वहाँ रखी रहती थी।

शाम गहराते ही सितारों से टिमटिमाते जुगनू चारों ओर उड़ने लगते थे। उन जलते-बुझते जुगनुओं को देखकर मैं हैरान रह जाती थी। उनके टिमटिमाने के इस रहस्य को समझाने में जब कोई भी बड़ा समर्थ नहीं हुआ, तब मैंने प्रयत्न करके दो-एक जुगनुओं को शीशी में बंद करके इस रहस्य को जानने की असफल चेष्टा की थी। इन्हीं से जुड़ी एक याद और भी है। मैंने आज तक उतना बड़ा आँवला वृक्ष दोबारा कहीं नहीं देखा, जितना बड़ा वृक्ष हमारे परिसर में था। उस वृक्ष पर रात में छोटे-छोटे पीले बल्बों जैसे जुगनू चमकते रहते थे, जिनके चमकने से मैं आह्लादित हुआ करती थी।

हाँ, महुआ का एक वृक्ष और याद आ रहा है। आज की पीढ़ी 'महुआ' को नहीं जानती। मैंने बहुत करीब से उसे देखा और जाना है। उसकी मीठी भीनी खुशबू आज भी मुझे खूब याद है। मैं नन्ही सी बालिका महुए के विशाल वृक्ष के नीचे घूमती रहती, महुए बीनती रहती, खाती रहती। कभी-कभी महुए मेरे ऊपर टपक जाते, कभी मेरी झोली में आ गिरते। ताजे-ताजे महुओं का स्वाद! वाह क्या बात थी! डेयरी मिल्क, फाइव स्टार चॉकलेटें उसके स्वाद के आगे फीकी हैं।

वर्षा ऋतु में वीरबहूटियों से मुलाकात होती थी। लाल मखमल सी नरम-नरम छोटी-छोटी वीरबहूटियाँ पानी बरसने के साथ ही धरती पर दिखाई देतीं। दादी कहती थीं कि ये रामजी की बहूटियाँ हैं, सीधे आसमान से गिरती हैं। मैं छोटी सी बालिका पूरे समय उन्हें पकड़-पकड़कर किसी प्याले या कटोरी में एकत्र करती, उनसे खेलती, उनका मखमली स्पर्श मुझे सुखद लगता। किसी ने मुझसे कहा कि उन्हें चावल में डालो तो चावल भी लाल हो जाएगा। मैंने यह प्रयोग अनेक बार किया, लेकिन चावल कभी लाल नहीं हुए। भविष्य में पर्यावरण में आए परिवर्तनों ने इन खूबसूरत, लाल, मखमली वीरबहूटियों का विनाश कर दिया। बचपन के ये जुगनू, बहूटियाँ, घुघचियाँ, तितलियाँ आनेवाले अनेक वर्षों तक मेरे संगी-साथी बने रहे।

मेरी यादों में एक विकलांग बालक भी है, संभवत: किसी अफसर का बच्चा था वह। शाम को जूते-मौजे, साफ फ्रॉक पहनकर तैयार होना मेरी दिनचर्या थी। अनेक वर्षों तक यह सिलसिला चलता रहा था। हाँ, तो मैं एक बालक की बात कर रही थी। मैं उस अनाम बालक के बँगले पर कभी-कभी किसी चपरासी के साथ जाया करती थी। वह बालक भी एकदम साफ-सुथरा, तैयार अपनी व्हील चेयर पर बैठा होता। उसकी आया उसे बगीचे में घुमा रही होती। वह बालक न तो बोल सकता था, न ही चल सकता था। गले में बँधी बिब पर उसके मुँह से निकलनेवाली लार गिरती रहती थी। फिर भी मुझ बालिका की उससे दोस्ती थी। वह मुझे अच्छा लगता था। उस सीमित परिवेश में कोई अन्य विकल्प भी तो नहीं था! गोंडा छूटा तो वह बालक भी छूट गया। उस नन्ही सी उम्र के लगाव भी अस्थायी होते हैं। बच्चे पुराने साथियों को छोड़ते हैं, नयों से जुड़ जाते हैं।

पुराने साथियों को छोड़ना और नए साथियों से जुड़ने का सिलसिला तो पूरे जीवन चलता रहता है, लेकिन हरसिंगार के फूलों से मेरा जो रिश्ता चार-पाँच वर्ष की आयु में बन गया था, वह कभी नहीं टूटा। पापा के स्थानांतरण के कारण शहर-शहर भटकने के बाद १९६३ में जीवन को स्थायित्व मिला। हम लखनऊ आ गए। वहीं पापा ने निज-आवास का निर्माण कराया। गृह प्रवेश होने के उपरांत सर्वप्रथम मैंने वहाँ हरसिंगार का पौधा लगाया था। दो वर्ष बाद उसमें फूल खिलने लगे, फूल झरने लगे, मेरा उन फूलों को बीनने का सिलसिला पुन: आरंभ हो गया।

आज भी मेरे आवास परिसर में हरसिंगार के अनेक वृक्ष हैं। जीवन के ७५ वर्ष बीत गए। इन पारिजात पुष्पों का मेरे जीवन में वही स्थान है।

७४, कैंट, कानपुर-२०८००४
दूरभाष : ९७९२७३३७७७

अनदेखा भाव

मूल : **बंदिता दाश**

अनुवाद : **विजय अग्रवाल**

बेहद अक्खड़ की तरह खड़ा था वो पेड़। न कोई चिंता, न कोई डर। यद्यपि माँ और बाबा इसके लिए अकसर आपस में झगड़ते थे। माँ तो गुस्से में कहती, 'ये कटेगा, तभी मैं खाना खाऊँगी, वरना आज से मेरा उपवास है।' काफी समझाने-बुझाने के बाद ही वह खाती। थोड़े दिनों बाद फिर यही घटना दोहराई जाती। फिर वही-वही बात, उसी की पुनरावृत्ति।

आँगन के विस्तार को नजरअंदाज कर पेड़ अपनी टाँगें पसार बढ़ रहा था, सीना फुलाए, पूरी तरह लापरवाह। दादाजी के पिता ने यह पेड़ लगाया था। यह जितना बढ़ता था, दादी का गर्वीला बातूनीपन उतना ही बढ़ता जाता था। पहलेपहल वह बहुत खुश होती थीं, क्योंकि उनके ब्याह की पहली सालगिरह के उपलक्ष्य में ही यह पेड़ लगाया गया था। उन दोनों ने ही उस पेड़ की देखरेख कर उसे बड़ा किया था। किंतु एक दिन यही पेड़ दु:ख का कारण बनेगा, इसका उन्हें अंदाजा नहीं था।

सारे आँगन में पसरते हुए पेड़ जब घर के शीर्ष को छतरी की तरह ढकने लगा, तब घर की महिलाओं को काफी परेशानी होने लगी। गरमियों में तो उसकी छाँव तले समय आराम से कटता; लेकिन सर्दियों में न तो कुछ सुखाया जा सकता था, न ही थोड़ी धूप सेंकने को मिलती थी। वह एक छत्र की तरह गर्व से सिर उठाए खड़ा था। सचमुच, एक अनिंद्र, जाग्रत् प्रहरी की तरह वह हमारे घर की रखवाली कर रहा था। झड़े हुए पत्तों को बुहारने का काम परिया की माँ का था। वह कभी-कभी पेड़ पर बहुत बड़बड़ाती थी। दरअसल दादी की सख्त हिदायत थी कि आँगन हमेशा पूरा साफ-सुथरा रहना चाहिए। आँगन में एक भी पत्ता पड़ा हुआ नजर आता तो दादी चिड़चिड़ाने लगतीं। परिया की माँ पर बिगड़ती। परिया की माँ इसीलिए पेड़ पर गुस्साती। बाबा ने पेड़ के चारों तरफ एक चबूतरा बनवा दिया था, लेकिन दादी ने दक्षिण की तरफ वाला हिस्सा तुड़वा दिया था। इसलिए चबूतरा केवल तीन तरफ ही था। कोई हमारे घर आता तो सबसे पहले इसी चबूतरे पर बैठता। मामा घर से भारवाह आते तो पेड़ तले चबूतरे पर बैठ सुस्ताते, पसीना सुखाते। माँ से बतियाते हुए नानी की चिट्ठी उन्हें दादी की नजर से बचाकर पकड़ाते। चबूतरा पार करने की उन्हें इजाजत नहीं थी। मैं उसे लक्ष्मण रेखा मानता था।

दीदी जब अपने ससुराल से आतीं तो पहले उस चबूतरे पर बैठतीं। दादी माँ दौड़कर आतीं, अवाक् होकर उसे अपनी बाँहों में भर लेतीं और रुलाई की एक लंबी सी लहर खींच देतीं। इसके बाद जमी हुई शिकायतों का पिटारा, जिसे वे औरों के सामने खोल न पाती थीं, दीदी के सामने पूरा खोल देतीं। दादाजी की टोकाटाकी के बाद ही दीदी घर में प्रवेश कर पातीं। और ऐसा हर बार होता था।

चबूतरे पर चटाई बिछा कर लूडो या चौसर, बाघ-बकरी, ताश, चौपाल, धप्पा आदि खेल खेलना; गुदड़ी की सिलाई, किताब-खाता लेकर पढ़ाई का बहाना, रामायण-महाभारत पढ़ना, बाबा के कान में फुसफुसाकर कुछ कहना, दादीमाँ से कहानियाँ सुनना; दादाजी की तरह-तरह की चर्चाएँ, मजदूरों को काम की ताकीद, उनको मजदूरी में दिए जानेवाले अनाज की नाप-तौल—ऐसी न जाने कितनी बातें, कितने खेल, कितने काम वहीं होते। कुल मिलाकर हमारे घर के सारे कामों का साक्षी था वह चबूतरा।

मैंने कॉलेज में पढ़ते हुए न जाने कितनी रातें इसी पेड़ के नीचे जागते हुए काटी हैं। वह वक्त था नई-नई कविताएँ रचने का। प्रकृति का सौंदर्य निहारते हुए, भावों को कागज पर उतारने को उत्सुक। चंद्रमा ऊपर आसमान में होता, पेड़ के घने पत्तों पर अटकी चाँदनी हमारे आँगन पर उतर न पाती। चारों ओर एक श्वेत शीतल उज्ज्वलता बिखर जाती। कहीं-कहीं पत्तों से छनकर आती चंद्रकिरणें मेरे मन को और अधिक कवितोन्मुखी कर देतीं, आनंद से भर देतीं। बेहद अपना सा लगता था वह सब। मानो मैं उसके साथ एकात्म हो गई हूँ, खुद ही खुद से बातें करती। वह जैसे मुझे पहचानते हों, मेरे अंतरतम को पढ़ पा रहे हों। मैं उसे समझ पाती थी, महसूस कर पाती थी उसकी वेदना को। हम दोनों ही खामोशी की भाषा में एक-दूसरे का सुख-दु:ख बाँट लेते थे। वह वृक्ष, मैं मनुष्य··· हम दोनों की मन:स्थिति एक सी हो जाती थी उस पल।

एक दिन अचानक दादाजी चल बसे। बुढ़ापा ही वजह थी। उन्हें अर्थी पर दक्षिणमुखी लेटा दिया गया। बाबा लाई और कौड़ियाँ बिखेरते हुए आगे-आगे चलते रहे, पीछे-पीछे कीर्तन दल और आत्मीय स्वजन। दादी माँ चबूतरे पर धम्म से गिरकर बेहोश हो गईं। माँ और पड़ोस की औरतों ने किसी तरह उन्हें सँभाला। बाद में रात के अँधेरे में उनके दर्द भरे करुण क्रंदन को हमारा पेड़ भी सुन रहा था। हरदम बकबक करनेवाली

औरत, रातोरात एक गुमसुम, मौन योगी बन गई थी। कभी-कभी वह बैठे-बैठे पेड़ को सहलाती रहतीं। गोया किसी अपने को पास पाकर दुलार रही हों। अपना दर्द दिल में दबाए-छुपाए, बाहर से हिम्मत दिखाते हुए भी मन-ही-मन कसमसाती रहती थीं किसी कपोत की तरह। रात होती, घरवाले सो जाते, दादी माँ बैठी रहतीं चबूतरे पर···एकाकी विलाप करतीं। पेड़ सब सुनता रहता, कुछ कह भले ही न पाता हो, लेकिन समझता सब कुछ था। सहना उसकी तकदीर में लिखा है, यह बात वह अपनी खामोशी से बयाँ कर देता था।

'सहनशीलता अपनाए हुए व्यक्तित्व से विपत्ति भी हार मान जाती है', यह बात दादाजी यदाकदा कहते थे। और यही बात मैंने उस पेड़ से सीख ली थी। उसकी सहनशक्ति थी असीम···अप्रमेय, जिसे मैंने भी अपने जीवन-पथ में पाथेय बना लिया। कभी-कभी गुनगुनाते हुए मैं उसे कहती, "हम दोनों हार नहीं मानेंगे, चाहे जितने आँधी-तूफान आएँ। यहाँ तक कि मौत भी अपने बर्फीले कदमों से चलकर आए तो हम दोनों अचल मेरु की तरह अटल रहेंगे, तन के रहेंगे जीवन के ऊँचे-नीचे, पथरीले राजपथ पर।" इस बात को मैं और पेड़ एकात्म भाव से आत्मसात् कर, समय के साथ कदम-दर-कदम बढ़े चले जा रहे थे।

समय पंख लगाए उड़ रहा था। मैं, जो बच्चा कहलाता था, अब एक गबरू जवान बन गया था। पेड़ भी बढ़ रहा था, पहले से अधिक घनी और गर्वीली काया लिये। सूर्य-चंद्र के साथ उसका संपर्क घनिष्ठ हो चला था। वह हर मौसम में बदलता रहता था, पहले से अधिक बलिष्ठ हो जाता।

चबूतरे पर बैठकर जिस दिन मैंने अपनी नौकरी लग जाने की घोषणा की, कमर से झुक चुकी दादीमाँ ने तत्काल मेरी शादी करने का फरमान सुना दिया और पड़ोस की, पूर्व निर्धारित बहती नाकवाली लड़की को, स्वर्ण नासिका वाली बताकर मुझे हामी भरने को मजबूर कर दिया। मेरा विवाह हुआ, बहू घर आई, मेरी बेटी ने जन्म लिया। इन सभी घटनाओं का साक्षी रहा वह पेड़।

दादी माँ अब और कुछ कर नहीं पातीं···किसी सहारे से ही उठ-बैठ पाती हैं। माँ का काम बढ़ गया है। परिया की माँ भी ज्यादा बड़बड़ाने लगी है। दादी माँ का काम और ऊपर से मेरी बेटी का काम, माँ तो दादी बनने का सुख भी भली-भाँति भोग नहीं पातीं। दया आती है बेचारी माँ पर। और बाबा···वो तो एकदम निर्लिप्त, निर्विकार हैं। वे सदा से ऐसे ही हैं।

न जाने कैसे अचानक, बगैर किसी अंदेशे के, पेड़ का एक हिस्सा सूखने लगा। सभी चिंतित हो उठे, ऐसा कैसे हो गया? पेड़ के दक्षिणी हिस्से में चबूतरा नहीं था। उस ओर की ही एक डाल पहले सूखने लगी। मैंने कई बार देखा है, दादी माँ उसी ओर से खोद-खोदकर जड़ें निकालती थी और किसी-न-किसी आगंतुक को दिया करती थीं। पूछो तो पान भरे मुँह से कहती, 'तू अभी बच्चा है, तू क्या समझेगा? तुम्हारे पास तो डॉक्टर हैं, वैद्य हैं, हमारा सहारा तो ये पेड़-पौधे ही हैं।' मैं वह जड़ें उखाड़ने का रहस्य समझ नहीं पाता था। इतना गौर भी नहीं करता था। पेड़ सूखने का कारण, हो न हो, जड़ें उखाड़ना ही है, मेरी यह धारणा अब पक्की हो चली थी। इसीलिए दादीमाँ को सुनाते हुए मैं ऊँची आवाज में बोला, "तुम ऐसे जड़ें उखाड़ती रहोगी तो पेड़ बचेगा कैसे? मरने दो।" यह बात सुनकर माँ मुझ पर चिल्लाई, थोक में डाँट पड़ी। बाबा अलग गुस्सा हुए। मैं मन-ही-मन सोच रहा था कि मैंने तो ठीक ही बोला, फिर ये लोग उल्टा मुझपर क्यों गुस्सा हो रहे हैं? ओहो! पेड़ दादी माँ का है ना, इसीलिए। या फिर वे बूढ़ी हो गई हैं इसलिए। मुझे लगा मैं बेकार ही बोला, एक साधारण सी बात पर इतनी सहानुभूति? मुझे माजरा कुछ समझ नहीं आया।

पेड़ का सूखते जाना घरवालों के दुःख का कारण बन रहा था। मेरे लिए भी यह कष्टदायक था, ऐसा लग रहा था कि मेरा कोई अपना आदमी तकलीफ में हो। बाबा ने शिवजी को चढ़ा जल लाकर पेड़ पर छींटा, शालिग्रामजी के स्नान का जल भी छींटा गया। किसी ने कहा कि शनिवार के दिन भोर में, बासी मुँह, सोना या चाँदी पानी में डालकर उस पानी को छींटने से मरा हुआ वृक्ष भी जीवित हो जाता है। माँ ने वह भी करके देख लिया। यह सब देख दादी माँ एक दिन बोलीं, "अरे, तेरे दादाजी की फोटू लाकर रख दे इसके नीचे, यह उन्हें ही हेर रहा है।" यह सुनकर मैं कुछ बोलने ही वाला था कि परिया की माँ बोल उठी, "ओहो! बाँझ पेड़ के लिए इतनी तकलीफ? फल तो एक नहीं देता ये ओऊ (एक किस्म का फल), उसकी इतनी चिंता?" नासमझ परिया की माँ, क्या जाने कि इस घर के लोगों और इस पेड़ के बीच कैसा अनोखा रिश्ता है। दादी माँ ने सुना, उनकी आँखें भर आईं। मुझे भी बुरा लगा। यह महज एक पेड़ नहीं, इस घर का सदस्य है। हरेक की अपनी-अपनी भावनाएँ थीं, पेड़ की भी। फर्क बस इतना ही था कि वह अपनी बात हमारी तरह कह नहीं पाता था। खामोशी से वह जो कुछ भी कहता, उसे समझने के लिए बस एक संवेदनशील हृदय की आवश्यकता थी।

दादी माँ ने मुझे पास बुलाया। मैंने सोचा, आज डाँट पड़ेगी, परिया की माँ को भी बकेगी दादी माँ। लेकिन वह प्यार से मेरा हाथ थामकर बोली, "बाबू रे! इस फलविहीन ओऊ वृक्ष की दखिनी जड़ को कमर में बाँधने से एकशिरा (अंडकोष वृद्धि) का रोग ठीक हो जाता है। यह बात तेरे दादा ने मुझे बताई थी। आसपास के गाँवों से इतने लोग इसीलिए हमारे घर आते हैं और इनके बच्चे ठीक हो जाने पर वे खुश होकर फिर से आभार प्रकट करने आते हैं। पर तेरे दादा लोगों को कहते, "हमें नहीं, उस पेड़ को धन्यवाद बोलो। उसकी फेरी लगाकर मत्था टेको और एक बाल्टी पानी सींचो।" लोग उसके उपकार के प्रति इसी भाँति आभार प्रकट करते। केवल इसीलिए तो हम यह भूल जाते कि यह वृक्ष फल नहीं देता,

पत्ते झड़ते रहते हैं, आँगन में धूप नहीं आती। अरे, यह पेड़ है, तभी तो दसियों गाँवों के लोग उपकृत होते हैं। उसे बुरा-भला मत बोल रे! वह अपनी मर्जी से सूख रहा है तो अपनी ही मर्जी से फिर हरा हो जाएगा। तू तो अब सब कुछ जान ही गया है। मेरे दिन पूरे हों तो तू लोगों का उपकार करना। वह बेचारा फल तो दे नहीं पाता, इसी तरह लोगों का थोड़ा उपकार करके पेड़ की जून से मुक्ति पा लेगा। बेटा, तेरी-मेरी तरह यह भी इस घर का ही एक हिस्सा है, इसकी देखभाल करना। तेरे दादाजी और उनके पिताजी, जिन्हें तू डबल दादा कहता है, बहुत खुश होंगे। आशीषों से झोली भर देंगे तेरी।" मैं बिल्कुल अवाक् हो गया था, तो यह रहस्य है इसके पीछे! सच्चाई जाने बगैर मेरा मत दे देना गलत था; मैं मन-ही-मन खुद को धिक्कारने लगा।

पेड़ में सचमुच नई-नई कोंपलें निकलने लगीं। लेकिन दादी माँ धीरे-धीरे बिस्तर पकड़ने लगीं। पेड़ जब तक पूरा हरा-भरा होता, दादी माँ चल बसीं। मुझे तो लगा कि दादी माँ अपनी बची हुई उम्र उस पेड़ को दे गईं। सबके मना करने पर भी मैंने दादी माँ के शव को पेड़ की सात परिक्रमाएँ करवाईं। उनकी अस्थियों को कुछ दिनों तक पेड़ पर ही टाँगें रखा। बाबा माँ नाराज हुए, उनके साथ मेरी पत्नी भी। हालाँकि मैंने किसी की भी कोई बात नहीं सुनी। एक दिन उन अस्थियों को पेड़ के कोटर में डाल दिया और खाली कपड़े की पोटली लेकर दादी माँ की अस्थियों का गंगा में विसर्जन करने निकल पड़ा। घरवालों को झूठमूठ समझा दिया था। मुझे यकीन था कि इससे दोनों ही खुश होंगे। न फलनेवाला पेड़ और फलनेवाली दादी माँ, दोनों एकाकार होकर अनंत काल तक समाज का उपकार करते रहें...चुपचाप, खामोशी से। गंगा में 'अस्थि विसर्जन' कर लौटा तो सीधा पेड़ के नीचे माथा टेका। हवा न चलते हुए भी पेड़ में हलचल हुई, मेरी देह को उसका शीतल स्पर्श मिल रहा था। मुझे लगा कि पेड़ खुश होकर मुझे सहला रहा है।

सा अ

कविता

चीखें

• बी.एल. आच्छा

इन दिनों उगाई जाती हैं
शब्दों के गमले में
चीखें।
वे किसी कुचले जीवन की
अँतड़ियों से नहीं आतीं
न बेजुबानों की गलफाँसी से
न मंडियों में अनबिके
अनाज की रुआँसी सूरत से
न पकी फसल पर पाले की व्यथा से
न बेकसूर आदमी पर
बरसती लाठियों से
भूखे आदमी के लिए
खुद के हिस्से का निवाला नहीं
पर शब्द शोर मचा जाते हैं
वातानुकूलित चीखों में।

सपनों की तरह रिसते हैं शब्द
प्रतिकार-तनी मुट्ठियों में
स्याह अँधेरे में चमकती आँखें
लगता है प्रलय के बादल
प्रकाशमान कक्ष में
रूपांतरित हो रहे हैं
घनघनाते शब्दों में।

इन दिनों कविता के रसायन
अँधेरों चीखों के बन गए उद्योग
पहुँचते ही नहीं दुखार्त तक
छपते हैं रेशमी कागज पर
फेसबुक के अनेकवर्णी पन्नों पर
पहचाने जाते हैं लाइक्स में
धन्य हो जाते हैं कमेंट्स में
लोकार्पण के किताबी ग्राफिक्स में
दोस्तों से दोस्तों के बीच
जुगाली के रिश्तों में।

इनकार नहीं है चीखों से
कोई गुजरे मेंड़ों-खपरैलों से
पेट-पीठ की अँतड़ियों से
गोदान और मैला आँचल से
कभी दुष्यंत की लौ में
कभी धूमिल के मोचीराम की तरह
कभी चित्रा के नालासोपारा में।

संवेदनाओं को उगाने का व्यापार
शब्दों की मौसमी चीख
विमर्शों का बाजार
संस्कृति-प्रति-संस्कृति के

सुपरिचित लेखक। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के उपन्यास, सर्जनात्मक भाषा और आलोचना, 'जल टूटता हुआ की पहचान', 'आस्था के बैंगन', 'पिताजी का डैडी संस्करण' व्यंग्य प्रकाशित। देवराज उपाध्याय आलोचना पुरस्कार, पं. नंददुलारे वाजपेयी आलोचना पुरस्कार, समीक्षा सम्मान, भाषा भूषण सम्मान प्राप्त।

बाड़े और बैंडबाजियाँ
गुस्सैल चेहरों के अग्निवर्णी ताप में
पुरस्कृत हो जाती हैं
जैसे मूस में तपा सोना
पानी में गिरते ही
चमक दे गया हो
आक्रोश के पुरस्कार को।

सा अ

फ्लैट नं.-७०१, टॉवर-२७
नॉर्थ टाउन अपार्टमेंट
स्टीफेंशन रोड (बिन्नी मिल्स)
पेरंबूर, चेन्नई-६०००१२ (तमिलनाडु)
दूरभाष : ९४२५०८३३३५

भीगा है मन

• सुषमा सहरावत

युद्ध लोलुप
हैं बरबादी के गढ़
ये तानाशाह

युद्ध विनाशी
मानवता हनन
हो प्रतिकार

क्या देता युद्ध ?
विनाश सुनिश्चित
जीव-धरा का

नहीं हो युद्ध
रहे धरा का मान
बचे जीवन

यह जीवन
सुख-दु:ख प्रवाह
बहती धारा

यह जीवन
जुगनू की चमक
अनवरत

यह जीवन
धूप-छाँव का खेल
चल अथक

जीवन नैया
अथाह है सागर
ले चल पार

जी भर जिएँ
रहे मलाल नहीं
जीवन यही

भीड़तंत्र है
कराहते निर्दोष
हँसते दैत्य

महानगर
यंत्र बना मानव
लीले जीवन

भारत देश
धर्म भाषा अनेक
हम हैं एक

नदी की धारा
पीयूष स्रोतस्विनी
जीवनदात्री

सुपरिचित लेखिका। विभिन्न पुस्तकों, पत्रिकाओं और जर्नल में साहित्य एवं शोध संबंधी आलेख प्रकाशित हुए हैं। हाइकु, बाल एवं स्त्री संबंधी कविताओं का लेखन। 'अंतरराष्ट्रीय साहित्य गौरव सम्मान', 'शिक्षा रत्न राष्ट्रीय सम्मान', 'अभ्युदय अंतरराष्ट्रीय सुभद्रा कुमारी चौहान सम्मान' से सम्मानित।

भीगा है मन
मेघ की बूँदों संग
जागी उमंग

मन मयूर
नाचे बरसात में
झूम-झूम के

विनम्र भाव
मूर्खता बना आज
स्वार्थी लोग

बोझ हैं ढोते
सरपट दौड़ते
नन्हे पैर

पौधे हैं बच्चे
जरूरी देखभाल
प्यार से सींचें

भारी है बस्ता
सीढ़ी पार है कक्षा
हाँफता बच्चा

हो बहिष्कृत
बालक मजदूरी
बनें सजग

बैठो साथ में
मोबाइल छोड़ के
अपनों संग

जीवन भर
सहता सिर्फ दंश
कोमल मन

ये कैसा दौर
पनपते भेड़िए
गुम इनसान

सुहानी यादें
जीवन का संबल
निभातीं साथ

सु अ

१३४५, बी-१, वसंत कुंज
नई दिल्ली-११००७०
दूरभाष : ९८९१४८३५१६

कहानी

याद उन्हें भी कर लो•••

● रश्मि गौड़

निशा गाजियाबाद स्टेशन पर खड़ी लगातार गुस्सा खा रही थी। पाँच बरस का सेतू बड़ा उत्साहित होकर अपने सामान की निगरानी कर रहा था। ये कुली भी अजीब होते हैं, सामान छोड़कर चला गया, गाड़ी आनेवाली है, कैसे मैं सेतु को चढ़ाऊँगी, कैसे सामान चढ़ाऊँगी। इसी ऊहापोह में निशा का मन घबरा रहा था। पास ही एक जोड़ा बड़े रोमांटिक अंदाज में खड़ा हुआ था। २५ वर्ष का नौजवान फौजी लग रहा था, ऊँचा कद, गठा हुआ शरीर, सीधी कमर। नई-नई शादी लग रही थी। गाड़ी के आने का सिग्नल डाउन हुआ तो निशा ने सेतु का हाथ पकड़ा, बोली, "बेटा, गाड़ी सिर्फ दो मिनट रुकेगी, तुम जल्दी से चढ़ जाना, मैं सामान पकड़ा दूँगी।" "अरे मम्मा! मैं चढ़ा दूँगा सारा सामान, आप चिंता न करो।" सेतु ने जिम्मेदारी के साथ कहा। इस बीच गाड़ी प्लेटफॉर्म पर आ ही गई। फर्स्ट एसी कोच के सामने ही खड़े थे, तभी पासवाले नौजवान ने सेतु को दोनों हाथों में पकड़कर गाड़ी में चढ़ा दिया और दोनों बैग उठाकर गाड़ी में रख दिए। निशा भी चढ़ गई, तब कुली आया। "अब क्या आए हो? तुम्हें दिखता नहीं, बच्चा साथ में है," कहकर उसके हाथ में कुछ रुपए थमाकर अंदर आई तो देखा, सेतु उस दंपतीवाली सीट के सामने विराजमान हो चुका था। निशा बोली, "भैया, आपका बहुत-बहुत धन्यवाद, मैं बहुत घबरा जाती हूँ।"

"अरे भाभीजी, आप आराम से बैठिए, बिल्कुल परेशान मत होइए! अब सेतु से अपनी दोस्ती हो गई है, आप यहीं बैठ जाइए।"

"पर हमारी सीट तो कहीं और है!"

"तो क्या हुआ, मैं देख लूँगा।"

"सेतु का नाम तो पता चल गया, भाभीजी, मैं कैप्टन सुनील हूँ और यह सुमी।"

"अभी-अभी शादी हुई है आपकी?" निशा ने पूछा। "जी दो महीने हुए हैं।" सुमी शरमा रही थी और बहुत कम बोल रही थी। "अजी कहाँ, ये तो हमें बिल्कुल भाव ही नहीं देती", सुनील ने लंबी साँस लेते हुए कहा। सुमी और निशा दोनो हँसने लगीं। तभी एक सज्जन आए और अपना टिकट दिखाने लगे कि यह उनकी सीट है। सुनील ने उनका टिकट हाथ में लिया और बोले, "भाई साहब, प्लीज आप भाभीजी की सीट पर बैठ जाइए, हम लोग साथ-साथ हैं।" वह पहले तो कुछ हिचकिचाए, फिर कुछ सोचकर, "ओह ठीक है," कहकर निशा की सीट पर चले गए।

देहरादून का सफर कैसे कटा, पता नहीं चला। बड़ी रौनकवाला बंदा था। सेतु के साथ मानो बच्चा बन गया। कभी चिप्स तो कभी चॉकलेट, कुछ-न-कुछ खरीदकर ला रहा था। उन दिनों सोस्यो नामक पेय चला था, उसने सेतु को दिया, गाने लगा 'सोस्यो में घोला जाए फूलों का शबाब' बेचारे सेतु को पता ही नहीं चला कि शबाब शोखियों में घोला जाता है, सोस्यो में नहीं! सुमी और कैप्टन सुनील दोनों ही बड़े प्यारे इनसान थे। पहुँचने पर टेलीफोन, पता आदि का आदान-प्रदान हुआ, जरूर मिलेंगे के वादे के साथ देहरादून में एक-दूसरे से विदा ली।

सुपरिचित लेखिका। कई कहानियाँ पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित। दिल्ली के पाठ्यक्रम में बाल कहानियाँ 'रैपिड रीडर' में पढ़ाई जाती हैं। दो कहानी-संग्रह 'आधी दुनिया' तथा 'उस पार' प्रकाशित।

निशा के ताऊजी स्टेशन पर उसे लेने आए थे, उन्हीं की बिटिया की शादी थी। शादी का घर, खूब धूमधाम, नाच-गाने की प्रैक्टिस, इन सबमें खो गई निशा। तीन दिन बाद होश आया तो सुमी को फोन मिलाया, उसने बताया के सुनील तो रानीखेत पोस्टिंग पर चले गए हैं, वह भी जल्दी ही चली जाएगी।

वापसी में सेतु लगातार फौजी अंकल की बातें करता रहा; बोला कि वह भी फौज में जाएगा और अंकल के साथ मिलकर दुश्मन को हरा देगा।

जिंदगी में अनेक लोगों से हमारी मुलाकात कई तरह की होती है, लंबी चलनेवाली, मध्यम और मामूली। रिश्तेदारों, दोस्तों से मुलाकात लंबी चलती है, मध्यम में स्कूल के मित्र, पड़ोसी आदि आते हैं, मामूली मुलाकातें अकसर बस में ट्रेन में होती हैं, ये ज्यादा दिन तक नहीं टिकतीं, यही निशा के साथ हुआ।

परंतु जब भी निशा का देहरादून जाना होता, बरबस उसकी आँखें सुमी और सुनील को ढूँढ़तीं। फिर वे कभी भी नहीं मिले। १२ साल बाद निशा फिर शताब्दी से देहरादून जा रही थी, अपने उन्हीं ताऊजी की बरसी में। सेतु साथ था, जो अब १७ वर्ष का नौजवान हो गया था। आदतन निशा की आँखें कैप्टन सुनील और सुमी को ढूँढ़ रही थीं। ट्रेन के कंपार्टमेंट में अपनी सीट ढूँढ़ ही रही थी कि उसकी नजर सुमी पर पड़ी। वह चुपचाप खिड़की पर सिर टिकाए बाहर देख रही थी, साथ में एक प्यारा सा सात साल का बच्चा था। उसकी आँखों का सूनापन देख निशा का माथा ठनक गया। सूनी माँग, हल्के रंग की मामूली साड़ी। धीरे से हाथ लगाया, पूछा, "सुमी ही हो न?" सुमी उठकर खड़ी हो गई, "दीदी, आप···इतने सालों बाद!" और गले लग गई, सारे बाँध टूट गए, आँसुओं की धारा बह निकली। मन कुछ

हल्का हुआ तो दोनों व्यवस्थित हुईं, बैठ गईं।

"क्या सुमी, अकेली नजर आ रही हो, कहाँ है वह हमारा जिंदादिल फौजी?" निशा का मन तो आशंकित था, फिर भी हिम्मत करके पूछ लिया।

सुमी का गला भर आया, उसने बताया, जुलाई १९९९ के कारगिल के युद्ध में मेजर सुनील की रेजीमेंट को फ्रंट पर भेजा गया था। पाकिस्तान ने चुपचाप कारगिल की पहाड़ियों पर कब्जा कर लिया था, उनको भगाया गया। मेजर सुनील ऐसी मुश्किल चोटी पर तोप चढ़ा ले गए कि दुश्मन को क्या, हमें भी उम्मीद नहीं थी। उनकी कई चौकियाँ ध्वस्त कीं, परंतु अंत में वतन के लिए अपने प्राणों का बलिदान दे मुझे, अपने बेटे सचिन व परिवार को अकेला छोड़ गए।

निशा को याद हो आया कि पता नहीं क्यों, कारगिल युद्ध के दौरान वह काफी बेचैन रही थी। दो महीने के युद्ध में हमारे ६०० से भी ज्यादा जवान शहीद हो गए थे, जिनमें कुछ अफसरान भी थे। क्या पता था कि वह प्यारा इनसान मेजर सुनील भी अपने प्राणों की बाजी लगाकर लड़ रहा था। सेतु को 'सोस्यो' वाले अंकल बखूबी याद थे। मेजर सुनील की बहादुरी की कहानी सुनकर बोला, "मम्मा, सुनील अंकल एक बहादुर फौजी थे, उनको हमारे सैकड़ों सैल्यूट। मैं रोऊँगा नहीं, मैं भी उनकी तरह देश का जाँबाज सिपाही बनूँगा और यों ही दुश्मन के छक्के छुड़ा दूँगा, चाहे जान की बाजी क्यों न लगानी पड़े।" उसने झुककर सुमी आंटी के पाँव छू लिये, सुमी ने उसे अपने सीने से लगा लिया।

डी ३०३ आम्रपाली
ईडन पार्क, ब्लॉक : एस-२७
नोएडा-३०१३०१
दूरभाष : ९८६८८०१६१२

बेटी का घर

लघुकथा

• अश्वनी कुमार जायसवाल

यहाँ मेरे प्रवास का अंतिम दिन, कल वापस जाना है। यह मेरी कर्तव्यनिष्ठ, स्नेही, दयालु, ममतामयी बेटी का घर है। कई बार आमंत्रित किया, 'पापाजी, आप लोग हमारे यहाँ आइए।' जवाब दिया करता था, 'मौका मिलते ही जरूर आऊँगा', और यह मौका मिला उसकी माँ के न रहने के बाद।

मेरे सभी बच्चे विवाहित, वेल सैटल्ड अपनी घर-गृहस्थी में रमे, मैं अपनी पत्नी के साथ गृह नगर के निजी आवास में जीवन के चौथे चरण का आनंद ले रहा था। अचानक मेरी प्रिय पत्नी की तबीयत खराब हुई और कुछ ही दिनों में परलोक सिधार गईं, अकेला रह गया। बच्चों को चिंता हुई 'पापाजी अकेले कैसे रहेंगे?' सुझाव यह भी आया कि थोड़े-थोड़े दिन सभी के यहाँ रह लेंगे, जिसे मैंने अनसुना कर दिया। मेरा मन अपना घर 'हमारा सपना', जो अब यादों का संसार बन चुका है, को छोड़कर कहीं और जाने का नहीं होता। काफी दिनों तक बहू-बच्चों के सहित मेरे साथ रही और बेटा बाहर अपने जॉब पर। ऐसा कब तक चलता? बेटे ने तय किया कि पापाजी को साथ ले जाऊँगा, मेरे पास भी कोई विकल्प नहीं था। दिल्ली से लगे हरियाणा प्रदेश के हिसार में बहू की बहन को प्रथम संतान हुई थी तो उसे वहाँ भी जाना था, हम सभी लोग घर से साथ निकले, बहू अपनी बहन के यहा, बेटा कोलकाता जॉब पर चला गया और मैं दिल्ली में बेटी के घर पहुँच गया।

बेटी के घर कुछ दिनों के प्रवास के लिए आने से पहले सोचा करता था कि बेटी तो अपनी है, पिता-पुत्री में स्नेह भी खूब है, परंतु दामादजी क्या सोचेंगे? कैसा व्यवहार करेंगे? फिर बेटी के दो बच्चे भी तो हैं। अब जो भी हो, जीवन के अनुभव का हिस्सा होगा, मानकर बेटी के घर रहने चला आया।

बेटी के पति केंद्रीय सरकार में अधिकारी, दो सयाने होते होनहार बच्चे, बड़ी बेटी सीनियर सेकेंडरी के साथ आई.आई.टी. के लिए भी तैयारी कर रही है, छोटा बेटा सेकेंडरी परीक्षा के लिए तैयारी कर रहा है। सबकुछ ठीक-ठाक, संभ्रांत नागरिक की तरह जीवनयापन, अच्छा लगा। घर पहुँचते ही शांत-सौम्य तरीके से स्वागत हुआ, जो मन को छू गया। मेरी बेटी है ही करुणामयी, हर जरूरत का ध्यान रखा। पूरा प्रयास किया कि मैं प्रसन्नचित्त रहूँ। दामादजी ने भी मुझे पिता तुल्य समझकर समुचित सम्मान दिया। बच्चे रिजर्व रहे, लेकिन किसी बात को अनसुना नहीं किया। नानाजी के प्रति सदैव विनयावनत रहे। संपूर्ण प्रवास के दौरान यही एहसास होता रहा कि अपने घर में अपनों के बीच रह रहा हूँ। अपने निजी आवास की याद नहीं आई, न ही पत्नी के न होने के गम ने सताया। कुल मिलाकर अनुभव सुखद रहा।

आज भाई दूज का दिन, बेटा-बहू बच्चों के साथ एक दिन पहले ही आ गए थे, वापसी का रिजर्वेशन भी आज का ही है, दोपहर की गाड़ी। भाई दूज की रस्म पूरी हुई, हम लोगों ने तैयारी कर ली। ट्रेन का समय हो रहा था, टैक्सी का इंतजार था। मेरा अभिभूत मन और बेटी से बिछड़ने का गम मुझे द्रवित कर रहा था। एक दिन पहले ही चलते समय बोलनेवाले वाक्य सृजित कर लिये थे, परंतु यह क्या? आँखें नम हुईं, होंठ जैसे चिपक गए, वाक्य विस्मृत हो गए, कुछ बोल न सका, केवल हाथ जोड़े और गाड़ी में बैठ गया। मन को तसल्ली जरूर थी कि अब बेटी-दामाद को जमीन पर और नाती को सोफे पर नहीं सोना पड़ेगा।

२ रूम+स्टडी, फ्लैट
हरी नगर, नई दिल्ली-११००६४
दूरभाष : ९०४४१३४२९७

साहित्य-सेवन

• ब्रजकिशोर बक्शी

दो आत्माओं का मिलन नैसर्गिक। तृतीय का सृजन एकाकी। प्रत्येक में मस्तिष्क एवं हृदय प्रस्थापित। मस्तिष्क पर नियंत्रण हृदय स्वतंत्र। दोनों में द्वंद्व अक्षुण्ण। यही मानव जीवन। अंतर चर-अचर। मस्तिष्क में अर्जित भाव भाषा से निसृजित होता है किंतु हृदय से नैसर्गिक भाव उत्सृजन पाता है। मस्तिष्क की भाषा का भाव प्रत्येक में व्यक्तिगत स्वभाव स्थान से प्रेरित भाषा के अनुसार स्थानीय; ज्ञानी विदुषी ही आत्मसात् कर पाते हैं, किंतु हृदय के भाव चर-अचर सभी पर समान रूप से प्रभाव डालते हैं; जिसे निश्छल प्रेम की संज्ञा से अलंकृत किया जाता है। प्रेमभाव प्रत्येक प्राणि को एक नैसर्गिक अनुदान है। निस्स्वार्थ प्रेम भी एक कामना ही है, जो हृदय से उत्सृजित होती है। मस्तिष्क के द्वारा उत्सर्जित प्रेम स्वार्थपरक ही होता है, क्योंकि मस्तिष्क की भाषा अर्जित की जाती है—गुरु के द्वारा, जनक से, वाङ्मय के माध्यम से, श्रवण, दृश्य, लिपि द्वारा, ज्ञानेंद्रियों के माध्यम से; किंतु हृदय की भाषा-वाणी या शरीर के अन्य इंद्रियों द्वारा भी प्रकट होती है; जिसका सृजन पूर्व जन्म के कर्म या आध्यात्मिक आत्मिक तरंगों द्वारा होता है। फलत: उसमें एक उद्वेलन के साथ स्निग्ध आभा का वास भी होता है। किसी-किसी में इस आभा का प्रभाव इतना सघन एवं प्रभासित होता है कि आस-पास को भी प्रभावित करने लगता है, इतना ही नहीं, मस्तिष्क पर भी इसका अधिकार दृष्टिगोचर होने लगता है। चिंतन-मनन एवं स्मरण की प्रक्रिया किसी भी प्रति में उसके हृदय एवं मस्तिष्क के समन्वय की उपज होती है, मस्तिष्क में स्मृति का कोष या स्रोत हृदय से ही संचालित होता है।

हृदय निष्कलुश होता है किंतु उसी से संचालित मस्तिष्क निष्कलुश नहीं होता। उसका प्राकट्य अहं रोष, स्वार्थ एवं श्लाघायुक्त होता है। साथ-साथ बाह्य आडंबर वातावरण से भी आच्छादित होता है और उसी का प्रस्तुतीकरण होता है। ज्यों-ज्यों वय की परिधि विस्तार पाती है, बाह्य अंबर परिभाषित होता जाता है एवं सत् से पारदर्शिता घटती जाती है। वह नग्न सत्य न होकर परिमार्जित की परिधि में प्रकट होता है या यों कहें

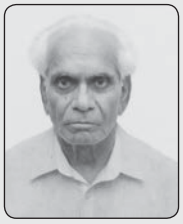

सुपरिचित लेखक। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित। साहित्यिक, आध्यात्मिक एवं दार्शनिक रचनाओं का अध्ययन, पठन एवं स्वांतः सुखाय कतिपय साहित्यिक लेखन।

कि नवीन कलेवर में परिभाषित होता है। मानव एवं इतर प्राणियों में ज्ञान के स्तर का ही अंतर है। वाग्जाल का फाँस मानव के पास है। फलत: अपनी सुखानुभूति के कृत्रिम आवश्यकताओं की लालसा, उसमें द्विपदों, चतुष्पदों पर शासन करने की क्षमता का आविष्कार पाता है और स्वयं को सभ्य की संज्ञा से अलंकृत करता है। शीतल वाणी, भावों की अभिव्यक्ति, मधुर या शुष्क व्यवहार से वन्य-प्राणी भी भय या लोभ के फलस्वरूप प्रभावित हो जाते हैं। किंतु संसार भर के उपद्रवों या अशांति का मूल कारण कटाक्ष या व्यंग्य ही है। हृदय में मस्तिष्क में कटाक्ष या व्यंग्य इतना घुसता है कि कदाचित उतना लौह निर्मित तीर या कटार भी नहीं। तीर-कटार का जख्म औषधि से तो समयांतर में भर जाता है, किंतु व्यंग्य का जख्म आजीवन रिसता रहता है। इतिहास रच देता है। भावपूर्ण वाग् संयम ही मानव हेतु ही नहीं, सभी जीवों के लिए मैत्री का प्रथम सोपान है। हृत्तंत्री की एक अभिव्यक्ति, जड़ से चेतन का मस्तिष्क से हृदय का समन्वय स्थापित कर वाङ्मय रूप में अभिव्यक्ति की जाती है, उसे ही लोग-गीत, कविता, पथ्य आदि की संज्ञा देते हैं। यही गीत-संगीत हृदय एवं मस्तिष्क में समन्वय बनाकर अलौकिक आनंद-सुकून अनुभव कराता है।

सृष्टिकर्ता ने वाङ्मय को मधुरता प्रदान करने के उद्देश्य से ही जीह्वा, कंठ जैसे इंद्रियों को कोमलता प्रदान करने के साथ पवन का सान्निध्य देकर उत्सर्जित होने का माध्यम बनाया है। मानव इसे नाद की संज्ञा से इंगित करता है। यही नाद सुख-दु:ख, शोक, संघर्ष, हास-परिहास का माध्यम भी है। जिसने इस पर नियंत्रण पा लिया, समझो मुक्ति मिल गई। इसी पर रचनाकार ने क्या ही उत्तम कहा है, 'वातहि वातहि बन पड़े,

वातहि वातहि न साय। वातहिं आदि दीप भव वातहि देत बुझाय।' हृदय के भावों की अभिव्यक्ति स्वरूपनाद के लिए चित्रांकन की कला का विकास हुआ मानव द्वारा। परिणाम वर्णमाला (अक्षर) का आविष्कार। सबसे पौराणिक संस्कृत लिपि में बावन अक्षर का निर्माण 'अ' से आरंभ होकर 'ज्ञ' तक। अर्थात् अज्ञान से ज्ञान तक। इन्हीं वर्णों के द्वारा हमारे पूर्वजों (ऋषि, मुनि, साधक) ने अपने साधना एवं कला से महामृत्युंजय, गायत्री जैसे अनंत मंत्रों का सृजन किया, जो मानव के लिए संजीविनी का कार्य करते हैं। ठीक इसी के प्रतिकूल इन्हीं अक्षरों के द्वारा अपशब्दों का निर्माण कर मानवरूपी दस्युओं से परस्पर वैमनस्य, ईष्या की भावनाओं को प्रज्वलित किया, जो युद्ध, विघटन, विनाश या मृत्यु की ओर ले जाते हैं। यानी विकास का प्रकाश नहीं, विनाश का अंधकार। तो क्या वर्णमाला के स्रष्टा को विनाश का अपराधी माना जाए। पुन: हृदय में भाव का सृजन ही सर्वश्रेष्ठता को उजागर करता है, न कि मस्तिष्क के

सृष्टिकर्ता ने वाङ्मय को मधुरता प्रदान करने के उद्देश्य से ही जीह्वा, कंठ जैसे इंद्रियों को कोमलता प्रदान करने के साथ पवन का सान्निध्य देकर उत्सर्जित होने का माध्यम बनाया है। मानव इसे ना दे की संज्ञा से इंगित करता है। यही नाद सुख-दुःख, शोक, संघर्ष, हास-परिहास का माध्यम भी है।

सृजित शब्द, जो स्वार्थ, लोभ, क्षोभ, ईर्ष्या, श्लाघा से ओतप्रोत होते हैं। वर्णमाला की आकृतियाँ क्षरित नहीं होंगी, वे अक्षर ही रहेंगी स्मृति या श्रुति में समय के विस्तार के साथ त्रुटियों की संभावनाएँ हैं। अक्षरमाला की ही देन है कि वारिधि में भी सुरक्षित रहकर वेद का ज्ञानोपार्जन सहस्र वर्षों के उपरांत भी उपलब्ध है। यही साहित्य है, जो अमरत्व को प्राप्त है। यानी मानव एवं मानवता के लिए अमृत स्वरूप है, जो सृजनकर्ता को अनश्वरता प्रदान कर देता है। साहित्य ही अमृत है। इसका सेवन ही सौभाग्य है। सेवन यानी पठन-पाठन, लेखन, प्रस्मरण एवं संग आचरण, इतिश्री।

एलमपुरायडोम, धोबी कुलम रोड पूजिथला, पी.ओ. अझियूर
वडाकरा, कोझीकोड-६७३३०९ (केरल)

लकी मैन

लघुकथा

• सत्य शुचि

गली की साफ-सफाई मेहतरानी के जिम्मे थी। वह गली में किसी को उलाहना-शिकायत का मौका कम ही दे पाती थी। सच में झाड़ू से उसकी गली साफ-सुथरी दिखती थी।

एक रोज सफाई करते-करते वह कहीं खोई-खोई सी थी कि अचानक उसके कदम उस घर के बाहर थम गए। क्षणों में गेट को थपथपाया और तेज स्वर में वह बोली, "बाबूजी, कचरा ले आओ।"

"हाँ, बोलो!" तुरंत युवक बाहर आया, "कचरा तो मेरे यहाँ है नहीं यानी कचरा होता ही नहीं है।"

"क्यों बाबूजी?" लहजा उसका विस्मित हो चला।

"आजकल, तुम्हें बातें कुछ ज्यादा ही करनी आ गई हैं···आखिर, बात क्या है?"

"बाबूजी, आज मेरी शादी की सालगिरह है!"

"तो मैं क्या करूँ? मेरी तरफ से शुभकामनाएँ।"

"ना···ना···कुछ इस फैलाई झोली में भी इनाम वगैरह···।"

"इस वक्त मैं अकेला प्राणी हूँ।"

"अकेले क्यों? मैंने इसके लिए एक उपाय ढूँढ़ रखा है, बाबूजी!"

"समझा नहीं मैं!"

"मेरी एक बहिन है, अगर आप कहें तो···!"

"तुम पागल हो गई हो क्या?"

"वह नौकरी भी करती है।"

"परंतु यह सब कैसे संभव होगा?"

"बस, आपकी मंजूरी की जरूरत है।"

"अब आपके सामने कैसी मंजूरी?"

"फिर भी, एक दफे सोचकर बता देना।"

"ठीक भी है!"

मेहतरानी जा चुकी थी। अलबत्ता उसे लगा, जिंदगी में ऐसे अवसर बार-बार नहीं आते-मिलते हैं! फौरन तसल्ली से अपने दिल-दिमाग से उसने सोचा, समय को देखते हुए इसमें बुराई या गलत भी क्या है। सो कल ही अपनी रजामंदी को वह खुले में उसके समक्ष प्रकट कर देगा।

और यकायक, वह भीतर-ही-भीतर अभी किसी गर्वानुभूति में डूब गया।

साकेत नगर, ब्यावर-३०५९०१
(राजस्थान)
दूरभाष : ९४१३६८५८२०

क्रिस्मस का त्योहार

मूल : **अंतोन चेखव**

अनुवाद : **बाल मुकुंद नंदवाना**

रूसी कथाकार और नाटककार आंतोन चेखव का जन्म दक्षिण रूस के तगानरोग में २९ जनवरी, १८६० को हुआ। १८७९ से १८८४ तक चेखव ने मॉस्को के मेडिकल कॉलेज में शिक्षा पूरी की और डॉक्टरी करने लगे। १८८० में उनकी पहली कहानी प्रकाशित हुई और १८८४ में उनका प्रथम कहानी-संग्रह १८८६ में 'रंग-बिरंगी कहानियाँ' नामक संग्रह और १८८७ में पहला नाटक 'इवानव'। चेखव ने सैकड़ों कहानियाँ लिखीं। उनमें सामाजिक कुरीतियों का व्यंग्यात्मक चित्रण किया गया है। अपने लघु उपन्यासों 'सुख' (१८८७), 'बाँसुरी' (१८८७) और 'स्टेप' (१८८८) में मातृभूमि और जनता के लिए सुख के विषय मुख्य हैं। 'तीन बहनें' (१९००) नाटक में सामाजिक परिवर्तनों की आवश्यकता की झलक मिलती है। 'किसान' (१८९७) लघु उपन्यास में जारकालीन रूस के गाँवों की दुःखप्रद कहानी प्रस्तुत की गई है। उनकी कहानियों पर अनेक चलचित्र बनाए गए। उनकी कृतियाँ ७१ भाषाओं में प्रकाशित हैं। १९०२ में उन्हें 'सम्मानित अकादमीशियन' की उपाधि मिली।

"मुझे क्या लिखना है?" येगोर ने कहा और उसने कलम स्याही में डुबो दी।

वासिलिसा ने अपनी बेटी को पिछले चार साल से नहीं देखा था, उसकी बेटी एफिम्या अपनी शादी के बाद पीटर्सबर्ग चली गई थी, उसने दो चिट्ठियाँ भेजी थीं और बाद में लगता था, वह उनके जीवन से अदृश्य हो गई। उसके बाद उन्होंने न उसे देखा था और न ही आवाज सुनी थी। वृद्ध महिला चाहे सुबह गाय को दूह रही होती, अथवा अँगीठी जला रही होती अथवा रात को ऊँघ रही होती, वह हमेशा एक ही बात सोचती रहती थी—एफिम्या कैसी होगी, क्या वह जीवित होगी। उसे एक चिट्ठी भेजनी चाहिए थी, लेकिन वृद्ध पिता लिख नहीं सकते थे और दूसरा कोई लिखनेवाला नहीं था।

क्रिसमस का त्योहार आ गया था, वासिलिसा अब और सहन नहीं कर पा रही थी। वह येगोर से मिलने सराय गई, वह सराय-मालिक की पत्नी का भाई था। जब से वह सेना से वापस आया था, सारा दिन सराय में निठल्ला बैठा रहता था। लोगों का कहना था कि अगर उसे ठीक से भुगतान किया जाए तो वह चिट्ठियाँ बहुत अच्छी लिख सकता है। वासिलिसा ने सराय के रसोइए से बात की, फिर घर की मालकिन से, और फिर खुद येगोर से। वे पंद्रह कोपैक पर राजी हुए।

और अब छुट्टियाँ शुरू होने के दूसरे दिन, सराय के रसोईघर में अपने हाथ में कलम लिये येगोर मेज पर बैठा था, वासिलिसा उसके सामने खड़ी थी विचारमग्न, उसके चेहरे पर चिंता और शोक के भाव थे। उसका पति पीटर बहुत ही दुबला-पतला आदमी, गंजा सिर, उसके साथ आया था। वह एक अंधे व्यक्ति की तरह येगोर को टकटकी लगाए सीधा देख रहा था। सिगड़ी पर सूअर के मांस का एक टुकडा सॉसपैन (हत्थेदार बरतन में) में पक रहा था; वह उछलता हुआ फुफकार मार रहा था, लग रहा था वह कह रहा हो—"फ्लू-फ्लू-फ्लू।" माहौल दमघोंटू था।

"मुझे लिखना क्या है?" येगोर ने फिर से पूछा।

"क्या?" उसकी ओर गुस्से और संदेह से देखते हुए वासिलिसा ने पूछा, "मेरी चिंता मत करो! तुम मुफ्त में नहीं लिख रहे हो। घबराओ मत, तुम्हें उसके लिए भुगतान किया जाएगा। चलो, लिखो, "मेरे प्रिय दामाद एंड्री ख्रीसानफिच को और हमारी प्यारी इकलौती बेटी एफिम्या पेत्रोवना को, हम प्रेमपूर्वक सिर झुकाते हैं, उन पर हम माता-पिता का आशीर्वाद सदैव बना रहे।"

"लिख लिया, जल्दी से आगे बोलो।"

"और हम उन्हें क्रिसमस पर शुभकामनाएँ देते हैं। हम जीवित हैं और ठीक हैं, और हम ईश्वर से तुम्हारे लिए भी यही कामना करते हैं।"

वासिलिसा सोचने लगी और वृद्ध आदमी से नजरें मिलाईं।

"और हम ईश्वर से तुम्हारे लिए भी यही कामना करते हैं।" उसने

दोहराया, और रोने लगी।

वह आगे कुछ नहीं कह पाई। लेकिन जब वह रात में लेटी हुई सोच रही थी, उसे ऐसा लग रहा था कि जो उसे कहना था, वह शायद दर्जनभर चिट्ठियों में भी नहीं कह पाएगी। जबसे उसकी बेटी अपने पति के साथ गई थी, नदी में बहुत सा पानी बह गया था, वृद्ध दंपती शोक संतप्त महसूस कर रहे थे, रात को जोर से आहें भरते थे, मानो उन्होंने अपनी बेटी को दफना दिया था। और तब से गाँव में कितनी घटनाएँ हुई थीं, कितनी शादियाँ और मौतें! कितनी लंबी सर्दियाँ! कितनी लंबी रातें!

"बहुत गरमी है," येगोर ने अपनी वास्कट के बटन खोलते हुए कहा। तापमान सत्तर डिग्री के आस-पास होगा। "आगे क्या लिखूँ? उसने पूछा।

वृद्ध दंपती चुप थे।

"पीटर्सबर्ग में तुम्हारा दामाद क्या करता है?" येगोर ने पूछा।

"मेरे अच्छे मित्र, वह सेना में सिपाही था," वृद्ध आदमी ने कमजोर आवाज में जवाब दिया, "उसने उन्हीं दिनों नौकरी छोड़ी थी, जब तुमने छोड़ी थी। वह सिपाही था, और अभी बेशक वह पीटर्सबर्ग के हाइड्रोपेथिक संस्थान में है। वहाँ डॉक्टर पानी से रोगियों का इलाज करता है। वह वहाँ डॉक्टर का अर्दली है।"

"यह देखो, यहाँ लिखा हुआ है," अपनी जेब से एक चिट्ठी निकालते हुए वृद्ध महिला ने कहा, "हमें यह एफिम्या से मिली थी, भगवान् जाने कब। हो सकता है, अब वे इस संसार में न हों।"

येगोर ने थोड़ा सोचा और तेजी से लिखना शुरू किया—

"वर्तमान समय में," उसने लिखा "क्योंकि आपके भाग्य ने आपके कर्मों के अनुसार आपके लिए सैन्य जीवन नियत किया है, हम आपको अनुशासनात्मक अपराध संहिता और युद्ध कार्यालय के मौलिक कानून ध्यान से पढ़ने की सलाह देते हैं, उसमें आप युद्ध कार्यालय के अधिकारियों की सभ्यता और परंपरा को भी पढ़ सकेंगे।"

वह लिखता रहा और लिखे हुए को जोर-जोर से पढ़ता रहा, जबकि वासिलिसा, जो उसे आगे लिखवाना था, उसके बारे में सोच रही थी। पिछले साल उनकी तंगी कितनी बढ़ गई थी, कैसे उनकी मकई क्रिसमस के पहले ही समाप्त हो गई थी, कैसे उन्हें अपनी गाय बेचनी पड़ी थी। उसे पैसे मँगवाने चाहिए, उसे लिखवाना चाहिए कि वृद्ध पिता अकसर बीमार रहते हैं और वे जल्दी ही अपनी आत्मा को ईश्वर को समर्पित कर देंगे···पर इसे शब्दों में कैसे व्यक्त करे? किसे पहले कहा जाए और किसे बाद में?

"ध्यान दें," येगोर ने लिखना जारी रखा, "सेना की नियमावली के पाँचवें खंड के अनुसार सैनिक एक जातिवाचक संज्ञा है और व्यक्तिवाचक भी, प्रथम श्रेणी का सैनिक जनरल कहलाता है और अंतिम श्रेणी का प्राइवेट सैनिक।"

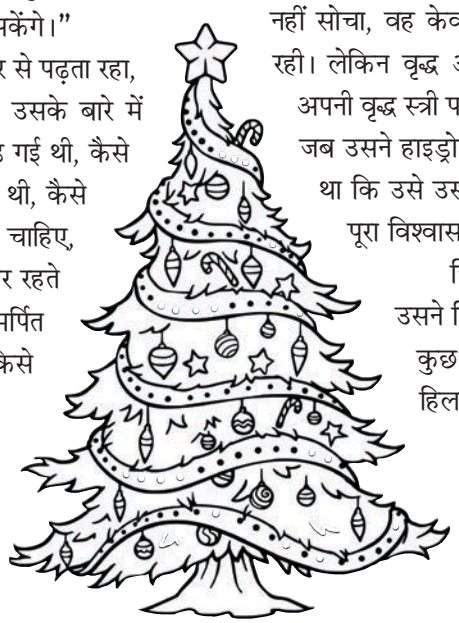

सुपरिचित लेखक तथा अनुवादक। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लेख तथा अनुदित कहानियाँ और कविताएँ प्रकाशित। संप्रति सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया में महाप्रबंधक के पद से सेवानिवृति के पश्चात लेखन में रत।

वृद्ध आदमी ने अपने होंठ हिलाए और नम्रता से कहा, "क्या पोते-पोतियों के बारे में कुछ लिखवाना ठीक रहेगा?"

"पोते-पोतियों के बारे में?" वृद्ध महिला ने पूछा, और गुस्से से उसकी ओर देखा, "शायद कोई न हो।"

"ठीक है, पर शायद हों, कौन जानता है?"

"इस प्रकार आप जान सकते हैं," येगोर जल्दी-जल्दी लिखता रहा, "आतंरिक दुश्मन कौन है और बाहरी कौन है? हमारे अंदर के शत्रुओं में सबसे प्रमुख है बैकस (यूनानी देवता, जो मदिरा का अधिष्ठाता है)।"

कलम चूँ-चूँ कर रही थी। येगोर जल्दी-जल्दी लिख रहा था और प्रत्येक पंक्ति को बार-बार पढ़ रहा था। वह स्टूल पर बैठा हुआ था और उसने अपने दोनों चौड़े पाँव मेज के अंदर फैला रखे थे, हृष्ट-पुष्ट, जानवर जैसा मोटा चेहरा और लाल साँड़ सी गरदन। वह अशिष्टता की मूरत था—भद्दा, दंभी, शराबखाने में पला-बढ़ा घमंडी। वासिलिसा अशिष्टता को खूब समझती थी, लेकिन उसे शब्दों में व्यक्त नहीं कर सकती थी, बस येगोर की ओर संदेह और क्रोध से देख सकती थी। उसका सिर दुखने लगा, उसके विचार योगोर की आवाज और अस्पष्ट शब्दों से, गरमी और उमस से गड़बड़ा रहे थे, उसने कुछ नहीं कहा, कुछ नहीं सोचा, वह केवल उस कलमघसीट के रुकने का इंतजार करती रही। लेकिन वृद्ध आदमी बड़े आत्मविश्वास से देख रहा था। उसे अपनी वृद्ध स्त्री पर, जो उसे वहाँ लाई थी, और येगोर पर भरोसा था। जब उसने हाइड्रोपेथिक संस्थान का उल्लेख किया था, ऐसा लगता था कि उसे उस संस्थान और पानी की उपचार प्रभावकारिता पर पूरा विश्वास था।

चिट्ठी पूरी करने के बाद येगोर खड़ा हुआ और उसने चिट्ठी को शुरू से अंत तक पूरा पढ़ा। वृद्ध आदमी कुछ नहीं समझा, लेकिन उसने विश्वासपूर्वक सिर हिलाया।

"वह सब ठीक है, ईश्वर तुमको स्वस्थ रखे, बिल्कुल ठीक है।"

उन्होंने मेज पर पाँच कोपेक के तीन सिक्के रखे और सराय से बाहर चले गए। वृद्ध आदमी येगोर की ओर एकदम सीधा देख रहा

था, मानो वह अंधा हो, उसके चेहरे पर पूर्ण विश्वसनीयता के भाव थे, लेकिन वासिलिसा जब सराय से बाहर आई, उसने गुस्से से कुत्ते को इशारा किया और कहा, "छिह, बिगड़ैल!"

वृद्ध महिला सारी रात नहीं सोई। वह उमड़ते-घुमड़ते विचारों से परेशान थी। सुबह होते ही वह उठ गई, अपनी प्रार्थनाएँ कीं, और चिट्ठी भेजने के लिए स्टेशन गई।

स्टेशन आठ और नौ मील के बीच के फासले पर था।

डॉ. बी.ओ. मोसेलवेइजर का हाइड्रोपेथिक संस्थान नववर्ष के दिन भी अन्य दिनों की तरह काम करता था; बस अंतर यह था कि उस दिन अर्दली एंड्री ख्रीसानफिच की वर्दी नई गोटम वाली होती, उसके जूतों की चमक कुछ अधिक होती और वह सभी आगंतुकों का स्वागत 'आपको नया साल मुबारक!' से करता।

सुबह का समय था, एंड्री ख्रीसानफिच दरवाजे पर खड़ा था और अखबार पढ़ रहा था। ठीक दस बजे जनरल आया, वह नियमित आगंतुक था, और उसके पीछे पोस्टमैन। एंड्री ख्रीसानफिच ने जनरल का ओवरकोट उतारने में उसकी सहायता की और कहा—

"मान्यवर, आपको नया साल मुबारक!"

"धन्यवाद, मेरे अच्छे दोस्त, तुम्हें भी।"

सीढ़ियाँ चढ़ते ही, दरवाजे की ओर इशारा करते हुए जनरल ने पूछा, (वह हर रोज यही प्रश्न पूछता और हमेशा जवाब भूल जाता था।)

"उस कमरे में क्या है?"

"मान्यवर, वह मालिश-कक्ष है।"

जब जनरल की पदचाप की आवाज बंद हो गई तो एंड्री ख्रीसानफिच ने डाक पर नजर डाली, उसने देखा कि उनमें उसके नाम की एक चिट्ठी है। उसने उसे फाड़कर खोला, कई लाइनों को पढ़ा, फिर अखबार देखते हुए, बिना जल्दबाजी किए अपने कमरे की ओर रवाना हुआ, जो नीचे बरामदे के आखिर में था। उसकी पत्नी एफिम्या बिस्तर पर बैठी हुई थी, अपनी बेटी को स्तनपान करवा रही थी, दूसरी बेटी, सबसे बड़ी, उसके पास खड़ी थी, और बेटा बिस्तर पर सो रहा था।

कमरे में जाकर एंड्री ख्रीसानफिच ने अपनी पत्नी को चिट्ठी दी और कहा, "लगता है, गाँव से आई है।"

और वह अखबार पर नजरें गड़ाए बाहर चला गया। उसने एफिम्या को काँपते हुए शुरू की पंक्तियाँ पढ़ते हुए सुन लिया था। वह उन शुरू की पंक्तियों को पढ़ने के बाद और आगे नहीं पढ़ पाई। उसके लिए वे पंक्तियाँ काफी थीं। उसकी रुलाई फूट पड़ी, अपनी बड़ी बेटी को, जो उसके पास खड़ी थी, गले लगाते हुए, उसे चूमते हुए उसने कहना शुरू किया और यह कहना मुश्किल था कि वह रो रही थी या हँस रही थी।

"नानी की चिट्ठी है, नाना की," उसने कहा, "गाँव से···मातृभूमि से, संतों और हुतात्माओं की भूमि से! वहाँ इस समय छतों के नीचे बर्फ के ढेर हैं···वृक्ष धवल-उजले हैं। बच्चे छोटी स्लेज पर फिसलते हैं···और प्यारे वृद्ध नाना सिगड़ी के पास हैं··· और पीले रंग का प्यारा कुत्ता है··· मेरी अपने प्रिय! मेरी अपनी जान!"

"नानी की चिट्ठी है, नाना की," उसने कहा, "गाँव से···मातृभूमि से, संतों और हुतात्माओं की भूमि से! वहाँ इस समय छतों के नीचे बर्फ के ढेर हैं···वृक्ष धवल-उजले हैं। बच्चे छोटी स्लेज पर फिसलते हैं···और प्यारे वृद्ध नाना सिगड़ी के पास हैं···और पीले रंग का प्यारा कुत्ता है···मेरी अपने प्रिय! मेरी अपनी जान!"

एंड्री ख्रीसानफिच को यह सब सुनने पर याद आया कि उसकी पत्नी ने तीन-चार बार गाँव भेजने के लिए चिट्ठियाँ दी थीं, लेकिन वह किसी-न-किसी आवश्यक काम के कारण उन्हें भेज नहीं पाया और चिट्ठियाँ पता नहीं कैसे खो गईं।

"और छोटे खरगोश खेतों में इधर-उधर भागते हैं," एफिम्या राग अलापती रही, अपनी बेटी को चूमते हुए, आँसू बहाती रही। "नाना दयालु और सज्जन हैं, नानी भी अच्छी हैं—सहृदय हैं। गाँव में सभी नेकदिल इनसान हैं, वे ईश्वर से डरनेवाले, धर्मपरायण हैं···और गाँव में एक छोटा चर्च है; किसान मिलकर प्रार्थनाएँ करते हैं। हे स्वर्ग की रानी, पवित्र माँ, हमारी रक्षा करनेवाली हमें यहाँ से दूर ले चलो!"

दूसरी घंटी बजे उसके पहले ही एंड्री ख्रीसानफिच थोड़ा धूम्रपान करने के लिए अपने कमरे में आया, एफिम्या चुप हो गई, उसने अपनी आँखें पोंछीं, हालाँकि उसके होंठ अब भी काँप रहे थे। वह उससे बहुत डरती थी। ओह, उससे कितनी भयभीत रहती है! उसकी पदचाप सुनकर, उसकी आँखों की नजर से ही वह काँपने लगती थी और आतंकित हो जाती थी। उसकी उपस्थिति में एक शब्द भी बोलने की हिम्मत नहीं जुटा पाती थी।

एंड्री ख्रीसानफिच ने सिगरेट सुलगाई, लेकिन ठीक उसी समय ऊपर घंटी बजी। उसने अपनी सिगरेट बुझाई, अपने चेहरे पर गंभीरता का भाव लाते हुए जल्दी से सामने के दरवाजे की ओर चला गया।

जनरल सीढ़ियाँ उतर रहा था, स्नान करने के बाद एकदम तरोताजा लग रहा था।

"उस कमरे में क्या है?" उसने दरवाजे की ओर इशारा करते हुए पूछा।

एंड्री ख्रीसानफिच अपने हाथों को जल्दी से नीचे अपनी पतलून की सीवन तक लाया और जोर से स्पष्ट आवाज में बोला, "मान्यवर, चारकोट शावर है!"

१५२, टैगोरनगर, हिरणमगरी, सेक्टर-३
उदयपुर-३१३००२
दूरभाष : ९९८३२२४३८३

दोहे

● सत्यशील राम त्रिपाठी

सुपरिचित रचनाकार। देश की विभिन्न पत्रिकाओं एवं साझा संकलन में दोहे एवं गजलें प्रकाशित।

कोई तो है काटता, सुविधाओं के पाँव।
जिससे पैदा हो रहे, दुविधाओं के गाँव॥

धरती ने पारित किया, अविश्वास प्रस्ताव।
बादल ने भेजा तुरत, वर्षा, पानी, नाव॥

सरसों मंतर पढ़ रहे, पहन पीत परिधान।
ध्यानमग्न बैठे हुए, बने धान यजमान॥

उम्मीदें करती रहीं, दुनिया से मुठभेड़।
पत्थर पर जैसे उगे, स्वप्न सरीखा पेड़॥

पोर-पोर में पीर है, और हृदय बेचैन।
ए के सैंतालिस हुए, प्रिया तुम्हारे नैन॥

किसी भोर की किरण ने, लिया तुम्हारा नाम।
मन दिनभर भरता रहा, यादों का गोदाम॥

उसने दो बातें कहीं, बजी प्रेम की शंख।
दिन भर बौराए रहे, मन-बादल के पंख॥

हमने रोपे थे कभी, कुछ बिरवे कुछ ख्वाब।
उनसे अबतक मिल रही, गीतों सजी किताब॥

पुस्तक में लिक्खा गया, मेरा देश महान।
भूखे पुस्तक बेचकर, करते हैं जलपान॥

दिनभर करती सभ्यता, बियरबार में डांस।
करना चाहें लोग सब, उसके संग रोमांस॥

अधनंगी है सभ्यता, घूर रहे हैं सभ्य।
पश्चिम के सम्मुख हुआ, पूर्वी सूर्य नगण्य॥

काज से बाहर हो गई, बटन स्वप्न की आज।
इसीलिए कुछ अधिक ही, उघड़ गई है लाज॥

दिया 'प्यार' ने प्यार से, मुझे प्यार की सीख।
दिल के लेखागार में, दर्ज हुई तारीख॥

मिट्ठू पिंजरे में पड़ा, मार रहा है चोंच।
स्वामी के दिल पर नहीं, पड़ती एक खरोंच॥

पानी ने पानी दिया, दिया रंग ने रंग।
फागुन भर चलता रहा, रंगीला सत्संग॥

उधर सूर्य आकाश में, टाँक रहा अरुणाभ।
इधर किरण लिखने लगीं, द्वार-द्वार शुभ-लाभ॥

पटक दी गई फाइलें, होता पक्ष-विपक्ष।
बैठे-बैठे ऊँघता, मूक-बधिर अध्यक्ष॥

बाल न बाँका कर सका, अंधकार का पाश।
उठी भोर की लेखनी, लिखने लगी प्रकाश॥

नागफनी का फूल मैं, तुम गूलर का फूल।
किंतु हमारा प्यार है, गुलमोहर का फूल॥

महँगाई के कीट सब, करते रहे अपंग।
बिटिया सरसों थी मगर, चढ़ा न पीला रंग॥

इधर-उधर सब देखते, अधर-अधर का प्यार।
इधर-अधर अंगूर है, उधर-अधर अंगार॥

लाल शर्म से लाल हैं, या गुलाल से लाल।
काट रही हैं भावजें, भरी चिकोटी गाल॥

बहते-बहते जम गया, बीच सड़क पर खून।
पुलिस समझते रह गई, सीमा का कानून॥

हवा, दवा, लाठी, पलंग, छतरी, नौका, फ्रीज।
एक पेड़ के पास है, कितनी सारी चीज॥

युवा जगत को लग गया, विज्ञापन का रोग।
शिलाजीत खाने लगे, सोलह वर्षीय लोग॥

कर-कमलों से कर रहे, कर वसूल का कार्य।
कुरसी-हित यह कार्य है, जनहित में अनिवार्य॥

फुर्सत में दो पल मिलो, पियें चाय की घूँट।
बिना तुम्हारे पी रहे, रोज हाय की घूँट॥

दिल में रखने के लिए, जजिया रहा वसूल।
प्रेम कभी था फूल सा, आज बना है शूल॥

लोन, सूद के बाद भी, जजिया और जकात।
है गरीब की जिंदगी, रात, आँत औ' लात॥

वही पुरानी मश्तियाँ, वही सेनुरी साँझ।
यादों में फिर बज उठा, वही गीतिमय झाँझ॥

हत्या, घोटाला इधर, उधर डकैती, रेप।
वर्षों से अखबार का, यही सार-संक्षेप॥

हर प्रसंग के साथ ही, बदले युग-संदर्भ।
नए समय की प्रेमिका, गिरा रही है गर्भ॥

अगर चाहते युग चले, साथ झुंड की भाँति।
पल-पल मिल-जुलकर रहें, ज्यों पिपीलिका पाँति॥

मिला प्रेम से हौसला, पा हिम्मत के पैर।
एक किरन करने लगी, कहाँ-कहाँ की सैर॥

कुचल दी गई भावना, पूछा गया न क्षेम।
प्रश्नांकित होता रहा, कालिदास का प्रेम॥

इधर कहीं से आय तो, तुरत उधर है देय।
आय देय में मिट रहा, इस जीवन का ध्येय॥

कोल्हू में सपने पिसे, मिला अश्रु का तेल।
उसी अश्रु से कर रहे, बड़े लोग धुरखेल॥

प्रेम किया दिल ने मगर मुझको नहीं सुकून।
अनायास ही पिस रहा, गेहूँ के संग घून॥

धरे रह गए वायदे, लगती रही फफूँद।
पाँच वर्ष में रेत को, मिली सिर्फ दो बूँद॥

बाँट रही पाहुर सखी, लिये सगुन का सूप।
मन में करती गुदगुदी, ये वासंती धूप॥

ग्राम-रुद्रपुर, पोस्ट-खजनी
जिला-गोरखपुर-२७३२१२ (उ.प्र.)

सांस्कृतिक-प्रौद्योगिकता और एकता की मूर्ति

● राजेश जैन

विश्व में भारत द्वारा सर्वोच्च कीर्तिमान स्थापित करने की जो चर्चा मीडिया में चला करती है, उसके तहत मेरी उत्सुकता थी कि अवसर मिलने पर गुजरात स्थित सरदार पटेल की मूर्ति-स्टेचू ऑफ यूनिटी (विश्व में सबसे ऊँची-१८२ मीटर) भी अवश्य देखूँ।

५ मार्च, २०२० को यह अवसर मिला, गुजरात बिजली वितरण निगम के गैस आधारित धुवारण विद्युत् गृह का 'एनर्जी ऑडिट' करने के पश्चात् वडोदरा से दिल्ली के लिए रात की उड़ान पकड़नी थी, मैं सुबह ही निकलकर वडोदरा पहुँच गया और साढू भाई नरेंद्रजी के परिवार से मिलने के पश्चात् ११ बजे केवड़िया में था।

रास्ते में बड़ौदा (बड़ोदरा का पुराना नाम) की यादों से सराबोर रहा, शायद पाँचवीं बार आ रहा था इस शहर में, यह स्थान इसलिए भी अविस्मरणीय है, क्योंकि जीवन की पहली हवाई उड़ान का अनुभव इस शहर से जुड़ा है। तब इंदौर इंजीनियरिंग के सेकिंड ईयर में था, शायद पड़ोसी कौंदे भाई (जो डिप्लोमा करके रोलिंग मिल में नौकरी कर रहे थे) के साथ बड़ौदा जाने का मौका मिला, बस में है हमारे सेंट पाल स्कूल के युवा टीचर खंडेलवाल सर, बतौर सहयात्री मिल गए, जो टीचरी छोड़कर अब विमान चालक बनने के लिए बड़ौदा फ्लाइंग क्लब में ट्रेनिंग ले रहे थे। उन्हीं के सौजन्य से टू सीटर छोटे विमान से दस मिनट की सोर्टी 'जॉय राइड' का पहला अनुभव मिला। पहले प्यार की तरह संवेदनशील बड़ौदा का एक हवाई चक्कर लगाकर रोमांच हो रहा था कि अब स्टेचू ऑफ यूनिटी के रूप में ऊँचाई से जुड़ा यह दूसरा अवसर भी इसी शहर से मिलनेवाला है।

सरदार वल्लभ पटेल की यह विशालकाय प्रतिमा, देश की तीसरी बड़ी नर्मदा नदी पर पहले से बने सरदार सरोवर बाँध के 'डाउन स्ट्रीम' पर डेम के निकट स्थापित की गई है। नर्मदा नदी और इस बाँध से पुराना नाता यों रहा है कि इंदौर के दिनों (१९६२-७१) में अकसर 'नर्मदा लाओ' और 'नर्मदा बचाओ' जैसे आंदोलनों की गूँज उठा करती थी। सतपुड़ा और विंध्याचल पर्वत-शृंखला के बीच बहनेवाली नर्मदा मध्य

सुपरिचित लेखक। पाँच उपन्यास, सात कथा संग्रह, आठ नाटक, तीन कविता-संग्रह, तीन ललित-निबंध तथा बाल-साहित्य की कई रचनाएँ प्रकाशित। हिंदी अकादमी दिल्ली, मध्य प्रदेश साहित्य अमादमी भोपाल, ऊर्जा मंत्रालय, भारत सरकार, चिल्ड्रन बुक ट्रस्ट द्वारा कई सम्मान प्राप्त।

प्रदेश की अमूल्य प्राकृतिक धरोहर है'''फिर दस साल विद्युत् बोर्ड की नौकरी करते हुए किसी-न-किसी रूप में इन सबसे निकटता बनी ही रही। सारनी का सतपुड़ा थर्मल प्लांट हो या चचाई का अमरकंटक प्लांट या जबलपुर का भेड़ाघाट'''अंतरंग रिश्ता बराबर बना रहा।

स्वाभाविक उत्सुकता थी—सरदार पटेल की १८२ मीटर (विश्व में सर्वोच्च) प्रतिमा को देखने की, जो चीन स्थिति भगवान् बुद्ध की १५३ मीटर ऊँचाईवाली मूर्ति से भी अधिक उठकर विश्व में अपना कीर्तिमान स्थापित कर चुकी है। इससे पूर्व उशिक (१२० मीटर) और न्यूयॉर्क की स्टेचू ऑफ लिबर्टी (९३ मीटर) भी चर्चा में रहीं।

नर्मदा तीन राज्यों से गुजरती है—मध्य प्रदेश, गुजरात और महाराष्ट्र सिंचाई और जल विद्युत् उत्पादन की सौगात बाँटती हुई। इस नदी की अपनी सांस्कृतिक और धार्मिक मान्यता है। अमृतलाल वेगड़ द्वारा लिखित नर्मदा-परिक्रमा के संस्मरण न केवल विषय संगत हैं अपितु हमारी संस्कृति-संरक्षण परंपरा के अद्‌भुत दस्तावेज भी हैं।

अमरकंटक में नर्मदा का उद्‌गम है। चचाई प्रवास के दिनों में वहाँ जाना होता था। विकट गरमी के मौसम में जैसे ही पहाड़ी पर पहुँचते, प्राकृतिक हवा एकदम शीतल हो जाती मानो किसी ए.सी. के सामने हाँ, वही नर्मदा नदी अब अपनी जलधारा के समांतर यहाँ 'कला और संस्कृति' की धारा का भी आभास करा रही है।

सरदार सरोवर बाँध में अपनी जल-ऊर्जा का संचयन करके खेतों और शहरों को क्रमश: सिंचन तथा विद्युत् ऊर्जा का वरदान करती हुई नदी जब डेम की देहरी से कदम बढ़ाती है तो सामने एकता-प्रतीक प्रतिमा

और उसका भव्य पर्यटन परिसर-स्थल मानो उसका अभिवादन करता हुआ प्रतीत होता है।

अब तक 'शब्द ऊर्जा' के संदर्भ को लेकर मैं साहित्य और प्रौद्योगिकी के समन्वय पर 'प्रौद्योगिक-साहित्यिकता' (टेक्नो-कल्चरल) का मन में अनायास उभरने लगा। स्मरण हो आया अपने नए विज्ञान-परक फेंटेसी उपन्यास 'टावर ऑन द टेरेस' की रचना प्रक्रिया का, जिसमें लगभग एक किलोमीटर ऊँचाई वाले 'सम्यक्-टॉवर' की कल्पना की गई है, जिसके टेरेस पर, उपन्यास की नायिका अपनी उच्च आध्यात्मिकता को स्थापित करने का उपक्रम करती है। मानवीय मन की स्वप्नशील ग्रंथि का ऊँचाई से सीधा सरोकर जो है। निसंदेह महत्त्वाकांक्षी स्वप्नद्रष्टा मनुष्य की सोच इमारत की तरह ऊँची-से-ऊँची होकर कुछ अलग दिखना और करना चाहती है।

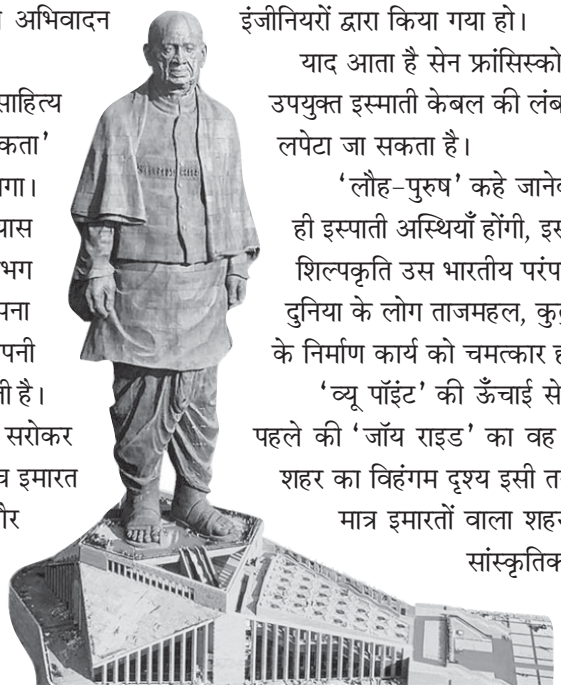

संस्कृति और विज्ञानपरक प्रौद्योगिकी का यहाँ अद्‌भुत मिश्रण दिखाई देता है, क्योंकि इस १८२ मीटर ऊँची चिमनी के निर्माण में ही उच्च तकनीकी ज्ञान और कुशलता की आवश्यकता होती है। कुछ वैसी ही पद्धति और प्रक्रिया यहाँ भी अपनाई गई है, मानो कंक्रीट के सरदार सरोवर बाँध के समक्ष ही एक और 'सांस्कृतिक बाँध' का निर्माण भी इंजीनियरों द्वारा किया गया हो।

याद आता है सेन फ्रांसिस्को का गोल्डन ब्रिज। कहते हैं, उसमें उपयुक्त इस्माती केबल की लंबाई इतनी है कि उससे धरती को पूरा लपेटा जा सकता है।

'लौह-पुरुष' कहे जानेवाले सरदार पटेल के अंदर अवश्य ही इस्पाती अस्थियाँ होंगी, इसी प्रतीक को स्थापित करती हुई यह शिल्पकृति उस भारतीय परंपरा को आगे बढ़ाती है, जिसके तहत दुनिया के लोग ताजमहल, कुतुबमीनार और अजंता-एलोरा आदि के निर्माण कार्य को चमत्कार ही मानते हैं।

'व्यू पॉइंट' की ऊँचाई से नीचे का नजारा देखते समय वर्षों पहले की 'जॉय राइड' का वह क्षण ताजा हो आया, जब बड़ौदा शहर का विहंगम दृश्य इसी तरह देखा था, अंतर इतना है कि तब मात्र इमारतों वाला शहर देखा था, अब उसमें प्रौद्योगिक-सांस्कृतिकता से सराबोर झलक भी निहित थी।

सा अ

४० करिश्मा अपार्टमेंट्स,
२७, इंद्रप्रस्थ एक्सटेंशन
दिल्ली-११००९२
दूरभाष : ९७१७७७२०६८

लेखकों से अनुरोध

- मौलिक तथा अप्रकाशित-अप्रसारित रचनाएँ ही भेजें।
- रचना फुलस्केप कागज पर साफ लिखी हुई अथवा शुद्ध टंकित की हुई मूल प्रति भेजें।
- पूर्व स्वीकृति बिना लंबी रचना न भेजें।
- केवल साहित्यिक रचनाएँ ही भेजें।
- प्रत्येक रचना पर शीर्षक, लेखक का नाम, पता एवं दूरभाष संख्या अवश्य लिखें; साथ ही लेखक परिचय एवं फोटो भी भेजें।
- डाक टिकट लगा लिफाफा साथ होने पर ही अस्वीकृत रचनाएँ वापस भेजी जा सकती हैं। अतः रचना की एक प्रति अपने पास अवश्य रखें।
- किसी अवसर विशेष पर आधारित आलेख को कृपया उस अवसर से कम-से-कम तीन माह पूर्व भेजें, ताकि समय रहते उसे प्रकाशन-योजना में शामिल किया जा सके।
- रचना भेजने के बाद कृपया दूरभाष द्वारा जानकारी न लें। रचनाओं का प्रकाशन योजना एवं व्यवस्था के अनुसार यथा समय होगा।

बाल-कहानी

सब्जी चोर

● बद्री प्रसाद वर्मा 'अनजान'

एक किसान था, जो सब्जियों की खेती करता था। किसान अपने खेतों में बैंगन, गोभी, टमाटर, मूली, भिंडी और आलू बो रखा था। किसान ने चूहा नेउर और खरगोश पाल रखा था, जो रात में खेतों की रखवाली करते थे। कुछ दिनों के बाद किसान के खेत से सब्जियों की चोरी होने लगी। सब्जियों की चोरी से किसान परेशान हो गया। एक रोज किसान ने चूहे को पास बुलाकर पूछा, बताओ, तुम सब रात में खेतों की रखवाली करते हो या सोते हो? किसान की बात सुनकर चूहा नेउर और खरगोश ने कहा—मालिक, हम सब रातभर जागकर खेतों की रखवाली करते हैं। मगर पता नहीं, चोर कैसे खेत में आकर सब्जियाँ चुरा ले जाता है। हम सब्जियों की चोरी से बहुत चिंतित हैं।

किसान ने कहा, आज रात मैं पहरा देने आऊँगा। देखता हूँ, चोर कैसे पकड़ा नहीं जाता है। इतना कहकर किसान सब्जियाँ बेचने शहर चला गया। रात में किसान खेत के चारों तरफ जाल बिछाकर अपनी मड़ई में छुपकर बैठ गया। चूहा नेउर और खरगोश भी चारों तरफ से पहरेदारी करने लगे। आधी रात के बाद सियार और लोमड़ सब्जियों की चोरी करने खेत पर आ पहुँचे और अँधेरे का फायदा उठाकर जैसे ही खेत में घुसना चाहा, वैसे ही दोनों जाल में फँस गए। जाल में फँसते ही सियार और लोमड़ चिल्लाने लगे। तभी चूहा नेउर और खरगोश मड़ई में बैठे किसान के पास पहुँचकर बोले, मालिक, जल्दी चलिए, जाल में सब्जी चोर सियार और लोमड़ फँसे हुए हैं। चोरों के पकड़े जाने की बात सुनकर किसान एक मोटा सा डंडा लेकर चोर को देखने चल दिया। किसान सियार और लोमड़ के पास पहुँचकर बोला—तो तुम दोनों हो सब्जी चोर। आज तो मैंने तुम दोनों को मारने के लिए अपना डंडा उठा लिया। तभी सियार और लोमड़ हाथ जोड़कर गिड़गिड़ाते हुए बोले—मालिक, हमें छोड़ दो, हम कसम खाते हैं, आज के बाद कभी आपके खेत की ओर नजर उठाकर भी नहीं देखेंगे। धूर्त और मक्कार झूठी कसम खाकर बचना चाहते हो, मगर मैं तुम दोनों को जिंदा नहीं छोड़ूगा। इतना कहकर किसान सियार और लोमड़ पर दनादन डंडे बरसाने लगा। सियार और लोमड़ 'बाप-बाप' चिल्लाने लगे। किसान उन सियार और लोमड़ पर तब तक डंडे बरसाता रहा, जब तक दोनों मर न गए। सियार और लोमड़ को मारकर किसान बहुत खुश हुआ। अगले दिन से किसान के खेत से सब्जियों की चोरी बंद हो गई।

सुपरिचित बाल-साहित्यकार। देश और विदेश की बाल-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित। विदेशी रेडियो के हिंदी प्रसारणों पर रचनाएँ प्रचारित। कई पुरस्कार प्राप्त।

क्रिसमस नहीं मनाएँगे

इस साल ओम, यीसु, बीनू बहुत परेशान और चिंतित दिखाई दे रहे थे। उनकी परेशानी का कारण था कि इस साल पापा घर में क्रिसमस नहीं मनाएँगे। यह बात पापा ने क्रिसमस से एक महीना पहले ही सबको बता दी थी। पापा ने क्रिसमस मनाने के लिए हर साल जो रुपए गुल्लक में इकट्ठा करते थे, वे रुपए घर के जरूरी कामों में खर्च हो गए। बीनू के जन्मदिन पर पापा ने सारे रुपए खर्च कर दिए थे। इसी से पापा क्रिसमस मनाने से इनकार कर रहे थे। यह बात जब यीसु, बीनू ने मोहल्ले के सब बच्चों को बताई तो सारे बच्चे

उदास हो गए। सब बच्चों ने ओम, यीसु, बीनू से पूछा, आखिर हमारे अंकलजी इस साल क्यों नहीं क्रिसमस मनाएँगे? हम सब जानना चाहते हैं। बच्चों की बात सुनकर ओम बोला, साथियो, इस साल हमारे पापा के पास क्रिसमस मनाने के लिए रुपए नहीं हैं। इसलिए हम क्रिसमस नहीं मनाएँगे। इतना सुनते ही सारे बच्चे बोल पड़े—हम सब मिलकर रुपयों का इंतजाम करेंगे। हम क्रिसमस जरूर मनाएँगे। सब बच्चों की बात सुनकर ओम, यीसु और बीनू बोल पड़े, क्रिसमस मनाने के लिए रुपए आएँगे कहाँ से? हम सब आज ही से पॉकेट खर्च का पैसा बचाकर गुल्लक में जमा करेंगे। अभी तो क्रिसमस आने में तीस दिन बाकी हैं। तीस दिन में हम सब बहुत सारे रुपए जमा कर लेंगे और धूमधाम से अपने अंकल के साथ किसमस मनाएँगे। क्रिसमस के दो दिन पहले बच्चों ने वर्मा अंकल के घर में केक, टॉफी, बिस्कुट, मिठाइयाँ क्रिसमस-ट्री, झालर, गुब्बारे, मोमबत्तियाँ और लोहबान सब कुछ लाकर रख दिया। किसमस के दिन बच्चे क्रिसमस की सजावट में जुट गए। घर में क्रिसमस मनाए जाने की तैयारी को देखकर वर्मा अंकल मोहल्ले के सारे बच्चों से पूछ पड़े, बताओ बच्चो, क्रिसमस मनाने के लिए तुम सबके पास इतने रुपए कहाँ से आए? कहीं तुम सबने चोरी तो नहीं की? वर्मा अंकल की बात सुनकर सारे बच्चे बोल पड़े—अंकलजी, हमें एक महीना पहले ओम, यीसू और बीनू से पता चल गया था कि इस साल आप रुपयों की वजह से क्रिसमस नहीं मनाएँगे। हम सब बच्चों ने अपना पॉकेट खर्च बचाकर यह रुपया जमा कर लिया, ताकि हम सब खूब धूमधाम से क्रिसमस मना सकें। अब तो आप हमारे साथ क्रिसमस मनाएँगे न? सब बच्चों की बात सुनकर वर्मा अंकल के चेहरे पर छाई उदासी खुशी में बदल गई। घर में ओम, यीसु और बीनू मोहल्ले के सारे बच्चों के साथ मिलकर क्रिसमस मनाने में जुट गए। पूरा घर हैपी क्रिसमस के नारों से गूँज उठा।

गल्लामंडी गोला बाजार
गोरखपर-२७३४०८ (उ.प्र.)
दूरभाष : ९८३८९११८३६

पाठकों से निवेदन

- ❖ जिन पाठकों की वार्षिक सदस्यता समाप्त हो रही है, कृपया वे सदस्यता का नवीनीकरण समय से करवा लें। साथ ही अपने मित्रों, संबंधियों को भी सदस्यता ग्रहण करने के लिए प्रेरित करने की कृपा करें।
- ❖ सदस्यता के नवीनीकरण अथवा पत्राचार के समय कृपया अपने सदस्यता क्रमांक का उल्लेख अवश्य करें।
- ❖ सदस्यता शुल्क यदि मनीऑर्डर द्वारा भेजें तो कृपया इसकी सूचना अलग से पत्र द्वारा अपनी सदस्यता संख्या का उल्लेख करते हुए दें।
- ❖ चैक साहित्य अमृत के नाम से भेजे जा सकते हैं।
- ❖ ऑन लाइन बैंकिंग के माध्यम से बैंक ऑफ इंडिया के एकाउंट नं. 600120110001052 IFSC–BKID 0006001 में साहित्य अमृत के नाम से शुल्क जमा कर फोन अथवा पत्र द्वारा सूचित अवश्य करें।
- ❖ आपको अगर साहित्य अमृत का अंक प्राप्त न हो रहा हो तो कृपया अपने पोस्ट ऑफिस में पोस्टमैन या पोस्टमास्टर से लिखित निवेदन करें। ऐसा करने पर कई पाठकों को पत्रिका समय पर प्राप्त होने लगी है।
- ❖ सदस्यता संबंधी किसी भी शिकायत के लिए कृपया फोन नं. 011-23257555, 8448612269 अथवा sahityaamritindia@gmail.com पर इ-मेल करें।

बाल-कविता

पापा, जब तुम दिल्ली जाना

● **अर्चना बाजपेई**

: एक :
खिड़की का परदा है खोला,
बच्चो उठिए, सूरज बोला।

जल्दी जगना जल्दी सोना,
समय कभी मत अपना खोना।

आई सुंदर सुबह सुहानी,
छोड़ो आलस की मनमानी।

अपना उठकर काम करो तुम,
अधिक नहीं आराम करो तुम।

तुम्हें नेक मानव है बनना,
पढ़ो, ज्ञान का पहनो गहना।

: दो :
निकला सूरज नभ में प्यारा,
लाल हुआ भूमंडल सारा।

कितनी प्यारी भोर सुहानी,
गौरैया करती मनमानी।

दादी की बजती है घंटी,
दूध माँगता भूखा बंटी।

मिट्ठू बोले सीताराम,
तब पाता है मिर्ची-आम।

उधर रँभाती श्यामा गाय,
दादू माँगे माँ से चाय।

पापा की खोई है फाइल,
बुआ करें सुंदर स्माइल।

मम्मी सरपट दौड़ लगाती,
पूरे घर में आती-जाती।

दिनभर करती घर के काम,
जरा नहीं करती आराम।

सूरज जाए चंदा आए,
तब माँ को बिस्तर मिल जाए।

: तीन :
छोटी सी एक गुड़िया रानी,
करती रहती है मनमानी।

सबकुछ करती माँ के जैसा,
चूल्हा चौका बरतन वैसा।

छिप-छिपकर शृंगार बनाती,
शीशा देखे फिर मुसकाती।

जिद करती शादी करवाओ,
छोटा सा एक दूल्हा लाओ।

मुझको भी भेजो ससुराल,
फोन से पूछो मेरा हाल।

पापा, जब तुम दिल्ली जाना,
छोटा सा इक दूल्हा लाना।

गोलक से पैसे दे दूँगी,
अब भैया से नहीं लड़ूँगी।

सुपरिचित रचनाकार। पत्र-पत्रिकओं में रचनाएँ प्रकाशित। अखिल भारतीय दोहा सम्राट्, मुक्तक सम्राट्, गीत शिरोमणि, मुक्तक शिरोमणि, ५१ कुंडलियाँ सम्मानित। आकाशवाणी से रचनाओं का प्रसारण।

: चार :
मेरी गुड़िया है बीमार,
आया कल से तेज बुखार।

नहीं अभी तक आँखें खोली,
दी बुखार की दो-दो गोली।

डॉक्टर को भी फोन लगाया,
कई बेल में गया उठाया।

तब उनको सब हाल बताया,
क्या-क्या गुड़िया ने था खाया।

बोले डॉक्टर क्लीनिक आओ,
सारी जाँचें फिर करवाओ।

पता चलेगी तब बीमारी,
क्यों रोगी है गुड़िया प्यारी।

: पाँच :
माँ मुझको मोबाइल ला दे,
मैं भी कविता लिखा करूँगा।

जुड़ जाऊँगा सभी मंच से,
भाँति-भाँति के छंद रचूँगा।

लोग कहेंगे खूब लिखा है,
नहि जबाव है मित्र तुम्हारा।

मानपत्र फिर मुझे मिलेंगे,
जिसमें होगा चित्र हमारा।

लाइव भी मैं पाठ करूँगा,
अपना रोब जमा लूँगा।

गीत गीतिका दोहा मुक्तक,
सबके ग्रंथ छपा लूँगा।

बन जाऊँगा बड़ा कवि मैं,
खूब कमाऊँ जग में नाम।

सभी मंच के संस्थापक को,
छोटे कवि का कोटि प्रणाम।

आता हूँ मैं आता हूँ मैं,
छंद पोटली लेकर साथ।

भेजो मेरे मोबाइल पर,
संस्थापकजी अपना हाथ।

३/६२७ सनेही धाम, विष्णुपुरी
हरदोई (उ.प्र.)
दूरभाष : ७३९८७४८२४६

पाठकों की प्रतिक्रियाएँ

दीपों से अलोकित आकर्षक मुखपृष्ठ वाला 'साहित्य अमृत' का अक्तूबर अंक थोड़ा विलंब से प्राप्त हुआ। संपादकीय 'रामकथा' शिक्षाप्रद व पठनीय है। पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' की कहानी 'अवतार' इस अंक का स्तंभ है। बी.एल. गौड़ का गीत 'इतना ध्यान रहे' तथा सुरेश अवस्थी के 'गीत' अच्छे लगे। मीरा सीकरी की कहानी 'अज्ञात' भावपूर्ण है। सुमन चौरे का निबंध 'झर रहा है पारिजात' ज्ञानयुक्त व पठनीय है। तुलसी देवी तिवारी की कहानी 'अंशदान' कथारस से भरपूर, रोचक व मर्मस्पर्शी है। कुलभूषण सोनी का आलेख 'धनतेरस पर्व और लोक-संस्कृति' ज्ञान को बढ़ानेवाला है। इस अंक की कविताओं ने मन को बागबाग कर दिया। प्रेमपाल शर्मा के यात्रा-संस्मरण से घर बैठे यात्रा-लाभ सहज-सुलभ हुआ, साथ ही ज्ञानवर्धन भी हुआ। साहित्य की अनेक विधाओं की स्तरीय रचनाएँ पढ़वाने के लिए संपादक-मंडल का बहुत-बहुत आभार।

—जया कौशिक, अजमेर (राज.)

'साहित्य अमृत' का नवंबर अंक समय से पढ़ने को मिला। संपादकीय 'ताकि देश की नींव सुदृढ़ हो' बालदिवस को केंद्र में रखकर लिखा गया है, जो बच्चों और अभिभावकों के लिए तथ्यसंगत है। प्रतिस्मृति में विवेकी रायजी की कहानी 'गोरी का गाँव' अच्छी लगी। यह कहानी उनके लेखन-कला का बेजोड़ उदाहरण है। उषाकिरण खान की कहानी 'विडंबना' रोचक है। इस कहानी के माध्यम से लेखिका ने उन लोगों को आईना दिखाने का काम किया है, जिन्होंने भारत जैसे गरीब देश में शिक्षा को व्यापार बना लिया है। सुरेश जैन के आलेख 'अपने जीवन के अमृतकाल का आनंद लें' में खोजपूर्ण जानकारी परोसी गई है।

—अनुज पाठक, मेरठ (उ.प्र.)

'साहित्य अमृत' का नवंबर अंक आकर्षण मुखपृष्ठ के साथ मिला। इस अंक में एम.डी. मिश्रा 'आनंद' की कहानी 'अपने-पराए' वर्तमान परिवेश में बहुत ही सार्थक प्रतीत होती है। सुरेश बाबू मिश्रा की कहानी 'आखिरी प्रणाम' अच्छी लगी। 'एकात्म मानववाद' शोध-आलेख के लिए अवधेश कुमार जैन को ढेर सारी शुभकामनाएँ। आशा शर्मा की बाल-कहानी मनोरंजक व ज्ञानवर्धक है। अन्य रचनाएँ भी पठनीय एवं सग्रहणीय हैं।

—कविता जैन, नई दिल्ली

'साहित्य अमृत' का नवंबर अंक मिला। मुखपृष्ठ एक बार पुन: बालपन की यादें जीवंत कर गया। संपादकीय 'ताकि देश की नींव सुदृढ़ हो' अच्छा लगा, जो देश के भविष्य, यानी बच्चे-बच्चियों को सुदृढ़ करने की ओर ध्यान आकृष्ट करता है। सेवा सदन प्रसाद ने अपनी लघुकथा 'एक हकीकत' में बड़े संक्षेप में, पर एक ज्वलंत मुद्दे बेरोजगारी पर केंद्रित है। लेखक ने इसके माध्यम से मजबूर पढ़ी-लिखी महिलाओं की ओर शासन-प्रशासन का ध्यान आकृष्ट करने की कोशिश की है। इसके लिए लेखक साधुवाद के पात्र हैं। जे.पी. रावत की बाल-कविताएँ रोचक व ज्ञानवर्धन करनेवाली हैं। विकेश निझावन की कहानी 'चीरहरण' में इनसान के स्वार्थी चरित्र का चित्रण किया गया है। विद्वत्तापूर्ण आलेख 'अपने जीवन के अमृतकाल का आनंद लें' वरिष्ठ नागरिकों के लिए बहुत ही लाभकर सिद्ध होगा। इसके लिए लेखक सुरेश जैनजी को साधुवाद। शेष अन्य रचनाएँ भी रोचक व ज्ञानवर्धक हैं। 'साहित्य अमृत' हर अंक में उच्च कोटि की रचनाएँ परोसती है। इसके लिए 'साहित्य अमृत' परिवार को ढेरों शुभकामनाएँ।

—राहुल वर्मा, भोपाल (म.प्र.)

'साहित्य अमृत' का नवंबर अंक मिला। संपादकीय 'ताकि देश की नींव सुदृढ़ हो' में जो उद्‌गार बच्चों के प्रति हैं, वे चेतनापरक एवं संदेशपरक हैं। प्रतिस्मृति की कहानी 'गोरी का गाँव' विवेकी राय की साहित्यिक विराटता का दर्शन कराती है। सुरेश जैन के आलेख 'अपने जीवन के अमृतकाल का आनंद लें' में उनके जीवनानुभवों की गहराई का ज्ञान होता है। लघुकथा 'लिबास' में सेवा सदन प्रसाद ने लिबास से मानव-मन को आँकनेवाले को आईना दिखाया है। कुमुद शर्मा ने अपने आलेख 'संवाद की परंपरा में लोकमंथन की सार्थकता' में भारतीय संस्कृति में संवाद के महत्त्व का बखूबी वर्णन किया है। वर्तमान समय में संवाद-परंपरा की आवश्यकता है, लेकिन वह संवाद सार्थक होना चाहिए, न कि विवाद पैदा करनेवाला, जैसा कि वर्तमान में देखने को मिल रहा है। राजेश ओझा की कहानी 'सलोनी का फोन' मार्मिक है। इस कहानी में महँगू अपने पिता के अंतिम वाक्य को आत्मसात् करता है और छोटे भाई के साथ एक पिता के समान व्यवहार करता है, अपने सुखों का त्याग कर परिवार को साथ लेकर चलता है। धीरेंद्र प्रसाद सिंह का आलेख 'साहित्य में सौंदर्यवादी सृष्टि' ज्ञानवर्धक बन पड़ा है। अश्विनी कुमार दुबे का हास्य-व्यंग्य गुदगुदाने, हँसाने के साथ भरपूर मनोरंजन करता है। सभी रचनाएँ एक से बढ़कर एक हैं।

—अमित कुमार, हरिद्वार (उत्तरा.)

'साहित्य अमृत' का नवंबर अंक प्राप्त हुआ। अंक की सभी कहानियाँ अच्छी लगीं। राजेश ओझा की कहानी 'सलोनी का फोन' और विकेश निझावन की कहानी 'चीर-हरण' विशेष रूप से अच्छी लगीं। सभी आलेख ज्ञान में वृद्धि करनेवाले हैं। माणिक तुलसीराम गौड़ की 'बाल-पहेलियाँ' मन को भाईं। आशा शर्मा की बाल-कहानी 'झल्लर बिल्ला और होशियार जुगनू' शिक्षाप्रद है। साहित्य का भारतीय परिपार्श्व में रमण मेकवान रचित एवं राजेंद्र निगम द्वारा अनूदित गुजराती कहानी 'मेडम का डॉगी' स्त्री-प्रेम का दर्पण है। कुल मिलाकर यह अंक भी प्रेरक, शिक्षाप्रद, पठनीय तथा संग्रहणीय बन पड़ा है।

—शोभा कुमारी, पटियाला (पंजाब)

वर्ग पहेली (२००)

अगस्त २००५ अंक से हमने **'वर्ग पहेली'** प्रारंभ की, जिसे ज्ञान-विज्ञान की अनेक पुस्तकों के लेखक **श्री विजय खंडूरी** तैयार कर रहे थे; उनके देहावसान के उपरांत अब **श्री ब्रह्मानंद खिच्ची** इसे तैयार कर रहे हैं। हमें विश्वास है, यह पाठकों को रुचिकर लगेगी; इससे उनका हिंदी ज्ञान बढ़ेगा और पूर्व की भाँति वे इसमें भाग लेकर अपना ज्ञान परखेंगे तथा पुरस्कार में रोचक पुस्तकें प्राप्त कर सकेंगे। भाग लेनेवालों को निम्नलिखित नियमों का पालन करना होगा—

१. प्रविष्टियाँ छपे कूपन पर ही स्वीकार्य होंगी।
२. कितनी भी प्रविष्टियाँ भेजी जा सकती हैं।
३. प्रविष्टियाँ ३१ दिसंबर, २०२२ तक हमें मिल जानी चाहिए।
४. पूर्णतया शुद्ध उत्तरवाले पत्रों में से ड्रॉ द्वारा दो विजेताओं का चयन करके उन्हें तीन सौ रुपए मूल्य की पुस्तकें पुरस्कारस्वरूप भेजी जाएँगी।
५. पुरस्कार विजेताओं के नाम-पते फरवरी २०२३ अंक में छापे जाएँगे।
६. निर्णायक मंडल का निर्णय अंतिम तथा सर्वमान्य होगा।
७. अपने उत्तर **'वर्ग पहेली', साहित्य अमृत, ४/१९, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-२** के पते पर भेजें।

वर्ग पहेली (१९८) का शुद्ध हल

१ रो	२ ज	३ म	र्रा	■	४ द	५ गा	■	६ पै
७ म	ह	ल	■	८ नि	र्ज	र	■	र
■	नु	■	९ अ	ल	■	१० द	११ र	प
१२ क	म	१३ ल	न	य	१४ न	■	१५ फ	क
लं	■	१६ स	ची	■	१७ क	१८ बा	■	ड़
१९ क	२० ल	■	२१ ता	२२ ती	ल	म	२३ ना	ना
२४ ल	च	२५ का	■	२६ मा	ची	■	सा	■
ग	■	२७ म	२८ ह	र	■	२९ चं	गु	३० ल
ना	■	३१ द	ल	■	३२ चं	द्र	हा	स

★ पुरस्कार विजेता ★

१. **श्री राजेश कुमार**
पुत्र श्री होशियार सिंह
ग्रा.-पो. गोमला-१२३०३४
तहसील-कनीना,
जिला-महेंद्रगढ़
दूरभाष : ९९९१३२३८९२

२. **श्री सुभाष शर्मा**
ए २/१८४, ग्राउंड फ्लोर
सफदरजंग एन्क्लेव
नई दिल्ली-११००२९
दूरभाष : ९५८२६१७१९०

पुरस्कार विजेताओं को हार्दिक बधाई।

वर्ग-पहेली १९८ के अन्य शुद्ध उत्तरदाता हैं—सर्वश्री सतेंद्र कुमार शास्त्री (कनीना), खुशी खिच्ची (कुरुक्षेत्र), सपना (महेंद्रगढ़), अनिल कुमार (कनीना), संतलाल रोहिल्ला (महेंद्रगढ़), जगदीश चंद (कैथल), फकीरचंद ढुल (कैथल), माला श्रीवास्तव (ग्रेटर नोएडा), वाई.के. श्रीवास्तव (जबलपुर), दिनकर सहल (दिल्ली), दिनेश कुमार (हरिद्वार), सौरभ द्विवेदी (बनारस), सुनीता गर्ग (गुरुग्राम), विनीता सहल (मुंबई)।

वर्ग पहेली (२००)

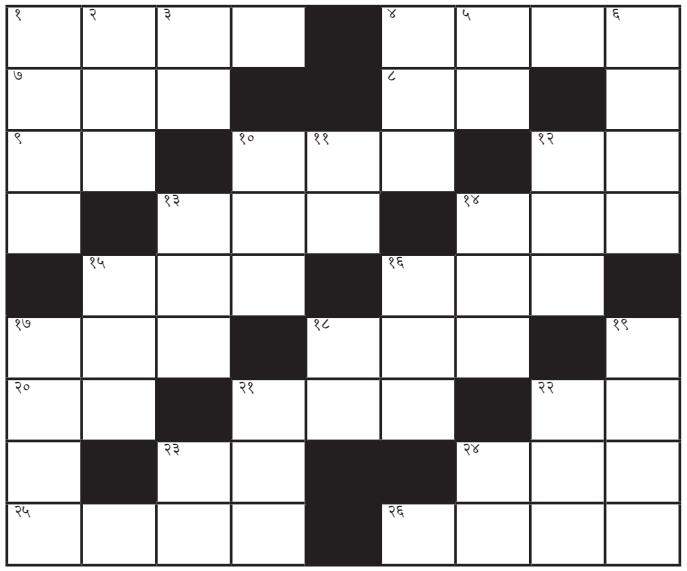

बाएँ से दाएँ—

१. दोषी, कसूरवार (४)
४. एक तरह की खुली पालकी, सांसारिक झंझट (४)
७. कृत्रिम जलमार्ग (३)
८. बीच, दरमियान, बकरा (२)
९. मृत्यु, संसार (२)
१०. सितार जैसा एक बाजा (३)
१२. एक एक अंकीय संख्या (२)
१३. वेश्याओं का दलाल (३)
१४. इच्छा, कामना (३)
१५. अति मूर्ख, आपे से बाहर (३)
१६. गुरु, मंत्रोपदेष्टा (३)
१७. पानी का छींटा, पसीना, एक शहर (३)
१८. चारों ओर फैला हुआ (३)
२०. प्रकृति के तीन गुणों में से एक (२)
२१. एक प्रकार का साग, रक्षक (३)
२२. शरीर से निकली हुई हवा (२)
२३. जौ, यव (२)
२४. छोटी इलायची, छोटी लड़की (३)
२५. परम कृपालु, परमात्मा (४)
२६. कमल, अंबुज (४)

ऊपर से नीचे—

१. उदास, खिन्न (४)
२. जमाना, तीन घंटे का समय (३)
३. झगड़ा, तकरार (२)
४. गरमी से उत्पन्न सिर का चक्कर, बेहोशी (३)
५. नशे में चूर, बेफिक्र (२)
६. विद्यालय, पाठशाला (४)
१०. धान्य, चावल (३)
११. पिता की बहन (२)
१२. दुःख देनेवाला, चुभनेवाला (३)
१३. सड़ा हुआ अन्न, छल, बाजीगरी (३)
१४. सूत्रधार, बढ़ई (३)
१५. काला नमक, परिणामशूल, अफरा (३)
१६. दीया, चिराग (३)
१७. हलधारण करनेवाला, बलराम (४)
१८. साँप, दुष्ट, राजा, भयानक (२)
१९. हस्तांतरित होना, मरना (४)
२१. पवित्र, शुद्ध (३)
२२. पिता, बाप (३)
२३. संग्रह किया हुआ (२)
२४. कथन, वचन (२)

प्रेषक का नाम : .....

पता : .....

.....

.....

दूरभाष : .....

वर्ग पहेली (१९९) का हल अगले अंक में।

डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' सम्मानित

१६ तथा १७ अक्तूबर को स्वर्गाश्रम, ऋषिकेश में हिमालय विरासत ट्रस्ट, स्याही ब्लू बुक्स, नई दिल्ली तथा हिमालयीय विश्वविद्यालय, देहरादून द्वारा आयोजित दो दिवसीय साहित्यिक सारस्वत महाकुंभ में पूर्व केंद्रीय शिक्षा मंत्री तथा सांसद श्री रमेश पोखरियाल 'निशंक के 'रचना-संसार' पर ८०वीं पुस्तक-वार्त्ता के अवसर पर 'हार्वर्ड बुक ऑफ वर्ल्ड रिकॉर्ड्स' के सचिव श्री आशीष जायसवाल ने निशंकजी को रिकॉर्ड का प्रमाण-पत्र भेंट किया। अध्यक्षता श्री तेजेंद्र शर्मा ने की, मुख्य अतिथि परमार्थ निकेतन के पूज्य स्वामी चिदानंद थे। कार्यक्रम में सर्वश्री बाबा रामदेव, सुबोध उनियाल, भूपेंद्र कुमार सिंह 'संजय', प्रीतम भरतवाण ने अपने विचार व्यक्त किए। अनेक साहित्यकारों ने निशंक साहित्य पर चर्चा एवं समीक्षा की। ३५ से अधिक देशों के प्रबुद्ध साहित्यकार इस कार्यक्रम में जुड़े। ☐

सम्मान समारोह संपन्न

७ नवंबर को प्रयागराज विकास प्राधिकरण के कॉन्फ्रेंस हॉल में आचार्य पृथ्वीनाथ पांडेय द्वारा संपादित क्रांतिगाथात्मक कृति 'स्वातंत्र्य समर में इलाहाबाद का शंखनाद' का लोकार्पण संपन्न हुआ। मुख्य अतिथि श्री अरविंद चौहान तथा विशिष्ट अतिथि श्री अजीत सिंह थे। पुस्तक में सम्मिलित १६ लेखक-लेखिकाओं को शॉल, स्मृतिचिह्न तथा पुस्तक प्रदान कर 'क्रांतिधर्मी सारस्वत सम्मान' से आभूषित किया गया। ☐

साहित्य-सम्मेलन संपन्न

३० अक्तूबर को सिरसा में हरियाणा प्रादेशिक लघुकथा मंच के तत्त्वावधान में हरियाणा हिंदी साहित्य सम्मेलन का आयोजन डॉ. शील कौशिक एवं प्रो. रूप देवगुण के द्वारा किया गया। चार सत्रों में संपन्न हुए इस कार्यक्रम में सर्वश्री विजय कुमार, रितु विजय, अंजलि सिफर और पंकज शर्मा ने भाग लिया। इन सभी को 'लघुकथा सेवी सम्मान' से सम्मानित किया गया। कार्यक्रम में श्री विजय कुमार एवं सुश्री अंजलि सिफर ने अपनी लघुकथाओं का पाठ भी किया। श्री योगराज प्रभाकर ने समीक्षात्मक टिप्पणी की। ☐

सम्मान समारोह संपन्न

१६ अक्तूबर को इंदौर में मायाराम सुरजन स्मृति भवन में आयोजित मध्य प्रदेश हिंदी साहित्य सम्मेलन के तीन दिवसीय सुरजन स्मृति मध्य प्रदेश साहित्योत्सव में श्री संदीप राशिनकर को प्रतिष्ठित सप्तपर्णी सम्मान से सम्मानित किया गया, जिसमें श्री विजय बहादुर सिंह एवं श्री बलराम गुमाश्ता की अध्यक्षता में मुख्य अतिथि न्यायाधीश विवेक अग्रवाल रहे। संचालन श्री विजय कुमार अग्रवाल ने व आभार श्री पलाश सरजन ने व्यक्त किया। ☐

प्रविष्ठयाँ आमंत्रित

कोलकाता की सुप्रिसिद्ध राष्ट्रीय, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं साहित्यिक चेतना जागरण केंद्र 'परिवार मिलन' इस वर्ष एकादश सम्मान हेतु इच्छुक रचनाकारों से वर्ष २०१० के बाद प्रकाशित अपनी छंदबद्ध कृति की चार-चार प्रतियाँ एवं पासपोर्ट आकार के दो रंगीन चित्र अपने संक्षिप्त परिचय के साथ २८ फरवरी, २०२३ तक परिवार मिलन कार्यालय ४, एस.एन. चटर्जी रोड, बेहाला, कोलकाता-७०००६८ पर भेज सकते हैं। ☐

सम्मान समारोह आयोजित

९ नवंबर को मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर के बप्पा रावल सभागार में आयोजित एक कार्यक्रम में श्रीमती मधु काँकरिया एवं डॉ. माधव हाड़ा को क्रमशः २०२१-२०२२ का ३१वाँ एवं ३२वाँ 'बिहारी पुरस्कार' मुख्य अतिथि श्री इंद्रवर्धन त्रिवेदी द्वारा संयुक्त रूप से प्रदान किया गया। पुरस्कारस्वरूप ढाई लाख रुपए, प्रशस्ति-पत्र और प्रतीक-चिह्न दिए गए। सर्वश्री सुरेश ऋतुपर्ण, हेमंत शेष, मधु काँकरिया, माधव हाड़ा ने अपने विचार व्यक्त किए। अध्यक्षता श्री मोहनलाल सुखाड़िया ने की। संचालन श्रीमती गरिमा ने किया। ☐

स्व. श्री के.आर. मल्कानीजी की तीन पुस्तकें लोकार्पित

१९ नवंबर को अणुव्रत भवन, नई दिल्ली में प्रख्यात संपादक एवं समाजधर्मी स्वर्गीय श्री के.आर. मल्कानी के जन्म शताब्दी के समारोप कार्यक्रम में प्रभात प्रकाशन द्वारा प्रकाशित उनकी सद्यःप्रकाशित पुस्तकों 'के.आर. मल्कानी : हिंदू-मुस्लिम डायलॉग' (अंग्रेजी में) 'के.आर. मल्कानी : हिंदू-मुस्लिम संवाद' (संपादक डॉ. महेश चंद्र शर्मा), 'के. आर. मल्कानी ऐंड द मदरलैंड' (संपादक डॉ. अनिर्बान गांगुली) का लोकार्पण केरल के राज्यपाल श्री आरिफ मोहम्मद खान के करकमलों से इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र के अध्यक्ष श्री रामबहादुर राय की अध्यक्षता में संपन्न हुआ। पुस्तकों का परिचय डॉ. श्यामाप्रसाद मुकर्जी फाउंडेशन के मानद निदेशक डॉ. अनिर्बान गांगुली ने दिया।

कार्यक्रम में एकात्म मानव दर्शन संस्थान के अध्यक्ष डॉ. महेश चंद्र शर्मा ने अपने उद्बोधन में कहा कि मल्कानीजी अद्भुत अध्येता थे, वे रोज विकसित होते थे। एकमात्र व्यक्ति थे, जिन्हें शोध पत्रिका 'मंथन', दैनिक अखबार 'मदर लैंड' और साप्ताहिक पत्रिका 'ऑर्गेनाइजर'

के संपादन का अनोखा अनुभव प्राप्त था। डॉ. श्यामा प्रसाद मुकर्जी फाउंडेशन के मानद निदेशक डॉ. अनिर्बान गांगुली ने कहा कि इमरजेंसी के पहले भारत कैसा था, यह जानने के लिए मल्कानीजी के विचारों को १९७१ और १९७४ के कालखंड में उनके संपादन में निकलने वाले अखबार 'मदरलैंड' के माध्यम से पढ़ना चाहिए। केरल के राज्यपाल श्री आरिफ मोहम्मद खान ने मल्कानीजी के साथ अपने संबंधों का गहराई के साथ जिक्र किया कि आजादी के बाद राजनीतिक विषयों पर बेहतर बौद्धिक चिंतन की शुरुआत मल्कानीजी ने की। उन्होंने विवादित और महत्त्वपूर्ण विषयों पर इस तरह लिखा कि लोग उस पर संवाद कर सकें। उन्होंने डिबेट को इग्नाइट किया।

श्री रामबहादुर राय ने कहा कि हिंदू-मुस्लिम संवाद पर आई हुई हजारों किताबों पर भारी पड़ेगी मल्कानीजी की हिंदू-मुस्लिम संवाद पुस्तक। मल्कानी की किताब संवाद के दरवाजे खोलती है। प्रो. राजकुमार भाटिया ने सभी अतिथियों का धन्यवाद ज्ञापित किया। □

साहित्यिक क्षति

डॉ. श्याम मनोहर पांडेय नहीं रहे

१४ अक्तूबर, २०२२ को बलिया के गोठहुली में १९३६ को जनमे भोजपुरी लोक महाकाव्य लोरिकी और मध्ययुगीन प्रेमाख्यानों के अप्रतिम अध्येता डॉ. श्याम मनोहर पांडेय का लंदन में निधन हो गया। जहाँ एक ओर उन्होंने चंदायन, मृगावती, पद्मावत, चित्ररेखा, मधुमालती, चित्रावली, ज्ञानदीप जैसे मध्ययुगीन प्रेमाख्यानों का गहन विश्लेषण किया, वहीं लोरिकायन और चनैनी जैसे लोक महाकाव्यों का भी अध्ययन किया। हिंदी, अंग्रेजी, संस्कृत, फारसी, ब्रज, भोजपुरी, अवधी, इतालवी आदि भाषाओं में उनकी असाधारण दक्षता उनकी कृतियों में मिलनेवाले तुलनात्मक अध्ययनों में झलकती है। सन् १९६८ से १९७५ तक लंदन विश्वविद्यालय के 'स्कूल ऑफ ओरियंटल ऐंड अफ्रीकन स्टडीज' में मध्ययुगीन साहित्य के प्राध्यापक पद को सुशोभित किया। वह 'भाषा सम्मान' तथा 'साहित्य भूषण सम्मान' सहित कई सम्मानों से विभूषित हुए थे। □

प्रो. मैनेजर पांडेय नहीं रहे

६ नवंबर को दिल्ली में प्रो. मैनेजर पांडेय का निधन हो गया। उनका जन्म २३ सितंबर, १९४७ को बिहार के गोपालगंज जिले में स्थित लोहटी में हुआ था। वे कई वर्षों तक जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में प्रोफेसर रहे। उन्होंने हिंदी आलोचना को, सामाजिक-आर्थिक परिवर्तनों के आलोक में, देश-काल और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए अधिक संपन्न और सृजनशील बनाया। □

श्री रमेश नैयर का निधन

२ नवंबर को रायपुर में प्रख्यात पत्रकार व लेखक श्री रमेश नैयर का निधन हो गया। वे ८२ वर्ष के थे। नैयरजी का जन्म १० फरवरी, १९४० को कुंजाह (अब पाकिस्तान) में हुआ था। विभाजन की त्रासदी भोगते हुए उनका परिवार भारत आया और विभिन्न स्थानों में रहते हुए अंतत: उनके पिता व परिजन छत्तीसगढ़ में स्थायी रूप से बस गए। उन्होंने एम.ए. (अंग्रेजी), सागर विश्वविद्यालय तथा एम.ए. (भाषा विज्ञान) रविशंकर विश्वविद्यालय से किया। वे 'युगधर्म', 'देशबंधु', 'एम.पी. क्रॉनिकल' और 'दैनिक ट्रिब्यून', चंडीगढ़ में सहायक संपादक रहे। उन्होंने 'दैनिक लोकस्वर', 'संडे ऑब्जर्वर', नई दिल्ली (हिंदी) और 'दैनिक भास्कर' और 'समवेत शिखर' का संपादन किया।

नैयरजी ने चार पुस्तकों का संपादन किया, जो प्रभात प्रकाशन से प्रकाशित हुईं। उन्होंने वी.एस. नायपॉल की दो पुस्तकों का अनुवाद भी किया—'इंडिया ए वुंडेड सिविलाइजेशन' (भारत एक आहत सभ्यता) और उपन्यास 'मैजिक सीड्स' (माटी मेरे देश की)। □

साहित्य अमृत परिवार की ओर से दिवंगत आत्माओं को भावभीनी श्रद्धांजलि।